विषय-सूची

ग्यारहवाँ अध्याय

बारहवाँ अध्याय

तेरहवाँ अध्याय

चौदहवाँ अध्याय

पन्द्रहवाँ अध्याय

आगमनात्मक तर्क

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

नवाँ अध्याय

साक्षित्व (Testimony) (शब्द प्रमाण)—

दसवाँ अध्याय

आगमन की भूलें—

ग्यारहवाँ अध्याय

तर्क शास्त्र

दूसरा भाग

ग्यारहवाँ अध्याय

लैंगिक अनुमान के अन्य रूप और शृंखलाएँ

लुप्तावयव अनुमान

(Enthymeme)

प्रायः लोग बात चीत में अनुमान के पूरे पूरे अवयव नहीं कहा करते। यदि ऐसा करें तो वे समाज में हास्यास्पद बनें।

लुप्तावयव अनुमान के प्रकार

लोग कभी बृहदनुमापक वाक्य नहीं कहते, कभी लघ्वनुमापक वाक्य नहीं कहते और कभी निगमन को छोड़ देते हैं।

पहले प्रकार के लुप्तावयवानुमान का उदाहरण

सोना तत्व है, क्योंकि वह धातु है।

इसका पूर्ण रूप इस प्रकार से होगा—

सब धातुएँ तत्व हैं।

सोना धातु है।

अतः सोना तत्व है।

दूसरे प्रकार का लुप्तावयव अनुमान

सोना मिश्रित पदार्थ नहीं है, क्योंकि कोई धातु मिश्रित पदार्थ नहीं।

इसका पूर्ण रूप इस प्रकार से है—

कोई धातु मिश्रित पदार्थ नहीं है।

सोना धातु है।

अतः सोना मिश्रित पदार्थ नहीं है।

लुप्तावयव अनुमानों को पूर्ण रूप देने के लिये हमको सब से पहले यह विचारना चाहिए कि कौन सा अवयव लुप्त है। इसके जानने के लिये बहुत बुद्धिमत्ता की आवश्यकता नहीं है। निगमन का कौन सा पद दूसरे वाक्य के किस स्थान में वर्तमान है? यदि वह पद विधेय है, तो समझना चाहिए कि बृहदनुमापक वाक्य मौजूद है और लघ्वनुमापक वाक्य लुप्त है। यदि निगमन का उद्देश्य दूसरे वाक्य में मौजूद है, तो उस वाक्य को लघ्वनुमापक वाक्य समझना चाहिए। मध्य पद की खोज इस प्रकार से हो सकती है कि यह निगमन में नहीं आता। मध्य पद इस प्रकार से मिल जायगा। और पक्ष तथा साध्य पद निगमन के उद्देश्य और विधेय से मिल जाते है। फिर अनुमान के पूरा करने में क्या कठिनाई है! किंतु इसको पूरा न करने से बहुत सी भूलें रह जाना संभव है। हमको अनुमान की प्रत्येक शृंखला को परीक्षा कर लेनी चाहिए; तभी हम

उसको ठीक या गैर ठीक ठहरा सकते हैं। कभी कभी लोग ऐसे वाक्य को छिपा लेते हैं जिसके रख देने से अनुमान में खराबी पड़ जायगी; इसलिये अनुमानों की जाँच में पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। इसी कारण से हिन्दू न्याय ग्रंथों में अनुमान के किसी अवयव के छोड़ जाने को दोष माना है। इस दोष को 'न्यून' निग्रह स्थान के नाम से कहा है। "हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम्" (न्या० सू० ५-२-१२) "प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों में से किसी एक अवयव को छिपाना या किसी कारण से न कहना न्यून नामक निग्रह स्थान है। किसी एक अवयव से हीन वाक्य में पूर्ण साधन न होने के कारण साध्य की सिद्धि नहीं होती।"

तीसरे प्रकार का लुप्तावयव अनुमान प्रायः हास्य के काम में लाया जाता है, ऐसी अवस्था में निगमन को स्पष्ट रीति से लोग न रखकर उसका निकालना श्रोताओं पर छोड़ देते हैं।

उदाहरण—पिता वचन टारे सो पापी सो प्रह्लाद कह्यो।

आप शिकारपुर रहते हैं; शिकारपुर के लोगों का हाल आप जानते हैं। (शिकारपुर के लोग बेवकूफ मशहूर हैं।)

कभी एक वाक्य मे ही पूरी युक्ति हो जाती है। अगर किसी ने किसी की बात का उत्तर नही दिया और उससे पूछा गया कि उत्तर क्यो नही दिया, तो उसने कह दिया—"जवाबे जाहिलाँ बाशद खमोशी"।

यह युक्तियाँ ठीक हों या न हों, दूसरों को चुप करने या शरमिन्दा करने वा हँसी के लिये कही जाती हैं। परशुराम के प्रति लक्ष्मण जी के वाक्य भी इसी प्रकार के हैं—

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहि आपु।
विद्यमान रण पाई रिपु, कायर कथहिं प्रलापु॥

यदि इसको बढ़ाया जाय तो युक्ति इस प्रकार होगी—कोई शूर अपने काम की डींग नहीं मारता। आप अपने काम की डींग मारते है, अतः आप शूर नहीं हैं।

पुष्टावयव अनुमान तथा उपजीव्य और उपजीवक अनुमान

(Epecherima, Prosylogism, Episylogism)

प्रायः पूर्व वाक्यों की सत्यता मान ली जाती है; किन्तु कभी कभी उनके सिद्ध करने का कारण भी दे दिया जाता है।

पुष्टाअवयव अनुमान किसे कहते हैं

पूर्व वाक्य एक प्रकार का लुप्तावयव अनुमान होता है। ऐसे अनुमान को जिसके किसी एक वा दोनों पूर्व वाक्यों की सिद्धि का कारण उसी या उन्हीं के साथ दिया हो, पुष्टावयव अनुमान कहते है। कभी कभा ऐसा भी होता है कि पूर्व वाक्य की सिद्धि अनुमान द्वारा कर दी जाती है। ऐसी अवस्था में पहले अनुमान को उपजीव्य और दूसरे को उपजीवक अनुमान कहते हैं। जब एक अनुमान का निगमन दूसरे अनुमान का अनुमापक वाक्य बनाया जाता है, तब पहले को अनुजीव्य और दूसरे को उपजीवक कहते हैं। पुष्टावयव अनुमान को भी बढ़ाने से अनुजीव्य और उपजीवक अनुमान बन जाते है।

पुष्टावयव अनुमान के उदाहरण—

सब राजा लोग भूल कर सकते हैं, क्योंकि वे मनुष्य हैं।

हर्षवर्द्धन राजा है।

अतः हर्षवर्द्धन भूल कर सकता है।

इस अनुमान में पहला अवयव पुष्ट है। उसको बढ़ाने से पूरा अनुमान बन सकता है।

सब मनुष्य भूल कर सकते हैं।

राजा लोग मनुष्य हैं।

अतः राजा लोग भूल कर सकते हैं।

राजा लोग भूल कर सकते हैं।

हर्षवर्द्धन राजा है।

अतः हर्षवर्द्धन भूल कर सकता है।

उपजीव्य और उपजीवक अनुमान सम्बन्धसूचक शब्द हैं। जब उपजीव्य और उपजीवक अनुमान एक श्रृंखला में रक्खे जाते हैं, तब जो अनुमान पूर्व अनुमान के सम्बन्ध में उपजीवक है, वह उत्तर अनुमान के संबंध में उपजीव्य होता है।

अनुमानों की श्रृंखला में उपजीव्य और उपजीवक अनुमानों को संकुचित करके ऐसी श्रृंखला बनाई जाती है कि एक वाक्य का विधेय दूसरे का उद्देश्य और एक का उद्देश्य दूसरे का विधेय बनता चला जाता है; और अंतिम वाक्य में निगमन निकल आता है।

अनुमान श्रृंखला के दो प्रकार

यह अनुमान शृंखला दो प्रकार की होती है।

अरस्तातालीसी	गोल्कीनी
अथवा अग्रगामिनी	अथवा पश्चात्गामिनी

अरस्तातालीसी का सांकेतिक उदाहरण यह है—

क ख है
ख ग है
ग घ है
अतः क घ है

इसको हम उपजीव्य और उपजीवक अनुमानों में बढ़ा कर इस प्रकार रख सकते हैं।

ख ग है
क ख है
∴ क ग है
ग घ है
क ग है
∴ क घ है

नीचे के श्लोक से अरस्तातालीसी अनुमान माला अच्छी बना सकती है।

दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो।
निस्तेजः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते॥
निर्विण्णः शुचमेति शोकविहितो बुद्ध्या परित्यज्यते।
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहा निधनता सर्वा पदास्पदम्॥

मृच्छकटिक।

दरिद्र निर्लज्ज होता है; निर्लज्ज निस्तेज होता है; निस्तेज समाज में तिरस्कृत होता है; समाज में तिरस्कृत दुःखी होता है; दुखी बुद्धिशून्य होता है; बुद्धिशून्य नाश को प्राप्त होता है; अतः दरिद्र नाश को प्राप्त होता है।

गोल्कीनी शृंखला का सांकेतिक उदाहरण यह है—

ग घ है

ख ग है

क ख है

∴ क घ है।

इसी के उपजीव्य और उपजीवक अनुमान इस प्रकार से हैं—

ग घ है	ख घ है
ख ग है	क ख है
∴ ख घ है	. क घ है

यदि कोई अपूर्ण व्याप्तिवाला वाक्य आ सकता है, तो वह केवल एक ही वाक्य होगा और वह पहला वाक्य हो सकता है। और यदि कोई निषेधात्मक वाक्य इस शृङ्खला में स्थान पा सकता है, तो वह अन्तिम वाक्य है। निषेधात्मक वाक्य के लिये और कहीं स्थान नहीं है।

अरस्तातालीसी अनुमान शृखला के नियम

इस शृङ्खला का जब हम उपजीव्य और उपजीवक अनुमानों में विच्छेद करते हैं, तो सिवा पहले के सब वाक्य

किसी न किसी अनुमान के वृहदनुमापक वाक्य बनाते हैं। यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि पहले आकार में वृहदनुमापक वाक्य पूर्ण व्याप्तिवाला होना चाहिए। पहले आकार में वृहद-नुमापक वाक्य पूर्ण व्याप्तिवाला न होने से मध्य पद की अव्याप्ति का दोष आ जाता है। पहले आकार में वृहदनुमापक वाक्य ही निषेधात्मक हो सकता है, और कोई नहो। ऊपर की अनुमान शृंखला में उपजीव्य अनुमान का निगमन लघ्वनुमापक वाक्य बनता है। यदि अन्तिम वाक्य के अतिरिक्त हम कहीं पर निषेधात्मक वाक्य ले आवेंगे, तो उपजीव्य अनुमान का निगमन निषेधात्मक हो जायगा; और उपजीवक अनुमान का लघ्वनुमापक वाक्य भी निषेधात्मक हो जायगा। ऐसा होने से अनुमान में साध्य को अनुचित क्रिया का दोष आ जायगा। अन्तिम वाक्य को निषेधात्मक बनाने में कोई हानि नही; क्योंकि अन्तिम वाक्य वृहदनुमापक वाक्य बनता है और उसके आगे कोई उपजीवक अनुमान नहीं होता। पहले आकार में वृहदनुमापक वाक्यों को निषेधा-त्मक बनाने में कोई दोष नहीं है।

सिद्धी
अ ब है
ब स है
स क है
क फ है
फ ज है

अ ज है

ब स है
अ ब है
अ स है
स क है
अ स है
अ क है

क फ है
अ क है
अ फ है

फ ज है
अ फ है
अ ज है

यदि कोई वाक्य अपूर्ण व्याप्तिवाला हो सकता है, तो

गोक्लीनी अनुमान शृङ्खला के नियम

केवल अन्तिम हो सकता है; और यदि निषेधात्मक हो सकता है तो केवल पहला।

सिद्धि

फ ज है	फ ज है	स ज है
ड फ है	ड फ है	व स है
स ड है	ड ज है	व ज है
व स है	ड ज है	व ज है
अ व है	स ड है	अ व है
अतः अ ज है	स ज है	अ ज है

इसके वाक्य पहले आकार ही में रक्खे हैं। जब हम इस शृंखला का उपजीव्य उपजीवक अनुमानों में विच्छेद करते हैं, तब उपजीव्य अनुमान का निगमन उपजीवक अनुमान का वृहदनुमापक वाक्य बन जाता है। यदि अन्तिम के अतिरिक्त और किसी वाक्य को अपूर्ण व्याप्तिवाला रक्खेंगे, तो किसी अनुमान का निगमन अपूर्ण व्याप्तिवाला हो जायगा, और उसके उपजीवक अनुमान का वृहदनुमापक वाक्य अपूर्ण व्याप्तिवाला होगा। ऐसा होने से इस अनुमान में मध्य पद को अव्याप्ति का दोष आ जावेगा। पहले वाक्य के अतिरिक्त यदि किसी वाक्य को निषेधात्मक बनाया जायगा, तो लघ्वनुमापक वाक्य निषेधात्मक बन जायगा। ऐसा होने से अनुमान में साध्य की अनुचित क्रिया नाम का दोष आ जायगा।

ग्यारहवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) पुष्टावयव अनुमान किसे कहते हैं? दूसरे प्रकार के लुप्तावयव अनुमान का उदाहरण दीजिए।

(२) एक पुष्टावयव अनुमान का उदाहरण दीजिए और उसके उपजीव्य और उपजीवक अनुमान बताइए।

(३) अनुमान श्रृखला किसको कहते हैं? नीचे की अनुमान शृंखला किस प्रकार की है?

सब बगाली भारतवासी होते है।
सब भारतवासी एशिया निवासी है।
सब एशिया निवासी पूर्वीय हैं।
अत बगाली लोग पूर्वीय है।

इसका उपजीव्य और उपजीवक न्यायों में विश्लेषण कीजिए।

(४) दोनों प्रकार की अनुमान शृखलाओं के नियम बतलाइए और यह भी बतलाइए कि उनके उल्लंघन से साधारण लैंगिक अनुमान के किन २ नियमों का उल्लंघन होता है।

(५) नीचे लिखी हुई विचार शृंखलाओ का उपजीव्य उपजीवक अनुमानों में विश्लेषण कीजिए।

(१) सब चार बेईमान होते हैं। सब बेईमान लोग बदमाश होते हैं, कुछ बदमाश लोग दंड नहीं पाते। अत कुछ चोर दंड नहीं पाते।

(२) अप्रतिबंध व्यापार व्यापार वृद्धि का कारण है। जो व्यापार वृद्धि का कारण है, वह नित्य व्यवहार के पदार्थों को सस्ता करता है। वह धन का मूल्य बढ़ा देता है। धन का मूल्य बढ़ानेवाला एक प्रकार से मजदूरी बढ़ानेवाला है। जो मजदूरी बढ़ानेवाला है, वह मजदूरों के हित का है।

बारहवाँ अध्याय

सापेक्ष अनुमान

सापेक्ष अनुमान की व्याख्या और उसके प्रकार

अभी तक जिस अनुमान का वर्णन किया गया था, वह निरपेक्ष अनुमान था। निरपेक्ष अनुमान तभी हो सकता है जब कि हमारे पूर्व वाक्य किसी और वाक्य की अपेक्षा न करते हों। सोना तत्व है, यह निरपेक्ष है। यह दूसरे वाक्य का आश्रय नहीं ढूँढ़ता। यदि पानी अच्छा बरसेगा, तो फसल अच्छी होगी। फसल का अच्छा होना निरपेक्ष नहीं है; पानी बरसने के ऊपर निर्भर है। यह बात नही है कि निरपेक्ष वाक्यों के ही आधार पर भी अनुमान किया जा सके। सापेक्ष वाक्यों के आधार पर भी अनुमान हो सकता है। सापेक्ष वाक्य दो प्रकार के होते हैं—काल्पनिक और वैकल्पिक। और इनके अनुसार सापेक्ष अनुमान के भी काल्पनिक और वैकल्पिक नाम से दो भेद होते है। इन अनुमानों की भी साधारण जीवन में उतनी ही आवश्यकता पड़ती है जितनी निरपेक्ष अनुमानों की।

प्रायः काल्पनिक अनुमान में पहला वाक्य काल्पनिक होता है और दूसरा निरपेक्ष। पहले वाक्य के दो भाग होते है—एक

पूर्व भाग और दूसरा अपर भाग। अपर भाग पूर्व भाग के ऊपर आश्रित रहता है; इसलिये दूसरे को हम आश्रित और पहले को आश्रयी कह सकते हैं। पूर्व भाग और अपर भाग अथवा पूर्वांग और उत्तरांग ही सुभीते के शब्द मालूम होते हैं। पूर्वांग और उत्तरांग का संबंध प्रायः कारण कार्य्य का सा होता है। इस अनुमान का एक ही नियम है। उस नियम के दो अंग हैं। उन्हीं अंगों के आधार पर इस प्रकार के अनुमान के दो रूप हैं। पहला यह कि अनुमान के दूसरे वाक्य में यदि भाव स्वीकार किया जाय तो पूर्वांग का हो। और दूसरा यह है कि यदि अभाव स्वीकार किया जाय तो उत्तरांग का। पूर्वांग का भाव और उत्तरांग का अभाव, यही काल्पनिक अनुमान का सूत्र है।

काल्पनिक अनुमान और उसके नियम

पूर्वांग का भाव

यदि पानी बरसे तो ज़मीन भीगेगा।

पानी बरसा है।

अतः ज़मीन भीगी है।

उत्तरांग का अभाव

यदि पानी बरसे तो ज़मीन भीगेगी।

ज़मीन नही भीगी।

अतः पानी नही बरसा।

यदि इन नियमों के विपरीत किया जायगा तो अनुमान ठीक न होगा।

यदि पानी बरसे तो ज़मीन भीगेगी।

पानी नहीं बरसा।

अतः ज़मीन नहीं भीगी।

पर यह बात ठीक नहीं। सम्भव है कि भिश्ती पानी छिड़क गया हो और ज़मीन भीग गई हो।

यदि मै बीमार हूँ तो मुझे डाक्टर के घर जाना पड़ेगा।

मै डाक्टर के घर गया।

अतः मै बीमार हूँ।

यह बात ठीक नहीं। सम्भव है कि मै किसी और की चिकित्सा के लिये डाक्टर के मकान पर गया होऊँ। अब यह देखना चाहिए कि इन नियमों के तोड़ने से निरपेक्ष अनुमान के किन नियमों का विरोध होता है।

उत्तरांग का भाव

यदि पानी बरसे तो ज़मीन भीगेगी।

ज़मीन भीगी है।

अतः पानी बरसा है।

इस अनुमान को निरपेक्ष रूप में इस प्रकार से रख सकते हैं—

आ सब पानी बरसने की अवस्थाएँ ज़मीन भीगने की अवस्थाएँ हैं।

आ वर्त्तमान स्थिति ज़मीन भीगने की अवस्था है।

आ ∴ वर्त्तमान स्थिति पानी बरसने की अवस्था है।

यह अनुमान दूसरे आकार का है। इसमें दोनों पूर्व वाक्य भावात्मक हैं; इस कारण दोनों में मध्य पद अव्याप्त है। मध्य पद एक बार अवश्य व्याप्त होना चाहिए। यही इस अनुमान की भूल है। उत्तरांग के भाव करने की भूल को निरपेक्ष अनुमान में मध्य पद की अव्याप्तिवाला दोष कहेंगे।

पूर्वांग का निषेध

यदि पानी बरसा तो जमीन भीगेगी।

पानी नहीं बरसा।

अतः जमीन नही भीगी।

निरपेक्ष रूप

आ सब पानी बरसने की अवस्थाएँ जमीन भीगने की अवस्थाएँ हैं।

ई वर्त्तमान स्थिति पानी बरसने की नही है।

ई वर्त्तमान स्थिति ज़मीन भीगने की नही है।

यह अनुमान पहले आकार में है। इसका निगमन निषेधात्मक है। निगमन का विधेय जो साध्य पद है, व्याप्त है; किन्तु साध्य पूर्व वाक्य मे अव्याप्त है। कोई पद जो निगमन में व्याप्त है, पूर्व वाक्य में अव्याप्त नही रह सकता। यह साध्य की अनुचित प्रक्रिया नाम का दोष हुआ। जब दोनों वाक्य सापेक्ष होते हैं, तब निगमन भी सापेक्ष होता है।

यदि विदेशी कपड़े का मूल्य बढ़ जाय तो स्वदेशी कपड़ा भी तेज हो जाय। यदि विदेशी कपड़े पर विशेष टेक्स लगाया जावे तो विदेशी कपड़े का मूल्य बढ़ जाय।

अतः यदि विदेशी कपड़े पर विशेष टैक्स लगाया जाय तो स्वदेशी कपड़ा भी तेज हो जायगा।

ऊपर दिखाया जा चुका है कि काल्पनिक अनुमान निरपेक्ष अनुमान के रूप में रक्खा जा सकता है। तो क्या फिर काल्पनिक और निरपेक्ष अनुमान में कुछ अन्तर नहीं? निरपेक्ष का परिवर्तन कर देने से यह अवश्य सिद्ध होता है कि सब प्रकार के अनुमानों का एक ही आधार है। जो सापेक्ष अनुमान में ठीक है, वही निरपेक्ष मे भी ठीक हो सकता है; और जो सापेक्ष में ठीक नहीं, वह उलट फेर कर के निरपेक्ष में भी ठीक नहीं। फिर अन्तर किस बात का?

काल्पनिक अनुमान पर विचार

पहला अन्तर इस बात में है कि पूर्वांग और उत्तरांग में उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध नहीं है। और फिर दूसरा वाक्य लघ्वनुमापक वाक्य नहीं कहा जा सकता। इसमें कोई चीज़ ऐसी नहीं जिसे पक्ष कह सकें। इसमें पूर्वांग पर उत्तराङ्ग की निर्भरता बतलाई जाती है; और इतना कहा जाता है कि पूर्व वाक्य मौजूद है। उत्तर वाक्य आना चाहिए। बिना दूसरे वाक्य के पहले वाक्य से किसी बात की वास्तविक स्थिति के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। जब हम दूसरे वाक्य को लघ्वनुमापक वाक्य बनाते हैं, तब हम को इस प्रकार लिखना पड़ता है- वर्त्तमान स्थिति या अवस्था पानी बरसने या और किसी बात की अवस्था है। इसमें उद्देश्य

और विधेय एक ही है। इसका रूप मात्र वाक्य का है। किन्तु यह वाक्य नहीं। सापेक्ष अनुमान को निरपेक्षानुमान का आकार अवश्य मिल जाता है, किन्तु उसमें से सापेक्षत्व निकल जाने के कारण उसका वास्तविक तत्व निकल जाता है। सापेक्ष अनुमान में यह आवश्वक नहीं कि पूर्वांग की स्थिति हो ही। उसमें यह बतलाया जाता है कि जब पूर्वांग वर्त्तमान होगा, तब उसका फल इस प्रकार होगा। यदि सूर्य्य ठंढा हो जाय तो सब जीवधारी मर जायँ। इस वाक्य में यह आवश्यक नहीं कि सूर्य्य ठंढा हो ही जाय। निरपेक्ष वाक्य में उद्देश्य की सत्ता मान ही ली जाती है। जब हम रेखा-गणित में कोई बात मान लेते है और फिर कहते हैं कि यदि ऐसा होगा, तो यह फल होगा, तो उस समय मानी हुई बात मानी हुई ही रहती है। वैज्ञानिक कल्पनाओं की पुष्टि के लिये भी हमको प्रायः काल्पनिक अनुमान करना पड़ता है। राज-नीति में तो इस प्रकार के अनुमान का उपयोग बहुत अधिक होता है। यद्यपि अँग्रेजी तर्क ग्रन्थों में सापेक्ष और निरपेक्ष अनुमान के कई भेद दिखलाए गए हैं, पर हमारे मत से आखिरी ही भेद मुख्य है। जब हम इस बात को स्वीकार करते है, जैसा कि जोजफ साहब तथा अन्य तार्किकों ने स्वीकार किया है, कि लैंगिक अनुमान का वास्तविक रूप काल्पनिक अनुमान का सा होना चाहिए, तब भेद की मात्रा और भी कम हो जाती है। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि दोनों प्रकार

के अनुमानों में केवल आकार ही का भेद नहीं, किन्तु उनमें थोड़ा बहुत वास्तविक भेद भी है।

अब यह विचार करना चाहिए कि काल्पनिक अनुमान के नियम कहाँ तक ठीक हैं। आकारवाद के हिसाब से तो नियम अवश्य ठीक ही हैं। इन नियमों के मूल में बहु कारण-वाद का सिद्धान्त है। एक कार्य्य के बहुत से कारण हो सकते हैं। जमीन भीगने का कारण पानी बरसना, पानी का छिड़काव आदि कई कारण हो सकते हैं। कपड़े की तेजी भी कई कारणों से हो सकते हैं। कपास की फसल का मारा जाना, बाहर से माल का न आना, जहाजों की कठिनाई के कारण आमद बन्द हो जाना, बाहर के कपड़े पर टैक्स बढ़ जाना, माँग का बढ़ जाना आदि अनेक कारण हो सकते हैं। जब हम किसी एक कारण का अस्तित्व स्वीकार करें, तब कार्य्य का भी अस्तित्व स्वीकार किया जाना चाहिए। किन्तु कार्य्य का स्वीकार करने में किसी एक कारण का अस्तित्व नहीं स्वीकार कर सकते। हाँ यदि कार्य्य नहीं है, तो हम यह कह सकते है कि कारण भी न होगा। बहुकारणवाद के विषय में आगे विवेचना की जायगी। किन्तु यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि यह सिद्धान्त जसा ठीक प्रतीत होता है, वैसा नहीं है। जब तक कार्य्य के पहचानने का विशेष चिह्न न मालुम हो कि यह कार्य्य अमुक कारण से हुआ, तब तक के लिये तो बहुकारणवाद मानना ठीक है, अन्यथा नहीं। सभी कार्य्यों के बहुत से कारण नहीं होते।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि दो वस्तुएँ एक ही कारण का कार्य्य होने की वजह से एक दूसरे को सूचक होती हैं। बहुत सी अवस्थाएँ ऐसी हैं कि जिनमें हम उत्तरांग की स्थिति से पूर्वांग की स्थिति का अनुमान कर सकते हैं; और पूर्वांग के अभाव से उत्तरांग के अभाव का अनुमान कर सकते हैं। जैसे नदी में गँदले पानी की बाढ़ देख कर ऊपरवाले देशों में वृष्टि का अनुमान करना। किंतु आकारवाद उन स्थितियों में भेद नही कर सकता; और सब को एक ही लाठी से हाँकना पड़ता है। यदि दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन मिले तो पानी बन जाता है। यहाँ पानी के बनने का एक ही कारण है। हिन्दू तर्क ग्रन्थों में कार्य्य से भी कारण का अनुमान किया जाता है। जल से मेघों का अनुमान और नदी की बाढ़ से जल बरसने का अनुमान किया जाता है। इस प्रकार के अनुमान को बहुत से नैयायिका ने शेषवत अनुमान कहा है। वात्सायन भाष्य में इनके बारे में इस प्रकार लिखा है—

"शेषवत्तद् यत्र कार्येण कार्य्य मनुमीयते। पूर्वोदक विपरीत मुदकं नद्याः पूर्णत्वं शीघ्रत्वञ्च दृष्ट्वा स्रोतसोऽनुमीयते भूता वृष्टिरिति।"

हिन्दू तार्तिक आकरवादी नहीं हैं। इन नियमों के साथ एक बात और भी लगी हुई है। वह यह है कि यदि कोई विपरीत कारण न उपस्थित हो जाय, तभी पूर्वांग की स्थिति

से उत्तरांग की स्थिति का अनुमान कर सकते हैं। यदि कपास की फसल अच्छी हो, तो कपड़ा मद्दा हो जायगा। किन्तु यदि बहुत सा कपड़ा बाहर भेज दिया जाय, तो पूर्वांग की स्थिति से उत्तरांग की स्थिति का अनुमान ठीक न होगा। विपरीत कारणों के उपस्थित न होने का विचार बिना वस्तु ज्ञान के नहीं हो सकता। आकारिक तर्क इस विषय में निरुपाय है।

तेरहवाँ अध्याय

वैकल्पिक अनुमान

वैकल्पिक अनुमान में एक वैकल्पिक वाक्य होता है, उसकी दो कल्पनाओं में से एक यथार्थ या अयथार्थ सिद्ध की जाती है।

वैकल्पिक अनुमान और उसके नियम

वैकल्पिक अनुमान का आधार विचार का तीसरा नियम है। किंतु ऐसे बहुत कम उदाहरण होते हैं जहाँ पर दो या तीन वैकल्पिक कल्पनाएँ सब सम्भावनाओं को खतम कर दें और वे एक दूसरी के अन्तर्गत न हों। जहाँ पर ऐसे परस्पर व्याघातक विकल्प हों, वहाँ पर वैकल्पिक अनुमान दो प्रकार का होता है। एक बाधन द्वारा साधन (Modus tolendo ponens) और दूसरा साधन द्वारा बाधन (Modus ponendo tolens)

बाधन द्वारा साधन

वह मनुष्य या तो साक्षर है या निरक्षर।

वह मनुष्य साक्षर नहीं।

अतः वह मनुष्य निरक्षर है।

साधन द्वारा बाधन

वह मनुष्य या तो साक्षर है या निरक्षर।

वह मनुष्य साक्षर है।

अतः वह निरक्षर नहीं।

जहाँ पर विकल्प ऊपर का सा नहीं है अर्थात् जहाँ दोनों

विकल्प एक दूसरे के व्याघातक नहीं है, वहाँ केवल बाधन द्वारा साधन होता है।

यह पुस्तक या तो मनोरंजक है या शिक्षाप्रद ।

यह पुस्तक मनोरंजक नहीं है।

अतः यह शिक्षाप्रद है।

ऐसे अनुमान में एक ही प्रकार होने का यह कारण है कि दोनों विकल्प संभव हैं। पुस्तक मनोरंजक होने के साथ शिक्षाप्रद भी हो सकती है। ऐसी अवस्था में एक विकल्प का भाव स्वीकार करने से दूसरे का निषेध नहीं हो सकता है; क्योंकि सम्भव है कि दोनों बातें एक साथ हो सकें। एक विकल्प का निषेध करने से दूसरे की सिद्धि हो जाती है; क्योंकि दोनों सम्भव बातों में से जब एक बात का निषेध हो गया, तब दूसरी अवश्य सत्य होगी। वैकल्पिक अनुमानों को काल्पनिक बना कर निरपेक्ष का रूप दे सकते हैं; किन्तु इन दोनों प्रकार के अनुमानों का भाव एक नहीं हो सकता। वैकल्पिक अनुमान का काम ऐसी अवस्था में पड़ता है जब कि बहुत सी सम्भावनाएँ हों; और यह निश्चय न हो कि कौन सी सम्भावना ठीक होगी। फिर एक सम्भावना को काट कर जो सम्भावना शेष रह जाती है, वही ठीक मानी जाती है। जैसे कोई मनुष्य गर्मियों में दोपहर को स्टेशन गया है, उसके जाने के कई कारण हो सकते हैं। या तो वह कहीं बाहर जानेवाला हो या किसी को पहुँचाने गया हो या किसी को लेने गया हो या

वसे ही टहलने गया हो। वह कहीं बाहर नहीं जा सकता क्योंकि वह न असबाब ले गया न टिकट के लिये दाम। वह किसी को लेने भी नहीं गया, क्योंकि उस वक्त रेल कहीं से आती नहीं है, वहाँ से जाती है। वह खाली सैर को भी नहीं जा सकता, क्योंकि सैर का वक्त नहीं। इसलिये वह किसी को पहुँचाने गया है। आगमन में एवं साधारण जीवन में भी ऐसी बहुत सी कल्पनाओं का निषेध करके एक कल्पना स्थिर की जाती है। बाधन से साधन में अन्त में निषेधात्मक फल हाथ लगेगा; किन्तु बाधन से साधन में भावात्मक फल हाथ आवेगा। इससे बाधन द्वारा साधनवाले योग की मुख्यता है। अर्थापत्ति भी वैकल्पिक अनुमान का रूपान्तर है। देवदत्त मोटा है। दिन में नहीं खाता, इसलिये रात में खाता होगा। मोटा आदमी या तो दिन में खाता है या रात में। देवदत्त मोटा है। देवदत्त या तो दिन में खाता है या रात में। देवदत्त दिन में नहीं खाता, इसलिये वह रात में खाता है।

उभयतोपाश और उसके प्रकार

उभयतोपाश उस प्रकार का अनुमान है जिसके पहले पूर्व वाक्य में दो या दो से अधिक ऐसे काल्पनिक वाक्य हों जिन में एक से अधिक पूर्वांग या उत्तरांग हो और जिसके दूसरे पूर्व वाक्य में ऊपर के काल्पनिक वाक्यों के पूर्वांगों या उत्तरांगों का भाव या निषेध स्वीकार किया जाय। इस अनुमान के निगमन मे प्रायः ऐसा होता है कि फल रूप

दोनों विकल्प एक पक्ष के हित के प्रतिकूल और दूसरे के अनुकूल पड़े। इससे इस अनुमान का नाम उभयतोपाश रक्खा गया है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दो विकल्पों के कारण एक ही निगमन सिद्ध हो। उभयतोपाश भावात्मक या अभावात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। जहाँ पर पूर्वांग स्वीकार किए जाय, वह भावात्मक होता है; और जहाँ पर उत्तरांग का निषेध किया जाय, वहाँ पर निषेधात्मक होता है। भावात्मक और निषेधात्मक के भी साधारण और मिश्रित ये दो विभाग होते हैं। जहाँ पर बृहदनुमापक वाक्य में दो पूर्वांग और एक उत्तरांग अथवा एक पूर्वांग वा दो उत्तरांग हों वह साधारण कहलाता है; और जहाँ पर दो या दो से अधिक पूर्वांग आर उतने ही उत्तरांग हों, वह उभयतोपाश मिश्रित कहलाता है। भावात्मक साधारण उभयतोपाश में एक एक उत्तरांग और दो पूर्वांग होते हैं। इसका कारण यह होता है कि दूसरे वाक्य में विकल्प से पूर्वांगों का भाव स्वीकार किया जाता है; इसी लिये दो पूर्वांग आवश्यक हैं। और निषेधात्मक में पूर्वांग एक और उत्तरांग दो होते हैं; क्योंकि उसके उत्तरांगों का विकल्प से निषेध करना पड़ता है।

साधारण भावात्मक

यदि क ख है वा ग घ है तो च छ है।

या तो क ख है या ग घ है।

अतः दोनों अवस्थाओं में च छ है।

पूत सपूत तो कहा धन जोरिये (क्योंकि उसकी ज़रूरत नहीं: वह स्वयं कमा लेगा।) पूत कपूत तो कहा धन जोरिये (क्योंकि वह कमाया हुआ धन बरबाद कर देगा)। यदि पूत सपूत है तो धन जोड़ना वृथा है; यदि पूत कपूत है तो भी धन जोड़ना वृथा है। या तो पूत सपूत है और या पूत कपूत है। अतः दोनों अवस्थाओं में धन जोड़ना वृथा है। यह उभय-तोपाश जीवन का बीमा करनेवाली कम्पनियों के एजेन्ट शायद न पसन्द करेंगे।

मिश्रित भावात्मक

यदि क ख है तो च छ है; और यदि ग घ है तो ज झ है।

या तो क ख है या ग घ है।

अतः या च छ है या ज झ है।

सरकारी नोकरी करना वृथा है। यदि ईमानदार हो तो लोग नाराज़; और बेईमान हो तो ईश्वर नाराज़। सरकारी नौकरी में या तो ईमानदार होना पड़ेगा या बेईमान। सरकारी नौकरी में या तो लोग नाराज़ होंगे या ईश्वर। कुपथ्य भोजन करनेवाले को वैद्य से लाभ नहीं। पथ्य भोजन करनेवाले के लिये वैद्य अनावश्यक है। मनुष्य या तो कुपथ्य भोजन करनेवाला है या पथ्य भोजन करनेवाला है; अतः वैद्यों से या तो लाभ नहीं या वैद्यों की आवश्यकता नहीं।

साधारण अभावात्मक

यदि क ख है तो च छ है और ज झ है।

या तो घ छ नहीं या ज झ नहीं।

दोनों अवस्थाओं में क ख नहीं है।

यदि कोई वस्तु चलेगी तो या अपने स्थान में या अपने से भिन्न स्थान में। कोई वस्तु न तो अपने स्थान में (जहाँ ठहरी हुई है) चल सकती है और न अपने से दूसरे स्थान में (जहाँ कि वह नहीं है) चल सकती है। अतः कोई वस्तु चल नहीं सकती। बहुत से तार्किकों ने साधारण अभावात्मक को स्थान नहीं दिया है। उनका कहना है कि अभावात्मक हमेशा मिश्र ही होगा। मालूम नहीं कि वे ऊपर के उदाहरण को किसमें रक्खेंगे। यदि वे यह कहें कि यह दो वैकल्पिक अनुमानों का योग है, तो और सब भी दो वैकल्पिक अनुमानों के योग सिद्ध किये जा सकते हैं।

मिश्रित अभावात्मक उभयतोपाश

यदि क ख है तो च छ है और ग घ है तो ज झ है।

या तो च छ नहीं या ज झ नहीं।

अतः क ख नहीं है और या ग घ नहीं है।

श्री महाराज दशरथ को मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जो के वन-गमन के समय इस प्रकार का उभयतोपाश उपस्थित हुआ होगा। यदि स्नेह पालन करता हूँ तो वचन नहीं रहते; और यदि धर्म का पालन करता हूँ तो प्राण नहीं रहते। या तो वचन रहेंगे या प्राण रहेंगे। या स्नेह पालन नहीं कर सकता या धर्म पालन नहीं कर सकता।

दूसरा वाक्य भावात्मक दिखाई पड़ता है, किन्तु वास्तव में अभावात्मक है; क्योंकि इसमें वचन नही रहने का निषेध वचन रहने से और प्राण नहीं रहने का निषेध प्राण रहने से किया गया है। महाराज दशरथ ने प्राण त्याग करके स्नेह और धर्म दोनों ही का पालन किया।

प्रायः लोग पाश से वचने के लिये उभयतोपाश को उलट कर पूर्व वक्ता के सामने दूसरा उभयतोपाश उपस्थित कर देते है। इसका अच्छा उदाहरण एक वकील और उसके शागिर्द का है। एक यूनानी विद्यार्थी ने अपने गुरु से इस शर्त्त पर वकालत पढ़ी कि जब वह पहला मुकदमा जीत जायगा तब अपने गुरु को सहस्र मुद्रा गुरु दक्षिणा देगा। विद्यार्थी ने गुरु दक्षिणा के भय से वकालत ही न की। गुरु ने अदालत में नालिश की और न्यायाधीश के सम्मुख कहा—"ऐ लड़के, यदि मै जीत गया, तब तो मुझको मेरी दक्षिणा मिली ही मिलाई है; क्योंकि अदालत दिलावेगी। और यदि तू जीत गया तो मुझे वादे के मुताबिक पहले मुकदमे के जीतने की दक्षिणा देनी ही पड़ेगी।" लड़के ने आगे बढ़कर कहा—'वाह गुरुजी' आप भी क्या कहते है! यदि मैं हार गया तो रुपया किस बात का? रुपया तो पहले मुकदमे के जीतने पर ही वाजिब है और यदि मैं जीत गया तो आपका दावा झूठा हुआ। फिर रुपया काहे का। इस उभयतो पाश से वचने के लिये या तो लड़के को और किसी मुक-

उभयतोपाश का उलटना

हमे में जान बूझ कर हार जाना चाहिए या गुरुजी को चुपचाप हार जाना चाहिए था और लड़के को पहला मुकदमा जीत जाने देते। फिर लड़के के जीत जाने के बाद वह दूसरा मुकदमा अपना वादा पूरा कराने के लिये चलाते। फिर विद्यार्थी को कुछ कहने की गुंजाइश न रहती। उभयतोपाश को उलटने की साधारण रीति यह है कि दूसरे काल्पनिक वाक्य के उत्तरांश का निषेध पहले वाक्य के पूर्वांश से मिला दिया जाय और पहले काल्पनिक वाक्य के उत्तरांश का निषेध दूसरे काल्पनिक वाक्य के पूर्व वाक्य से मिला दिया जाय।

खलीफा उमर के विषय में निम्नलिखित उभयतोपाश प्रसिद्ध है। जब एलैक्जेंड्रिया शहर का पुस्तकालय जलाया गया था, तब यह उभयतोपाश उपस्थित किया गया था। यदि इन पुस्तकों के सिद्धान्त कुरान के सिद्धान्तों के अनुकूल हों तो इन पुस्तकों की आवश्यकता नहीं, और यदि इन पुस्तकों के सिद्धान्त कुरान के सिद्धान्तों से भिन्न है, तो ये मिथ्या हैं; इन पुस्तकों के सिद्धान्त या कुरान के अनुकूल है या उनसे भिन्न हैं। अतः ये सब पुस्तकें या अनावश्यक है या मिथ्या। इस उभयतोपाश को ऊपर के नियम का सहारा लेकर इस प्रकार उलट सकते हैं। दूसरे काल्पनिक वाक्य के उत्तरांश के निषेध को (अर्थात् वह मिथ्या नहीं है) पहले वाक्य के पूर्वांश (अर्थात् "यदि इन पुस्तकों के सिद्धान्त कुरान के अनुकूल है) के साथ रख कर हम नीचे लिखा उभयतोपाश बना सकते है।

यदि एलैक्ज़ैड्रिया के पुस्तकालय की पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं, तो वे सत्य हैं; और यदि वे कुरान के सिद्धान्तों से भिन्न हैं, तो अनावश्यक नहीं (क्योंकि उनमें शायद कोई नवीन बात हो)।

एलेक्ज़ैड्रिया के पुस्तकालय की पुस्तकों के सिद्धान्त या तो कुरान के अनुकूल है या उनसे भिन्न, इसलिये या तो वे पुस्तकें सत्य हैं या आवश्यक। दोनों ही अवस्थाओं में उन पुस्तकों को जलाना ठीक न था।

उभयतोपाश को उलट कर और नया उभयतोपाश खड़ा कर दिया जाता है। इससे कुछ लोगों को दोनों ही की सत्यता में संदेह होने लगता है। जब उभयतोपाश काल्पनिक और वैकल्पिक अनुमानों के नियमों को मानता है, तब संदेह की गुंजाइश कहाँ?

उभयतोपाश पर विचार

पहला संदेह का स्थान पहले पूर्व वाक्य की सत्यता में है। संदेह के लिये दूसरा छिद्र विकल्प में है। प्रायः यह विकल्प एक दूसरे के विरोधी और व्याघातक नहीं होते और इनमें तीसरे विकल्प की गुंजाइश रह जाती है। यही सारी भूल का कारण है। यह भूल ऐसी नहीं जो आवश्यक हो, किन्तु प्रायः लोग यह भूल करते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि उभयतोपाश में पहले तो यह देखना पड़ता है कि यह काल्पनिक अनुमान के अनुकूल है या नहीं; अर्थात् पूर्वांग का निषेध तो नहीं कर दिया गया और उत्तरांग

का अस्तित्व तो नहीं स्वीकार किया जाता। फिर यह देखना चाहिए कि विकल्प एक दूसरे के विरोधी है या नहीं और इनमें अन्य विकल्पों की गुंजाइश है या नहीं। यही मुख्य बात देखने की है।

यदि मेरे भाग्य में पास होना लिखा है, तो इम्तहान के लिये मेहनत करना अनावश्यक है, और अगर मेरे भाग्य में फेल होना लिखा है, तो मेहनत करना वृथा है। मेरी तकदीर में या पास होना लिखा है या फेल होना। या तो मेहनत करना अनावश्यक है या वृथा है। इसमें एक तीसरे विकल्प की गुंजाइश है। यदि मेरी तकदीर में मेहनत करके पास होना लिखा हो, तो यह उभयतोपाश काम न देगा। हमको दूसरे के सम्मुख उभयतोपाश रखते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि और विकल्पों की तो गुंजाइश नहीं; कि विकल्प एक दूसरे के व्याघातक है या नहीं और सापेक्ष अनुमान के साधारण नियमों का पालन होता है या नहीं। दूसरे के रक्खे हुए उभयतोपाश की परीक्षा करते हुए भी हमको ऊपर की तीन बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

बारहवें और तेरहवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) काल्पनिक अनुमान का एक उदाहरण देते हुए उसका निरपेक्ष अनुमान से भेद बतलाइए।

(२) काल्पनिक अनुमान के नियम बतलाइए और यह भी बतलाइए कि

उनका उल्लंघन करने से साधारण लैंगिक अनुमान के किन नियमों का विरोध होता है।

(३) उत्तरांग का अस्तित्व स्वीकार करने से पूर्वांग का अस्तित्व क्यों नहीं सिद्ध होता ? किन अवस्थाओं में यह सिद्ध हो सकता है ?

(४) नीचे लिखे अनुमानों की यथार्थता पर विचार कीजिए।

(क) यदि किसी के पास धन है, तो उसके घरवाले खातिर करते हैं। वह निर्धन है; इससे उसके घरवाले खातिर नहीं करते।

(ख) यदि कोई मनुष्य सच्चा बहादुर है, तो वह मौत से नहीं डरेगा। शिवदत्त मौत से नहीं डरता।
इसलिये वह बहुत बहादुर है।

(ग) यदि विदेशी कपड़े पर टैक्स लगा दिया जाय तो वह बहुत तेज हो जाय। आजकल विदेशी कपड़े पर टैक्स नहीं है; इसलिये विदेशी कपड़ा मद्दा है।

(घ) तुम पास हो जाओगे बशर्ते कि तुम मेहनत करो। तुमने मेहनत नहीं की, तुम पास नहीं हो सकते।

(५) वैकल्पिक अनुमान के नियम बतलाइए। वैकल्पिक अनुमान का क्या प्रकार है ?

(६) साधन से बाधन अथवा बाधन से साधन दोनो में से किसमें भूल की कम सम्भावना है।

(७) नीचे लिखे वैकल्पिक अनुमान को काल्पनिक बनाइए और देखिए कि वह काल्पनिक तर्क के नियमों के अनुकूल है या नहीं।

विद्यार्थिन कुतो सुखम् सुखार्थिन कुतो विद्या।

अर्थात् विद्यार्थी लोग या तो सुख का उपभोग कर सकते है या विद्योपार्जन कर सकते हैं।
हरी सुखोपभोग नहीं करता।
अत हरी विद्योपार्जन कर सकता है।

(८) दानं भोगो नाशस्तिस्रोगतय. भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति नाश्नुते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥
धन की तीन गतियाँ होती हैं ? दान उपभोग और नाश जो न स्वयं खाता है और न दूसरे को खिलाता है, उसके धन की तृतीया गति (अर्थात् नाश) होती है ।
ऊपर के अनुमान को तार्किक रूप दीजिए।

(९) उभयतोपाश किसको कहते हैं—उभयतोपाश कितने प्रकार के होते हैं मिश्रित अभावात्मक का उदाहरण दीजिए ।

(१०) उभयतोपाश की सत्यता में किन कारणों से भ्रम होता है ? उभयतोपाश स्थित करने में किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

(११) उभयतोपाश किस प्रकार उलटे जा सकते हैं ? एक उभयतोपाश को उलट कर बताइए ।

(१२) नीचे के उभयतोपाश की संज्ञा बतलाइए और यह भी बतलाइए कि उसमें क्या दोष है ? उसको उलट कर बतलाइए ।
यदि माँगोगे तो तुम्हारी धृष्टता के कारण नहीं मिलेगा; और यदि नहीं माँगोगे तो तुम अपने व्यवहार से यह प्रकट करते हो कि तुम्हें उसकी चाह नहीं ।
तुम या तो माँगोगे या नहीं माँगोगे ।
दोनों अवस्थाओं में तुम को नहीं मिलना चाहिए ।

(१३) इसको तार्किक रूप दीजिए ।
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

चौदहवाँ अध्याय

निगमनात्मक लैंगिक अनुमान की सीमा, उपयोगिता और सत्यता।

कोरे आकार वाद का खंडन इस पुस्तक में कई वार हो चुका है। निगमनात्मक अनुमान की समाप्ति में इस विषय की विवेचना कर लेना आवश्यक है।

अनुमान का विषय और आकार

जैसा कि पहले अध्याय में बतलाया जा चुका है, विषय और आकार अलग नहीं हो सकते। पदार्थ वा विषय का कोई न कोई आकार होगा। अब प्रश्न यह है कि सब विषयों की विचार सामग्री का एक ही आकार हो सकता है या नही। एक प्रकार से तो हर एक सम्बन्ध निराला ही है। जिस प्रकार कोई दो मनुष्य एक से नहीं होते, उसी प्रकार काई दो विचार भी एक से नहीं होते। ऐसी अवस्था में तो तर्क शास्त्र क्या, किसी विज्ञान की भी सम्भावना नही। प्रत्येक विज्ञान के अनेकत्व में एकत्व देखना चाहता है। तर्कशास्त्र में भी विचार के अनेक आकारों में से कुछ ऐसे आकार निश्चित किए जाते हैं जो कि प्रायः सत्य विवेचनाओं के आकार होते हैं। इन आकारों के निश्चित करने के लिये हमको न तो सर्वज्ञ ही बनने की आवश्यकता है आर न ज्ञान की विकास सम्बन्धी अन्तिम अवस्था की प्रतीक्षा करना है। हम हर एक विज्ञान में

वर्त्तमान से ऊपर जाते हैं। विचारों में एकता देखना वा विचार के आदर्श आकार की खोज तर्क शास्त्र के लिये कोई अनुचित कार्य नहीं।

यहाँ तक तो आकार वाद ठीक ही है। अब इसके आगे जब कि वह कोरा आकार देख कर ही अनुमान को सत्य ठहरा देता है अथवा जब कि वह यह कहता है कि जो अनुमान इन आकारों में स्थान पा सकें, वही ठीक है, वाकी सब गैर ठीक हैं, तब आकार वाद दूसरों की समालोचना का विषय बन जाता है। तर्क शास्त्र की सामग्री की शुद्धता पर विचार करना उतना ही आवश्यक है जितना कि पद्धति की शुद्धता पर। मूर्त्ति तभी उत्तम बनती है जब उसकी धातु भी शुद्ध हो और उसका आकार भी निर्दोष हो। निर्दोष आकार में अनुमान को रक्खा हुआ देख कर अनुमान को शुद्ध कह देना उतना ही भ्रमपूर्ण है, जितना हर एक उज्वल वस्त्रधारी पुरुष को भला आदमी कह देना। इसके साथ यह प्रश्न अवश्य उठता है कि तर्क शास्त्र के लिये सामग्री की शुद्धता देखना कहाँ तक सम्भव है? जब हम सामग्री की शुद्धता नहीं देख सकते, तब हम केवल आकार ही की शुद्धता के ऊपर ध्यान दे सकते है। ठीक है। जिस विषय के ऊपर हम विचार करते हैं, उसका थोड़ा बहुत ज्ञान हमको अवश्य होता है। जब हम तर्क शास्त्र को व्यवहार में लाते हैं, तब हम को विषय का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि हम किसी विषय के जानकार नहीं हैं, तो केवल तर्क शास्त्री होने

से हमको उस विषय की विवेचना करने का अधिकार नहो। विषय का जानकार तर्कशास्त्र से पूरा लाभ उठा सकता है। हमारा कहना केवल इतना ही है कि हमको विषय के लिये आँखें बन्द नही रखनी चाहिएँ। पूर्व वाक्यों का आधार प्रत्यक्ष के अनुभव में होता है। आगमन प्रकरण में यह भी बतलाया जायगा कि प्रत्यक्ष के आधार पर हम कहाँ तक साधारण सिद्धान्त बना सकते हैं। आगमन से निगमन की पुष्टि करते हुए एवं अनुमान के पूर्व वाक्यों की अपने पूर्वार्जित ज्ञान से संगति करते हुए यदि हम तर्क शास्त्र द्वारा निश्चित किए हुए आदर्श आकारों में इस परिमार्जित सामग्री को स्थान दें, तो अनुमान से हम पूरा पूरा लाभ उठा सकेंगे। हिन्दू तर्कशास्त्रो ने विचार की सामग्री पर पूरा पूरा ध्यान दिया है। हम विचार की सामग्री के प्रति उदासीन नहीं रह सकते। अनुमान की सामग्री के संबंध में अब दो प्रश्न उठते हैं। क्या सब अनुमान जो लैंगिक अनुमान की कसौटी में गैर ठीक ठहरते हैं, विषय का ज्ञान होने पर ठीक हो सकते हैं? दूसरा यह कि क्या सब सत्य विवेचनाएँ लैंगिक अनुमान का रूप धारण कर सकती है? पहले प्रश्न के विषय में यह कहना है कि विषय का पूरा ज्ञान न होने के कारण बहुत से सही अनुमान ग़लत हो जाते हैं। यदि विषय का यथोचित ज्ञान हो तो कार्य से कारण का अनुमान कर हो सकेगा। 'आ' वाक्य का कुछ स्थानों में साधारण परिवर्तन गलत न होगा और तीसरे

आकार में पूर्ण व्याप्तिवाला निगमन भी निकल सकेगा। विषय ज्ञान से ऐसी ऐसी बहुत सी बातें सम्भव हैं; किन्तु केवल तर्क जाननेवाले को बहुत सी जगहों में विषय का ज्ञान सम्भव नही। इसी लिये आकार वाद की सीमाएँ बाँध कर कभी कभी सत्य अनुमान का पूरा आदर नही होने पाता। इतना जरूर कहा जायगा कि कोई असत्य अनुमान सत्य का आकार नहीं धारण कर सकता; शर्त इतनी ही है कि अनुमान की सामग्री निर्दोष हो।

अब प्रश्न यह है कि सब प्रकार की विवेचनाएँ निगमनात्मक लैंगिक रूप धारण कर सकती हैं या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर प्रायः निषेधात्मक दिया जाता है; और निषेध की पुष्टि में कहा जाता है कि परिमाण, काल, दिशा का सम्बन्ध लैंगिक अनुमान का रूप धारण नहीं कर सकता।

संबधसूचक अनुमान

अ ब से बड़ा है; ब स से बडा है, इसलिये अ स से बड़ा है। अ क के बराबर है, क ख के बराबर है; इसलिये अ और ख बराबर हैं। अ ब के पूर्व में है; ब स के पूर्व में है; इसलिये अ स के पूर्व में है। अ ब के पश्चात् हाता है; ब स के पश्चात् होता है; अतः अ स के पश्चात् होता है।

ये विवेचनाएँ लैंगिक अनुमान के रूप में नही आ सकती। इनको खींच तान कर लैंगिक अनुमान का रूप दिया जा सकता है। जो ब से बड़ा है, वह स से और बड़ा है। अ ब से बड़ा है

इसलिये अ स से बड़ा है। इसका रूप पके अनमान का सा है; किन्तु इसमें इसके पूर्व रूप से थोड़ा बहुत परिवर्त्तन हो गया है। व के स्थान में "जो व से बड़ा है" हो गया। फिर बहुत से लोगों को इस बात में शंका है कि इस अनुमान के पूर्व वाक्यों के उद्देश्य और विधेय में गुणी और गुण का संबंध नही है। यह बात ठीक है कि प्रायः लैगिक अनुमान में गुण और गुणी का योग होता है। और ऊपर जो अनुमान दिए गए है, उनमें गुण और गुणी का योग नहीं है। गुण और गुणी के योग के अतिरिक्त आधुनिक तार्किक लोगों ने (एफ० एच० ब्रेडले ने और जिन्होंने इनका इस विषय में अनुकरण किया है, उन्होंने) परिमाण, समय और काल के संबंध योग माने है। गुण शब्द का यदि विस्तृत अर्थ लिया जाय तो ये सब संबंध गुण के अंतर्गत होंगे। अब इन अनुमानों के लिये या तो डिक्टम डी ओम्नाई एट नल्लो (जो सबके लिये है, वह उसके अन्तर्गत भाग के लिये भी है) की भाँति और कोई सूत्र बनाया जाय* या इनको ऊपर की रीति से खींच खाँच कर लैगिक अनुमान के रूप में ले आना चाहिए। ये लैगिक अनुमान के रूप में आ

---

* हैमिलटन साहब ने अपने आकार रहित न्याय (Unfigured Syllogism) का सिद्धान्त इस प्रकार बतलाया है—यदि दो बोध एक तीसरे से एकता रखते हो अथवा उन दोनों में से एक एकता रखता हो और दूसरा न रखता हो तो उसीके अनुसार वे दोनो बोध आपस में एकता रक्खेंगे या न रक्खेंगे।

सकते हैं; किन्तु ये उस लैंगिक अनुमान के विषय नहीं हैं जो केवल आकार वाद पर अवलम्बित है।

लैंगिक अनुमान के विषय में मिल साहब की शंका

लैंगिक अनुमान के विषय में एक बड़ी भारी शंका उपस्थित की गई है। वह शंका मिल साहब ने उठाई है; और इस प्रकार से है कि इस अनुमान में निगमन बृहदनुमापक वाक्य के सहारे सिद्ध होता है; और बृहदनुमापक वाक्य निगमन के ऊपर आश्रित है। बृहदनुमापक में निगमन पहले ही से मौजूद होता है और अनुमान द्वारा ज्ञान की कुछ वृद्धि नही होती। सब मनुष्य नाशवान है। कवि लोग मनुष्य हैं। अतः कवि लोग नाशवान हैं। मिल साहब का कहना है कि "सब मनुष्य नाशवान हैं" इस वाक्य को हम तभी कह सकते हैं, जब हम को यह भी मालूम हो कि कवि लोग नाशवान हैं; और जब "सब मनुष्य नाशवान हैं" यह वाक्य कवियों के नाशवान होने पर निर्भर है, तो इस वाक्य से यह निगमन निकालना कि "कवि लोग नाशवान हैं" अतार्किक और निरर्थक है। जब कि बृहदनुमापक वाक्य के सत्य होने से पूर्व निगमन का सत्य होना जरूरी है, तब उसके आधार पर निगमन की सिद्धि नहीं हो सकती; और यदि सिद्धि की भी जाय तो वह पिष्टपेषण ही होगा। इसलिये जो अनुमान का रूप अरस्तू ने बतलाया है कि हम साधारण से विशेष पर आते हैं, ठीक नही है। उसमें आत्माश्रय (Petitio Principi) का दोष है।

"It must be granted that in every syllogism considered as an argument to prove the conclusion there is a *petitio principi* that no reasoning from generals to particulars can as such prove anything since from a general principle we can not infer any particulars but those which the principle itself assumes to be knowing."

फिर मिल के हिसाब से अनुमान का वास्तविक स्वरूप क्या है? मिल साहब का कहना है कि हम साधारण से विशेष वाक्य का अनुमान नहीं करते, वरन् विशेष से विशेष का करते है। साधारण वाक्य अनावश्यक है। मिल साहब का कथन है— "बिना साधारण सिद्धान्त तक गए हुए विशेष से विशेष का अनुमान न केवल हम कर ही सकते है, वरन् हमेशा किया करते हैं। हमारे सब आरम्भिक अनुमान प्रायः इसी प्रकार के है। बुद्धि का विकास होते ही हम विवेचना करने लगते है; और कई वर्ष पीछे साधारण शब्दों की भाषा का हमको ज्ञान होता है। बालक जब एक वार आग से उँगली जला लेता है, तब बिना इस साधारण वाक्य का ज्ञान हुए कि अग्नि दाहक शक्ति रखती है, वह हमेशा के लिये अग्नि से बचता रहता है। उसको अपनी स्मृति द्वारा यह ज्ञान है कि वह जल चुका है। उसी आधार पर जब वह दीपक को देखता है, तब विश्वास करता है कि यदि वह लौ पर उँगुली रक्खेगा, तो जल जायगा। वह

साधारण सिद्धान्त नही बनाता। वह विशेष से ही विशेष का अनुमान करता है। केवल गाँव की बुढ़िया ही नही है जो दूसरे बच्चे को अपने बच्चे की बीमारी के सादृश्य पर औषधि बतलाती हैं, वरन् हम सब साधारण सिद्धान्तों के अनुभव में उसी प्रकार अर्थात् विशेष से विशेष का अनुमान करते हैं।"

मिल साहब के कथन का सारांश इस प्रकार है—

(१) जो रूप निगमनात्मक लैंगिक अनुमान का माना गया है अर्थात् व्यापक से व्याप्य का अनुमान करना, वह ठीक नही। उसमें आत्माश्रय (Petitio Principi) का दोष है।

(२) वास्तव में भी व्यापक से व्याप्य का अनुमान नहीं किया जाता। अनुमान विशेष से विशेष का होता है।

(३) व्याप्तिसूचक वाक्य ऊपर के (अर्थात् विशेष से विशेष के) अनुमानों का संग्रहीत फल है और उस प्रकार के नए अनुामन करने के लिये सूत्र है।

(४) अनुमान का बृहदनुमापक वाक्य भी इसी प्रकार का सूत्र है। निगमन उससे नही निकाला जाता, वरन् उसके अनुसार निकाला जाता है।

(५) अनुमान के असली पूर्व वाक्य वे विशेष घटनाएँ हैं जिनसे साधारण वाक्य संगृहीत किया जाता है।

पहली बात के सम्बन्ध में पहले विवेचना की जायगी और शेष बातों पर एक साथ विवेचना कर ली जायगी।

क्या अनुमान में आत्माश्रय (Petitio Prinicipi) का दोष है?

अनुमान का निगमन यदि पूर्व वाक्यों में वर्तमान है, तब तो अनुमान पर सिद्ध-साधन का दोष लगाया जा सकता है; और यदि उसमें मौजूद नहीं है तो निगमन की सत्यता का आधार क्या? इस उभयतोपाश से बचने का क्या उपाय है? वास्तव में निगमन पूर्व वाक्यों में मौजूद है भी है और नहीं भी है। वह वहाँ पर गुप्त रीति से मौजूद है, स्पष्ट रीति से नहीं। गुप्त का स्पष्ट करना ही ज्ञान की वृद्धि करना है। आइए, इस पर और थोड़ा सा विचार करें।

क्या अनुमान में आत्माश्रय दोष है?

इस दोष के लगाने का मूल कारण पूर्ण व्याप्तिवाले वाक्यों का ठीक अर्थ न समझना है। यदि पूर्ण व्याप्तिवाले वाक्य केवल गणना का फल होते तो यह शंका निर्मूल नहीं थी। जब हम कहते हैं कि सब मनुष्य नाशवान हैं, हम भूत, भविष्य, वर्त्तमान के सब मनुष्यों को गिनकर यह नहीं कहते कि सब मनुष्य नाशवान है, वरन् हम यह देख लेते हैं कि मनुष्यत्व गुण के साथ नाशवान होना गुण लगा है, तभी हम साधारण वाक्य कहते है। यदि गणना के आधार पर ही साधारण वाक्य बनाए जाते तो संसार में ज्ञान में उन्नति की संभावना न थी। गणना का फल चाहे झूठा हो जाय, किन्तु गुणों की परीक्षा करके जो सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, वह सहज में झूठा नहीं हो सकता। हिन्दू न्याय ग्रन्थों में व्याप्ति गुणों की मानी है, पदार्थों की नहीं। गुणों के ही सम्बन्ध से

अनुमान किया जाता है; इसलिये यहाँ पर इस प्रकार की शंका के लिये स्थान नहीं।

"मनुष्य नाशवान हैं" इसका वास्तविक स्वरूप इस प्रकार से होना चाहिए। जहाँ पर मनुष्यत्व है, वही पर विनाशत्व है। साधारण वाक्यों को अयथार्थ अर्थ लगाया गया है। उसका अनुचित लाभ उठाकर मिल साहब ने यह शंका उपस्थित की है। हम व्यापकसिद्धान्तका जानते हैं, किन्तु वे सब उदाहरण, जिन में वह प्रयुक्त होता है, हमेशा हमारे ज्ञान में नहीं रहते। यदि ऐसा होता तो मनुष्य और ईश्वर में भेद न होता। जब हम कहते हैं कि सब पदार्थ गरम करने से बढ़ते हैं, तब क्या हमारे मन में सब पदार्थों की सूची वर्त्तमान रहती है? यदि ऐसा होता तो अवश्य अनुमान में आत्माश्रय दोष होता। ईश्वर के लिये सभी प्रत्यक्ष हैं। उसके लिये कोई बात परोक्ष या अनुमानजन्य नहीं। हम सिद्धान्त को मान लेते हैं, किन्तु हमको यह नहीं मालूम रहता कि कौन कौन सी बातें उसके अन्तर्गत हैं। जब हमको किसी बात मे संदेह होता है, तब हमारा संदेह मिटाने के लिये कोई ऐसा व्यापक सिद्धान्त बताया जाता है जिसको हम सहज में स्वीकार कर लेते हैं; और जब फिर उसी के साथ यह भी बतलाया जाता है कि हमारा विवेचना का विषय उसी व्यापक सिद्धान्त के अन्तर्गत है, तब संगति का नियम हमको इस बात के लिये बाध्य करता है कि हम सिद्धान्त के साथ उसके उदाहरण को भी ठीक मानें। यही

निगमनात्मक अनुमान का तत्व है। सिद्धान्त हमको साध्य वाक्य में मिल जाता है। पक्षवाक्य द्वारा हमको यह ज्ञान कराया जाता है कि विवेच्य विषय सिद्धान्त के अन्तर्गत है। निगमन दोनों ही पूर्व वाक्यों को मिला कर निकलता है, एक पूर्व वाक्य से नहीं। केवल वृहदनुमापक वाक्य के रख देने से कुछ नहीं होता। सिद्धान्त सैकड़ों उदाहरणों में प्रयुक्त होता है; किन्तु जब तक उसे किसी विशेष उदाहरण में न लगावें, तब तक उससे कोई फल नहीं। जब तक सिद्धान्त मौजूद न हो, तब तक पक्ष वाक्य से जिसको कि हमने लघ्वनुमापक वाकय कहा है, कुछ नहीं सिद्ध होता। उसके लिये आधार दिया है। वह आधार वृहद-नुमापक वाक्य से मिलता है। निगमन दोनों ही पूर्व वाक्यों के योग का फल है। यदि वह एक ही पूर्व वाक्य से निकल आता तो उसमें अवश्य आत्माश्रय दोष आ जाता।

ज्ञान हमेशा सापेक्ष रहता है। जो बात एक के लिये स्पष्ट है, वह दूसरे के लिये अस्पष्ट है। जो बात ईश्वर के लिये हस्ता-मलक वत् हैं वह हमारे लिये अनुमान का विषय है। जो बात गुरु के लिये सहज है, वह चेले के लिये कठिन है। जो बात विश्वकोष का सा मस्तिष्क रखनेवाले पुरुष के लिये आत्माश्रय है, वह साधारण पुरुष के लिये नहीं है। इसलिये हिन्दू तर्क ग्रन्थों में दो प्रकार का अनुमान माना है—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। अधिकतर अनुमान परार्थानुमान होता है। अनुमान से ज्ञान की वृद्धि होती है या नहीं, इस प्रश्न के उत्तर में पहले तो यह कहना

आवश्यक है कि तर्कशास्त्र का उद्देश्य जितना ज्ञान की वृद्धि करना है, उससे अधिक प्रमाणों द्वारा ज्ञान की पुष्टि करना है अनुमान द्वारा गुप्त स्पष्ट होता है और संकोच का विस्तार होता है। यही ज्ञान की वृद्धि है। हम अल्पज्ञ हैं। हमारे लिये एक छोटे से सिद्धान्त को पूर्णतया समझने के लिये जन्म जन्मान्तर का परिश्रम चाहिए। यदि हम सर्वज्ञ होते तो हमारे लिये अनुमान से कुछ लाभ न था। वास्तव में हमको अनुमान से कुछ काम ही न पडता। जब तक हम अल्पज्ञ रहें, तब तक हमारे ज्ञान में अनुमान द्वारा वृद्धि होने की सम्भावना बनी रहेगी।

इसमें संदेह नहीं कि अनुमान का अंतिम आधार प्रत्यक्ष में है। अनुमान विशेष घटनाओं के आधार पर नहीं होता। यदि ऐसा होता, तो चाहे जिस विशेष घटना से चाहे जिस घटना का अनुमान कर लिया जाता। हम उन्हीं विशेष उदाहरणों के आधार पर अनुमान करते हैं जिनमें कुछ सादृश्य है। यह सादृश्य का देखना है—विशेष से साधारण की कोटि में पहुँच जाना है। हमको साधारण नियम तक पहुँचने के लिये बहुत से उदाहरणों की आवश्यकता नहीं। एक दो अच्छे उदाहरणों के सहारे भी सिद्धांत निकाला जाता है। हम विशेष से विशेष का अनुमान नहीं करते, वरन् विशेष में जो साधारण नियम व्यापक है, उसके आधार पर अनुमान करते हैं। हम अपने पूर्वजों को देख कर यह अनुमान नहीं करते कि

क्या विशेष से विशेष क्या अनुमान होता है

हम और हमारे पीछे आनेवाले सब नाशवान हैं, वरन् हमारे पूर्वजों में और हम में जो मनुष्यत्व गुण है, उसके साथ नाश का सम्बन्ध समझते हुए हम यह अनुमान करते हैं कि मनुष्य नाशवान है। हम दो चार गरम किए हुए पदार्थों को देख कर यह अनुमान नहीं करते कि गरम किए हुए पदार्थ बढ़ते हैं, वरन् गर्मी से जो परमाणुओं का संचालन होता है, उसका और बढ़ने का सम्बन्ध देख कर कहते हैं कि गरम किए हुए पदार्थ बढ़ते हैं। हमारा मन तुरन्त विशेष से साधारण की ओर जाता है। कभी कभी इस क्रिया में भूल भी हो जाती है। इसी के निवारण के लिये आगमनात्मक तर्क है।

साधारण नियम की ओर जाने में शीघ्रता के कारण हम जो भूल कर जाते हैं, वह भी इस बात का प्रमाण है कि हम विशेष पर ही नहीं ठहरे रहते। बालक यदि सचमुच के कुत्ते से डरता है, तो कुत्ते के आकार मात्र से भी डरने लग जाता है। यह विशेष से विशेष का अनुमान नहीं है। विशेष उदाहरणों में जो नियम व्यापक हैं, उनको हम उन उदाहरणों से अलग करके उस व्यापक नियम के आधार पर नए नए उदाहरणों में व्यापक नियम को लगा कर अपने ज्ञान की पुष्टि और वृद्धि करते रहते हैं। यही आगमनात्मक अनुमान का सार है।

चौदहवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) क्या सब तरह के अनुमान त्र्यावयवी के प्रकार में रक्खे जा सकते हैं?

(२) ब्रेडले साहब ने धर्मी धर्मेतर सम्बन्धों के बतानेवाले अनुमानों के कौन कौन नए सिद्धान्त बनाए और उनके बनाने में उनको कहाँ तक सफलता हुई है?

(३) क्या ब्रेडले साहब के तीनों नियमों को शामिल करनेवाला एक व्यापक नियम बनाया जा सकता है?

(४) मिल साहब ने लैंगिक अनुमान के विषय में क्या आपत्ति उठाई है? उस आपत्ति का आधार क्या है?

(५) लैंगिक अनुमान में अनुमान का क्या आधार है?

(६) वर्तमान तार्किकों (शिलर प्रभृति) का लैंगिक अनुमान के विषय में क्या मत है?

(७) निगमन में पूर्व वाक्यों की अपेक्षा कोई नई बात प्राप्त होती है या नहीं?

पंद्रहवाँ अध्याय

तर्काभास

(Fallacies)

मनुष्य भूल करता है। विचार में भी भूल होती है और क्रिया में भी। भूल करनेवाला स्वयं भी भूल करता है और दूसरों को भी भूल में डालता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दूसरों को भूल में डालने के लिये जान बूझ कर भूल की जाती है। बहुत सी युक्तियाँ युक्तियों का रूप रखते हुए भी युक्तियाँ नही होतीं। ऐसी ही युक्तियों को, जो देखने में तार्किक मालूम पड़ती हैं किन्तु वास्तव में तार्किक नहीं होती, तर्काभास कहते है। तर्काभास के विभाग कई प्रकार से किए गए हैं। भूल दो प्रकार से हो सकती है। या भूल भाषा में हो, या विचार में। विचार में भूल दो प्रकार से हो सकती है। या तो विचार के आकार में भूल हो या विचार के विषय में दोष हो, अर्थात् अनुमान की सामग्री दूषित हो। अरस्तू ने दो ही प्रकार के तर्काभास माने हैं—(१) एक जिनकी उत्पत्ति भाषा से हो (In Dictione) और (२) जिनकी उत्पत्ति भाषा से बाहर हो (Extra Dictionem)। बहुत से भाषा सम्बन्धी तर्काभासों को अर्द्ध तार्किक (Semi-logical) कहा गया है।
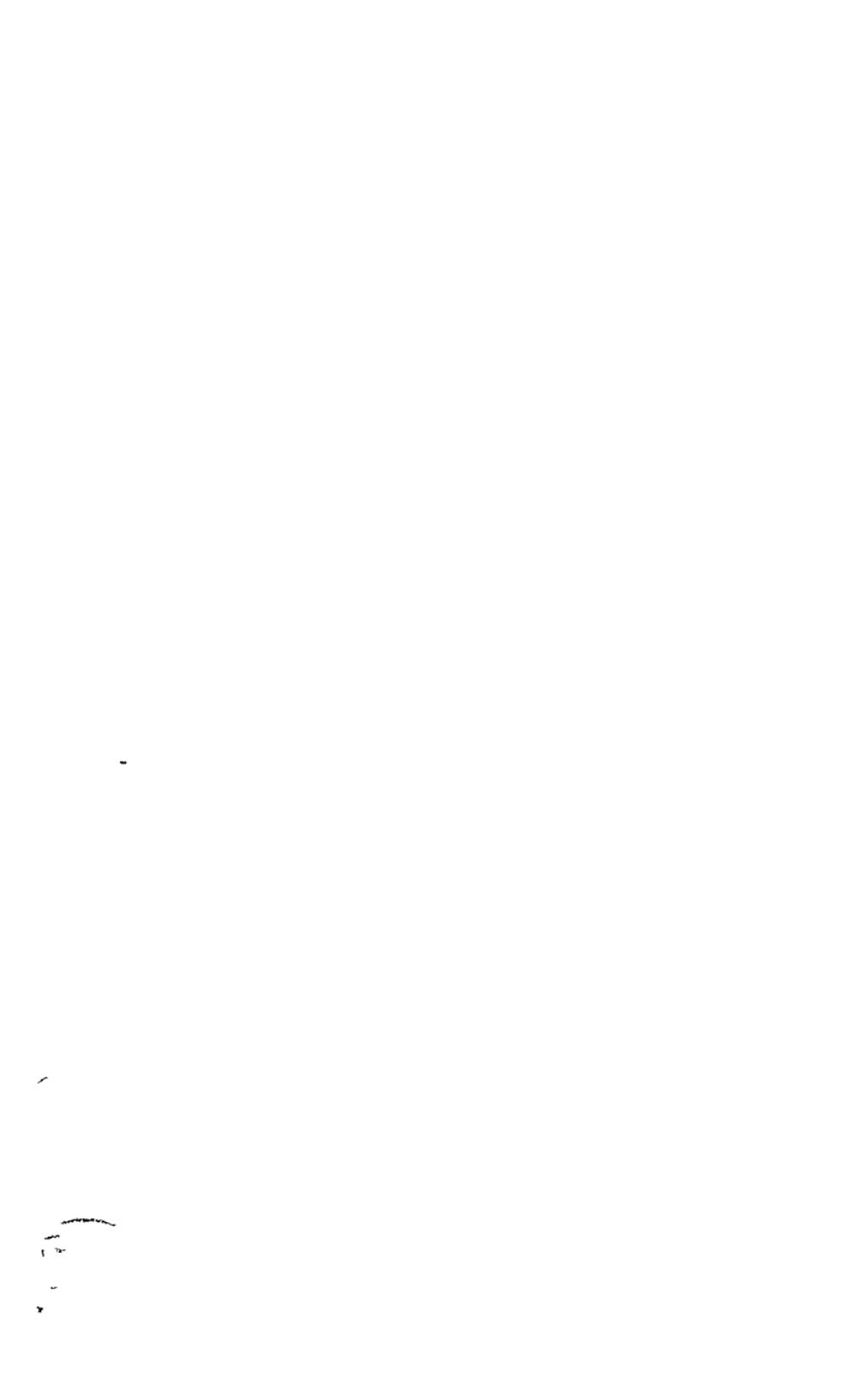
वहुत सी ऐसी भी भूलें हैं जिनमें भाषा और विचार दोनों के ही सम्बन्ध से दोष आ जाते हैं। जिनमें भाषा सम्बन्धी दोष का आधिक्य है, उनका भाषा की भूलों के साथ वर्णन किया गया है; और जिनमें विचार सम्बन्धी दोष अधिक है, उनका वर्णन विचार की भूलों के साथ किया गया है।

यद्यपि तर्काभासों का ठीक ठीक विभाग करना कठिन है, तथापि विद्यार्थियों की सुगमता के लिये इन्हीं दो विभागों के आधार पर तर्काभासों का वर्णन किया जाता है।

भाषा सम्बन्धी तर्काभास

पद सम्बन्धी द्व्यर्थकता—

मध्य पद को द्व्यर्थक न होना चाहिए, यह बात निरपेक्ष अनुमान के नियमों पर विवेचना करते हुए बतला दी गई थी। इस तर्काभास मे पदों की द्व्यर्थकता के सभी उदाहरण आ जायँगे। लैङ्गिक अनुमान में सभी पद दो दो बार आते हैं। किन्तु दोनों जगह अर्थ एक ही रहता है। जहाँ पर कोई पद एक बार एक अर्थ में आया और दूसरी बार दूसरे अर्थ मे आया, तो इस तर्काभास का उदाहरण उपस्थित हो जायगा।

साध्य में द्व्यर्थकता—

बीकानेर जेल के कैदी सुखी हैं।
देवदत्त बीकानेर जेल का कैदी है।
अतः देवदत्त सुखी है।

इस अनुमान में साध्य पद सुखी पूर्व वाक्य में और जेलों की अपेक्षा सुखी के अर्थ में आया है; और यदि निगमन में सुखी का अर्थ निरपेक्ष रीति से लगाया जाय, तो यही भूल होगी।

सरयू के पार रहनेवाले सरयूपारी हैं।

देवदत्त एक क्षत्री सरयू के पार रहता है।

अतः देवदत्त सरयूपारी है।

पूर्व वाक्य में सरयूपारी का शब्दार्थ लिया गया है और यदि निगमन में इसका प्रचलित अर्थ सरयूपारी ब्राह्मण लगाया जाय, तो ठीक नहीं।

मध्य पद की द्व्यर्थकता—

अशुद्ध शुद्ध है।

अशुद्ध अशुद्ध है।

अतः अशुद्ध शुद्ध है।

ऊपर के अनुमान में अशुद्ध पहली बार तो अशुद्ध शब्द (जैसा कि वहाँ पर लिखा हुआ है) का वाचक है और दूसरी बार गुण का वाचक है।

जो बन्धन से मुक्त हो गया सो सुखी है।

कैदी बन्धन से मुक्त हो गया है।

अतः कैदी सुखी है।

इस अनुमान में पहला बार तो पक्ष अर्थात् कैदी का अर्थ जो पहले कैदी था, लगाया गया; और यदि कोई निगमन में कैदी का अर्थ यह लगावे कि जो अब कैदी है तो ठीक न होगा।

इसमें दूसरी द्व्यर्थकता बन्धन से मुक्त होने की है। पहले घाक्य में तो बन्धन का अर्थ सांसारिक बन्धन से है और दूसरे वाक्य में कारागार सम्बन्धी बन्धन से मुक्त होना है।

नव कम्बलोऽयं बालकः।

नव कम्बल के दोनों अर्थ लगाए जा सकते हैं—नौ कम्बल-वाला वा नए कम्बलवाला। उसको नौ कम्बलवाला मानकर उससे कुछ कम्बल माँगे जायँ, तो वाक् छल ही होगा। इस प्रकार के तर्काभासों को न्याय-शास्त्र में वाक्-छल कहा है। वाक्य सम्बन्धी द्व्यर्थकता के उदाहरण इस प्रकार से हैं—"अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्य्यताम्"। इस वाक्य में राज्ञः शब्द षष्ठी है। यदि इसका सम्बन्ध पुरुष से किया जाय, तो यह अर्थ होता है कि यह राज्य का आदमी आता है। लड़के को हटा लो। यदि राज्ञः शब्द का सम्बन्ध पुत्र से किया जाय तो इसका अर्थ यह होता है कि राजा का पुत्र आता है; आदमी को हटा लो। एक तीसरा भी अर्थ हो सकता है। यदि अपसार्य्यताम् का राज्ञः पुरुषः के साथ अर्थ किया जाय, तो अर्थ यह होगा कि यह पुत्र आता है, राजा के पुरुष को हटा लो। किन्तु यह कुछ अस्वाभाविक होगा। जहाँ पर कि कर्त्ता और कर्म का एक ही रूप रहता है, वहाँ पर वाक्य सम्बन्धी द्व्यर्थ-कता के लिये बहुत स्थान रहता है। The Greeks the Romans shall conquer इसके दोनों ही अर्थ हैं। रोमन लोग यूनानियों को जीतेंगे, और यह भी कि यूनानी लोग रोमन लोगों को

जोतेंगे। यह भविष्यवाणी एक प्रकार से पूर्ण हो गई थी। राजनैतिक जीत रोमन लोगों की हुई थी और विद्या सम्बन्धी जीत यूनानी लोगों की हुई। 'रोको मत आने दो' इसके दो अर्थ हो सकते हैं—रोको मत, आने दो। और रोको, मत आने दो।

उच्चारण सम्बन्धी द्व्यर्थकता—

इसके उदाहरण बहुत हैं। उच्चारण में जिस शब्द पर जोर दिया जाय, उसी के अनुसार वाक्य का अर्थ बदल जाता है। 'आप कल रात को कहाँ गए थे' यह साधारण वाक्य है; किंतु एक पद पर जोर देने से अर्थ बदल जाता है।

(१) आप कल रात को कहाँ गए थे? इसका अर्थ यह होगा कि और कोई जाय तो जाय, आप तो कहीं नही जाते। सो आप कहाँ गए थे?

(२) आप कल रात को कहाँ गए थे? कल पर जोर देने से यह अर्थ हो सकता है कि कल कोई ऐसा दिन था जिसमें कि साधारणतः आप बाहर नही जाते।

(३) आप कल रात को कहाँ गये थे—रात पर ज़ोर देने से यह मालूम होता है कि आप प्रायः रात में नहीं जाते। रात में बाहर जाना कुछ शंका भी सूचित करता है। वह शंका कई प्रकार की हो सकती है। रात को बाहर जाना स्वास्थ्य के लिये खराब हो अथवा किसी आसाधरण काम के लिये गए हों। कोई बीमार था या और कोई घटना तो नहीं हो गई। चोरी और बदमाशी के लिये जाने की भी शंका असंभव नहीं।

(४) आप कल रात को कहाँ गये थे? कहाँ पर ज़ोर देने से शंका और उत्सुकता दोनों ही प्रकट होती हैं।

संकलन और व्याकलन—कभी कभी ऐसा होता है कि एक शब्द पूर्व के वाक्यों में व्यक्तियों का द्योतक होता है और निगमन में समूहवाचक होता है अर्थात् एक स्थान में एक पद जातिवाचक समझा जाता है, और दूसरे स्थान में समुदाय-वाचक समझा जाता है। और इसी तरह से जहाँ पर पहले किसी शब्द को समुदायवाचक मान लें और फिर उसी को जातिवाचक मान लें तो भी भूल होगी। पहले प्रकार की भूल को संकलन की भूल कहते हैं और दूसरे प्रकार की भूल को व्याकलन की भूल कहते हैं।

संकलन की भूल का उदाहरण—

भवभूति के सब नाटक चार घंटे में खेले जा सकते हैं। उत्तर रामचरित्र, महावीर चरित्र और मालती माधव भव-भूति के सब नाटक हैं; अतः उत्तर रामचरित्र, महावीर चरित्र और मालती माधव चार घंटे में खेले जा सकते हैं। पहले पूर्व वाक्य में सब का अर्थ प्रत्येक है, अर्थात् एक एक करके सब नाटक; और दूसरे पूर्व वाक्य में सब का अर्थ समुच्चय रूप से लिया गया है।

यदि कोई कहे कि पार्लिमेण्ट की राय मान्य नहीं, क्योंकि पार्लिमेण्ट का प्रत्येक मेम्बर भूल कर सकता है, तो वह भी संकलन सम्बन्धी भूल करेगा। सम्भव है कि प्रत्येक मेम्बर

व्यक्तिशः भूल कर जाय, किन्तु सब का मिल कर भूल करना यद्यपि असम्भव नहीं कहा जा सकता, तथापि कठिन अवश्य है।

व्याकलन का उदाहरण—

इस बाग़ के वृक्षों की अच्छी छाया है।

वह आम का वृक्ष जो गत वर्ष लगाया गया था, इस बाग़ का वृक्ष है।

इसलिये वह आम का वृक्ष जो गत वर्ष लगाया गया था, अच्छी छायावाला है।

इस फौज के सिपाही अजेय है।

देवदत्त इस फौज का सिपाही है।

अतः देवदत्त अजेय है।

सब पंचों का फैसला मान्य है।

सोमदत्त का फैसला पंच का फैसला है।

अतः सोमदत्त का फैसला मान्य है।

पहले पूर्व वाक्य में पक्ष समूहवाचक है, सब पंचों का इकट्ठा फैसला मान्य है; लेकिन किसी एक पंच का फैसला मान्य नही हो सकता।

आलंकारिक भूल—

जो कुछ देता है, वह प्रशंसा के योग्य है।

सूम घर के किवाड़ देता है।

अतः सूम प्रशंसा के योग्य है।

इस प्रकार की भूल तो कोई हँसी में ही करेगा, किन्तु

कभी कभी एक शब्द के साधारण अर्थ और आलंकारिक अर्थ से भेद हो जाता है। एक शब्द से और जो शब्द बनते हैं, उनके अर्थ में भी भेद हो जाता है। एक शब्द दूसरे शब्द से मिल कर दूसरा अर्थ धारण कर लेता है। महल के साथ रानी का योग रानी का अर्थ बदल देता है।

नीचे की युक्ति इसी तर्काभास का उदाहरण है।

अभिमानी लोग निंद्य हैं।

स्वाभिमानी लोग अभिमानी होते हैं।

अतः स्वाभिमानी लोग निंद्य हैं।

साधारणतः अभिमानी का अर्थ खराब है। किन्तु स्वाभिमानी का अर्थ अच्छा है।

अलंकार सम्बन्धी द्व्यर्थकता से जो भूल होती है, उसका नाम न्याय शास्त्र में उपचार छल दिया है। इसका उदाहरण इस प्रकार से दिया जाता है।

मंच चिल्लाते हैं तो क्या मंच सजीव हैं ?

"मंच चिल्लाते हैं" से "मंच पर के आदमी चिल्लाते हैं" ऐसा अर्थ लगाया जायगा। जब शब्द के कोरे अर्थ पर बहस की जाती है, तब इसी तर्काभास के उदाहरण उपस्थित हो जाते हैं। कोई कहे कि मुझे तो दो रोटी रोज चाहिए और मैं आपका काम करता रहूँगा, तो यदि उसको गिनती की दो ही रोटियाँ दी जायँ तो वह आलंकारिक द्व्यर्थकता का आश्रय लेता है। दो रोटी का अर्थ गिनती की दो रोटी नहीं; उसका अर्थ है मामूली तौर से खाने

पाने का सहारा चला जाय। द्वार रक्षाए रहने का अर्थ यदि कोई यह लगावे कि केवल दरवाजे की रक्षा करते रहना, तो यह मूर्खता ही है। इसी प्रकार जो लोग किसी वादे या सरकारी हुक्म का आश्रय न लेकर केवल शब्दों के ऊपर ही वहस करते हैं, वे इसी प्रकार की भूल करते हैं।

विचार के विषय संबंधी तर्काभास

विचार के आकार संबंधी तर्काभासों का वर्णन अनुमान के नियमों पर विवेचना करते हुए कर दिया गया है। यहाँ केवल उन्हीं तर्काभासों पर विचार किया जायगा जो विचार के विषय से सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार के तर्काभासों में उपाधि संबंधी तर्काभास पहले आता है। गौण वात से वा उपलक्षण से लक्षण संबंधी अनुमान करने में यह भूल होती है। इसकी यह मिसाल दी गई है। क्या सुकरात मनुष्य है ? क्या प्लेटो सुकरात से भिन्न है ? इसलिये प्लेटो मनुष्य से भिन्न है। प्लेटो और सुकरात व्यक्तिता में भिन्न हैं, जाति में नहीं। दो मनुष्य मनुष्य होने में एक हैं, किन्तु उनके औपाधिक गुण भिन्न हो सकते हैं। इस औपाधिक संबंधी तर्काभास का यह प्राचीन रूप है। कुछ वर्तमान तार्किकों ने इसका साधारण से विशेष वाले तर्काभास से तादात्म्य किया है, किन्तु यह उससे भिन्न है। साधारण से विशेष और इसके विपरीत विशेष से साधारण का तर्काभास इससे भिन्न है।

डी मारगिन साहब (De Morgan) ने औपाधिक वाक्य से औपाधिक वाक्य का अनुमान करना तीसरे प्रकार का तर्काभास मानकर इसको भी उपाधि संबंधी तर्काभास के अन्तर्गत किया है।

साधारण से विशेष पर जाना (A dicto simpliciter ad dictum secundum quid)

निरौपाधिक से औपाधिक पर जाना

जो किसी दूसरे के शरीर को काटता है वह निन्दनीय है।

डाक्टर लोग दूसरे के शरीर को काटते हैं, अतः वे निन्दनीय हैं।

इस अनुमान में पहला वाक्य साधारण उपाधि रहित है और दूसरा वाक्य औपाधिक है, डाक्टर जो दूसरे का शरीर काटता है, वह उसके लाभ के लिये। इसलिये डाक्टर को साधारण वाक्य के आधार पर दोषी ठहराना ठीक नहीं।

जो दूसरे को गोली मारे वह दंडनीय है।

सिपाही लोग दूसरे को गोली मारते हैं।

अतः सिपाही लोग दंडनीय हैं।

ऊपर का वाक्य साधारण है, उसमें कोई शर्त्त वा उपाधि नहीं। नीचे का वाक्य साधारण नहीं। सिपाही लोग जो गोली चलाते हैं, सो देश के हित के लिये राजाज्ञा पाकर चलाते हैं। जब उनके साथ राजाज्ञा की उपाधि नहीं होती, तब वे भी दंडनीय हो जाते हैं। इसी के विपरीत यदि कोई कहे कि सिपाही लोग

गोली चलाते हैं; इसलिये किसी को गोली मारना दंडनीय नहीं है। तो यह औपाधिक से निरौपाधिक पर जाना होगा। (A dicto secundum quid ad dictum simpliciter)। एक किस्सा मशहूर है कि एक अफगान चलती रेल में चढ रहा था। उसको रेल की पुलिस ने चढ़ने से रोकते हुए कहा कि चलती गाड़ी में चढ़ने का हुक्म नहीं। इतने में गार्ड चढ़ने लगा। फौरन अफगान ने गार्ड को पकड़ लिया और कहने लगा कि चलती गाड़ी में चढ़ने का हुक्म नहीं। यह निरौपाधिक से औपाधिक के अनुमान करने का अच्छा उदाहरण है।

न्याय शास्त्र में कहा हुआ 'सामान्य छल' इससे मिलता जुलता है। इसकी परिभाषा नीचे के सूत्र में दी गई है।

सम्भवतो अर्थस्यातिसामान्ययोगादसम्भूतार्थ कल्पना सामान्य छलम्। न्यायसूत्र १-२-१३।

अति सामान्य योग से अर्थात् सामान्य वा वर्ग के बड़े होने के आधार पर सम्भव बात के लिये असम्भवता की कल्पना करना सामान्य छल कहलाता है। जैसे यदि कोई कहे कि यह ब्राह्मण विद्वान् और सदाचारी है। इसके उत्तर में यदि कोई शंका करे कि कहीं सब ब्राह्मण सदाचारी और विद्वान् होते हैं, ब्राह्मण तो ज़रा ज़रा से बालक भी होते हैं। तो यहाँ पर शंका करनेवाला यह भूल जाता है कि विद्वान् और सदाचारी का गुण सब ब्राह्मणों के लिये नहीं कहा गया है, केवल इसी ब्राह्मण के लिये कहा गया है।

जहाँ पर कोई बात अपने ही आधार पर सिद्ध की जाय, वहाँ पर यह दोष आ जाता है। यह दोष न्याय शास्त्र में कहे

आत्माश्रय

हुए "प्रकरण सम"* से मिलता जुलता है। शब्द अनित्य है, क्योंकि उसमें नित्यत्व के गुण का अभाव है। अनित्यत्व और नित्यत्व के गुण का अभाव एक ही बात है। आत्माश्रय दोष प्रायः पर्य्यायवाचक शब्दों के व्यवहार से आता है। किन्तु जब कई अनुमानों के सिलसिले में यह दोष उत्पन्न होता है, तब यह सहज मे नहीं पहचाना जाता। उस दशा में इसको चक्रक कहते हैं। अन्योन्याश्रय दोष इसी का एक रूप है।

अरस्तू के अनुसार यह दोष पाँच प्रकार से आता है।

(१) जिस बात को सिद्ध करना है, उसको उसी रूप मे मान लेना। यह प्रायः भाषा के अनुचित प्रयोग से ही उत्पन्न होता है और इसमें पर्य्यायवाचक शब्दों का अधिकतर व्यवहार होता है।

(२) एक साधारण नियम मान लेना कि जो स्वयं निगमन की भाँति सिद्धि की अपेक्षा रखता हो। जिस शिक्षा द्वारा ज्ञान की वृद्धि होती है, उसी शिक्षा द्वारा मानसिक व्यायाम हो जाता है; इसलिये मानसिक व्यायाम के लिये दूसरे प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं। इसके सिद्ध करने के लिये ऊपर का

---

* यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थम पदिष्ट प्रकरणसम । न्यायसूत्र १—२—२७.

सिद्धान्त मान लिया गया; किंतु ऊपर का सिद्धान्त निगमन से मिलता जुलता है और सिद्धि की अपेक्षा रखता है।

(३) जो विशेष बातें साधारण नियम के अन्तर्गत आती हैं, उनको मान लेना। इसमें प्रायः गणनात्मक निगमन आते हैं।

(४) साधारण नियम के अंग करके उनको अलग अलग मान लेना।

(५) जिस बात को सिद्ध करना है, उसके विपरीत सम्बन्ध को मान लेना और उसको उलट कर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेना। अ ब के पूर्व में है; इसे सिद्ध करने के लिये ब अ के पश्चिम मे है, यह मान लेना।

वादी का ठीक उत्तर क्या है, इस बात का जानना कठिन है। वादी का कहना तो कुछ और होता है और उसके उत्तर में कुछ और बात कही जाती है। बहुत से लोग वादी की युक्ति का उत्तर नही देते और उसके चालचलन को बुरा कहने लग जाते है। लोग किसी बात के धार्मिक मूल की तो विवेचना करते है और उसकी आर्थिक उपयोगिता पर दोष लगाते है। स्पेन्सर साहब यूनानी या लैटिन भाषा पढ़ाने के सम्बन्ध में लिखते है कि दस में से नौ लड़कों को अपने भावी जीवन मे यूनानी और लैटिन भाषा का काम नही पड़ता। इसके खण्डन में वेल्टन साहब कहते हैं कि प्राचीन विद्याओं के पक्षपाती यह नही कहते कि वे भावी जीवन में काम आती हैं;

प्रतिवाद का अज्ञान
Ignaratio Elenchi

वरन् उनका कहना है कि उनके द्वारा मानसिक व्यायाम अच्छा हो जाता है और फलतः मानसिक शक्तियाँ पुष्ट हो जाती हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि लोग अपनी बात की पुष्टि में एकाध दृष्टान्त दे देते हैं। फिर लोग उस दृष्टान्त का आधार लेकर उस दृष्टान्त समानता की मुख्य बात को छोड़ कर और किसी गौण बात के आधार पर उस दृष्टान्त को दूषित ठहराते हैं, और उसके साथ ही सारी युक्ति को दूषित ठहरा देते है। जैसे यदि कोई कहे कि बालकों की शिक्षा का काम पुरुषों की अपेक्षा औरतें अच्छा कर सकती हैं, इसलिये औरतों को उच्च शिक्षा देना आवश्यक है। इस संबंध में कोई विलायत की स्त्रियों का उदाहरण दे, और विलायत की स्त्रियों का उदाहरण सुनते ही कोई दूसरा पुरुष बोल उठे कि अजी जनाब! यह तो आपने ठीक कहाः लेकिन आपको मालूम भी है कि वहाँ की स्त्रियाँ कैसी होती हैं? विलायत की स्त्रियाँ यदि बुरी हैं, तो यह उनकी सामाजिक प्रथा का फल है। स्त्रियों को बुरा कहने से उच्च शिक्षा देने की आवश्यकता का प्रतिवाद नही हुआ।

किसी ने कहा कि शब्द अनित्य है, क्योंकि वह कार्य्य है। जैसे घड़ा और घड़े का सादृश्य कार्यत्व में है, और किसी बात में नहीं; किन्तु घड़े की मिसाल को ही लेकर यदि कोई कहे कि घड़ा साकार है, इसलिये क्या शब्द भी साकार है? तो यह युक्ति ठीक नही। इस प्रकार के उत्तर को उत्कर्षसम* कहते

* न्याय शास्त्र मे २४ प्रकार की जातियाँ मानी है। जाति एक प्रकार के

हैं। प्रतिवाद का अज्ञान कई रूप धारण करता है। उनमें से सब से पहले व्यक्तिगत दोष-दर्शन न्याय है (Argumentum ad honimum) *। जब वादी की युक्ति का उत्तर देने के लिये अपने पास कोई सामग्री न हो, तब वादी को गाली देना इसका उदाहरण है। मुकदमा कमजोर है; दूसरी ओर के वकील को गाली दो। इन सब बातों का मूल पक्षपात में है। जो लोग सत्य की खोज नही करते, वरन् जीत ही चाहते है, वे लोग इन बातों का सहारा लेते हैं। जब कभी युक्ति के देनेवाले के आचरण, रीति या व्यवहार पर दोष लगाया जाय, तब समझ लेना चाहिए कि दोष देनेवाला तर्कशास्त्र के क्षेत्र से बाहर जा रहा है। यदि कोई मनुष्य अच्छी सलाह दे, तो "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" कह देने से उस सलाह का मूल्य कम नहीं हो जाता। यदि चित्रकार स्वयं कुरूप है, तो यह आवश्यक नहीं कि उसके चित्र सुन्दर न हों। जब किसी बात का उत्तर न बन पड़ा, तब कहने लग गए कि वाह! और कोई

निरर्थक प्रतिवाद को कहते ह। उत्कर्षसम भी उन्हीं में से है। साधर्म्य वैधर्म्याया प्रत्यवस्थान जाति। केवल साधर्म्य और वैधर्म्य के आधार पर उत्तर देना जाति है।

* यह वितण्डा का एक प्रकार है। 'सप्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा'। इसका व्याख्या करते हुए ऋषि वात्सायन लिखते हैं—"भो तौ समानाधिकरणौ विरुद्धौ धर्मौ पक्षाविरयुक्त तयोरेकतर वैतण्डिको न स्थापयति इति पर पक्ष प्रति सोधेनैव प्रवर्तते। सक्षेप से वैतण्डिक वह है जो अपनी कोई पक्ष न रखकर दूसरे के पक्ष का ही खण्डन करता रहे।

कहे तो कहे, आप भी बोलने लग गए ! सूप बोले तो बोले; चलनी भी बोलने लग गई जिसमें बहत्तर छेद !

समाजोत्तेजन न्याय (Argumentum ad Populum.)

लोग कभी कभी दूसरे की ईर्ष्या द्वेष या जातीय अभिमान का सहारा लेकर अपनी बात पुष्ट करने लगते है।

आप्त वचन न्याय (Argumentum ad vercundiam) कभी कभी एक वाक्य सारी युक्तियों का काम दे जाता है। शास्त्रों का वचन तो जहाँ का तहाँ रहा, खाली नीति के ग्रन्थ का भी श्लोक बडा भारी प्रमाण हो जाता है। हमारे कहने का यह मतलब नही कि आप्त वचनों का आदर न किया जाय, किन्तु युक्ति का उत्तर युक्ति से दिया जाय और शब्द प्रमाण का उत्तर शब्द प्रमाण से दिया जाय। बहुत से स्थानों में केवल नाम पुजने लगता है। जिस प्रकार पुरानी सभ्यतावाले पुराने नामो पर जान देने को तैयार रहते थे, उसी प्रकार आज कल के नये लोग भी नये नये नामों पर ही मुग्ध हो जाते है। चाहे जो बात हो, यदि किसी वैज्ञानिक ने कही है तो ठीक ही है।

युक्ति में दूसरे की राय का आधार न लेना चाहिए।

डण्डे का न्याय (Argumeutum ad baculum) जब किसी प्रकार से बस न चले तो वादी को डण्डे मार कर भगा देना। इसे युक्ति या न्याय का नाम देना ही ठीक नही।

प्रतिवाद विषयक कुतर्कों के सम्बन्ध में न्याय शास्त्र में

बताए हुए तीन या चार निग्रहस्थान हैं * जो इन कुतर्कों से किसी अंश में समानता रखते हैं, वह इस प्रकार है।

प्रकृतादर्थाद प्रति सम्बद्धार्थमर्थान्तरम्।

न्यायसूत्र; ५।२।७.

'अर्थान्तर' उसको कहते हैं जिसमें वास्तविक विषय को छोड़ कर अप्रासंगिक विषय उठा लिया जाय।

युक्ति के ऊपर विचार न करके अनुमान के अंगों की व्याख्या करने लग जाना अथवा प्रमाणों के ऊपर विवाद आरम्भ कर देना आदि इसी के उदाहरण हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि वादी के मुँह से कोई शब्द जैसे अ'प्रभाव' निकल गया; फिर उसी शब्द की व्याख्या करने लग जाना—अप्रभाव तो प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव चार प्रकार का होता है। ये सब बातें अपने पक्ष की कमज़ोरी बताती हैं।

वर्ण क्रम निर्देश वन्निरर्थकम्।

केवल वर्ण ही कहते जाना निरर्थक है, जैसे क ख ग द है; त थ द ध ह है; आदि।

परिषत्प्रतिवादिभ्यां त्रिरभिहितम-
प्यविज्ञातमविज्ञातार्थम्। ५।२।९.

---

* विप्रत्ति पत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्। ठीक न समझना या बिल्कुल न समझना निग्रहस्थान कहलाता है। निग्रहस्थान अर्थात् फटकार खाने के अवसर माने गए हैं।

अविज्ञातार्थ उस युक्ति को कहते है जिसमें किसी-कठिन और कूट शब्द का व्यवहार किया जाय जो तीन बार दोहराए जाने भी पर न वादी को और न श्रोता की समझ में आवे। जो लोग अवच्छेदकावच्छेदकत्व से भरी हुई बडी बड़ी न्याय की फक्किकाएँ सुना कर श्रोताओं पर वृथा रोब जमाना चाहते है, उन लोगों का कृत्य तार्किक दृष्टि से निन्दनीय है।

कार्य्यव्यासंगात् कथा विच्छेदो विक्षेपः।

न्या० सू०. ५।२।२०.

विक्षेप उसे कहते हैं, जहाँ पर कोई दूसरे काम का बहाना करके उठ जाय, तो उसका कार्य्य तर्क की दृष्टि से निंदनीय समझा जाय।

स्वपक्ष दोपाभ्युपगमात् पर पक्षदोप प्रसङ्गोमतानुज्ञा।

अपने में दोष को स्वीकार करते हुए दूसरे में उसी दोष को बतलाना मतानुज्ञा कहलाता है। यदि कोई कहे तुम कि चोर हो, तो उसके उत्तर में कहना कि तुम कौन से साहु हो! तुम भी तो चोरी करते हो। यह मतानुज्ञा का उदाहरण होगा *।

असम्बद्ध (Non sequatur)

जब निगमन पूर्व वाक्यों से निकल सके, तब उस अनुमान को असम्बद्ध कहते है। आज कल इस कुतर्क के ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं कि किसी शब्द का किसी शब्द से संबंध ही नहीं

* जाति और निग्रहस्थानों का पूरा वर्णन अंतिम अध्याय में दिया गया है।

रहता। यह न्याय शास्त्र में वर्णित अपार्थक निग्रह स्थान से बहुत मिलता है*।

आज धूप तेज है।

आगरे से इलाहाबाद तीन सौ मील है।

अतः देश में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना ठीक नहीं।

यह वास्तव में निगमन का विषय नहीं, आगमन का विषय है। इसका विशेष रूप तत्पश्चात् अतः तस्य कार्य्यं (उसके पीछे आता है, इसलिये उसके कारण से) का है। केवल आनुपूर्वी से कार्य्यकारण सम्बन्ध स्थापित कर लेना अकारण को कारण मानना है। रात दिन के पीछे आती है, अतः दिन रात का कारण है। यदि बिल्ली रास्ता काट जाय और उसके पीछे कुछ अनिष्ट हो जाय, तो बिल्ली का रास्ता काट जाना इसका कारण मान लेना इसी प्रकार की भूल करना है। ऐसे उदाहरणों को अन्यथा सिद्ध कहा गया है।

अकारण को कारण मानना
Non causa (Procausa)

कभी कभी एक प्रश्न के अंतर्गत बहुत से प्रश्न आ जाते हैं और लोग धोखे में आकर एक प्रश्न का उत्तर देते हुए

---

* पौर्वापर्य्यायोगाद प्रति सम्बद्धार्थमपार्थकम्। ५—२—१०

जहाँ अनेक पद या वाक्यों का पूर्व, पर क्रम मे अन्वय न होने मे समुदाय प्रथा का हानि हो और असम्बद्धार्थता दिखाई पडे, जैसे "दस दाडिम छयपूये कुण्ड चर्म" यह शब्दो के बने हुए वाक्य का उदाहरण दिया गया है। इस कुमारी का मृग-चर्म शय्या है, उसका पिता नहा सोता है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर दे जाते है। तुम्हारे कहाँ चोट लगी ?

बहु-प्रश्नात्मक प्रश्न

इसमें यह बात मान ही ली गई है कि चोट लगी। पहले यह सवाल करना चाहिए था कि चोट लगी थी या नही। उसके पश्चात् जब यह उत्तर मिलता कि चोट लगी है, तब यह पूछना ठीक था कि चोट कहाँ लगी। ऐसे प्रश्नों का बिना सोचे विचारे जवाब दे देना बड़ी भूल है; इसमें लोग धोखा खा जाते हैं।

एक वकील ने एक लड़के से पूछा—क्या तुमने अपनी माँ को पीटना छोड़ दिया है? यदि लड़का हाँ में उत्तर देता है, तो यह सिद्ध होता है कि पहले पीटता था, अब नहीं पीटता। और यदि कहता है कि नहीं, तो सिद्ध होता है कि अब भी पीटता है।

इसका उत्तर यही होना चाहिए था कि मैं कभी पीटता ही न था।

वह मनुष्य मूर्ख और हत्यारा है या नहीं है? सम्भव है कि वह मूर्ख हो और हत्यारा न हो। इसलिये ऐसी अवस्था में प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व उसका विश्लेषण कर लेना आवश्यक है। लोग कभी कभी ऐसी प्रार्थना करते है कि जिसमें एक के साथ कई और प्रार्थनाएँ भी आ जाती हैं। वृद्धा कुमारी के वर का न्याय प्रख्यात है। उसने विवाह की प्रार्थना न कर यह माँगा था कि मेरे पुत्र काञ्चन की थाली में बहुव्यञ्जन-भोक्ता हों।

यहाँ पर विचार के आकार सम्बन्धी तर्काभास नहीं दिए

गए। उनका वर्णन पूर्व में ही हो चुका है। यहाँ यह बात बता देना आवश्यक है कि आकार की शुद्धता के साथ पूर्व वाक्यों की वास्तविक सत्यता पर ध्यान दे लेना आवश्यक है। मध्य पद की योग्यता पर भी विचार कर लेना चाहिए। इन बातों के लिये स्थिर नियम नहीं दिए जा सकते। हिन्दू तर्क-शास्त्र आकार वाद से सम्बन्ध नहीं रखता; उसके अनुसार हेतु वा मध्यपद के पाँच दोष बतलाये गए हैं * ।

पन्द्रहवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

न्यायों की परीक्षा

नीचे लिखे हुए अनुमानों की परीक्षा कीजिए। यदि वे ठीक हैं तो उनका आकार, प्रकार योगादि बतलाइए। यदि ठीक नहीं तो उनमें की भूलों का कारण बतलाते हुए उन भूलों का तार्किक नाम बतलाइए।

(१) विकासवाद सत्य है, क्योंकि प्रत्येक वैज्ञानिक उसको सत्य मानता है।

(२) बुद्धि और उदारता का योग है; अत. उदार मनुष्य बुद्धिमान होते हैं।

(३) ज्ञान शक्ति देता है। शक्ति वाञ्छनीय है, अत ज्ञान वाञ्छनीय है।

(४) हमारे सब ट्रंक पाँच मन के हैं।
यह हमारा ट्रंक है, अतः यह ५ मन का है।

(५) अँगरेज लोग बुद्धिमान होते हैं।
वह अंगरेज नहीं है, अत वह बुद्धिमान नहीं है।

---

* न्याय शास्त्र के मूल सिद्धान्त बतलाते हुए इनका सविस्तर वर्णन पुस्तक के तृतीय खण्ड में किया जायगा।

(६) संखिया खाने से मृत्यु नहीं हो सकती; क्योंकि डाक्टर ने मुझको बुखार में संखिया का एक योग दिया था।

(७) तुम से हम बहस नहीं कर सकते। शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार कहाँ?

(८) मनुष्य की खोपड़ी पवित्र है, क्योंकि वह भी शङ्ख की भाँति किसी शरीर का अग है। (तत्व चिंतामणि से)

(९) नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य नैषोतर्केणापणीयः। इसलिये तार्किक लोग अनात्मवादी होते हैं।

(१०) अधिक विद्वान प्रायः पागल होते हैं। वह अधिक पढ़ा लिखा नहीं है; अतः उसके पागल होने की शंका नहीं है।

(११) उसका जुर्म साबित है, क्योंकि वह मफरुर (भागा हुआ) है।

(१२) यह काम किसी सिद्धहस्त का है, क्योंकि अनारी आदमी ऐसा कर ही नहीं सकता।

(१३) सब यथार्थ अनुमान तीन पदवाले होते हैं। इस अनुमान की यथार्थता में संदेह करना मूर्खता है, क्योंकि यह भी तो तीन पद का है।

(१४) कोई सत्कर्म निन्दनीय नहीं।
दान सत्कर्म है, अत निन्दनीय नहीं।

(१५) शब्द भौतिक पदार्थ है। तेज शब्द नहीं, अत. यह भौतिक पदार्थ नहीं है।

(१६) केवल अज्ञानी लोग ही विद्या की निन्दा करते हैं। यह अज्ञानी नहीं, क्योंकि विद्या की प्रशसा करता है।

(१७) कोई सत् वस्तु बुद्धि के विरुद्ध नहीं है।
सब असत् पदार्थ क्षणिक हैं।
अतः सब क्षणिक पदार्थ बुद्धि-विरुद्ध हैं।

(१८) <u>देर आयद दुरुस्त आयद</u> (जो काम देर में होता है वह अच्छा

होता है) यह काम जल्द हो गया, अतः इसमें कुछ धोखा है।

(१९) श्रेयासि बहु विघ्नानि। मेरे काम (जो मैंने विदेश जाने का विचार किया है) में भी बहुत विघ्न पड़ रहे हैं, अत उसके श्रेय होने में सन्देह नहीं।

(२०) पढ़े लिखे आदमी हाथ से काम करना पसन्द नहीं करते, इसलिये यदि प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य कर दी गई, तो सब काम बन्द हो जायँगे।

(२१) इस स्टेशन पर केवल डाक गाड़ी ही नहीं ठहरती। चूँकि यह गाड़ी इस स्टेशन पर नहीं ठहरी, इसलिये यह डाक गाड़ी होगी।

(२२) डेकार्ट का उदाहरण सिद्ध करता है कि कुछ दार्शनिक लोग गणितज्ञ होते हैं।

(२३) आजकल के पास होनेवाले एल एल. बी में से कोई ऐसा नहीं है जो बी ए. न हो। स्कूल में पढ़नेवाले लड़के बी. ए. नहीं होते, इसलिये स्कूल में पढ़नेवाले लड़के एल एल बी. नहीं होते।

(२४) मेरे ऊपर राजद्रोह का अभियोग लगाया जाता है। लेकिन मैंने जो व्याख्यान दिया था, उसको कोई आदमी अपने घर में अकेला बैठ कर पढ़ देखे। उसके कारण उसके भाव राज्य के विरुद्ध उत्तेजित न होंगे।

(२५) धीर मनुष्यों पर ही शासन का भार रक्खा जाता है। वह आदमी डिप्टी कलेक्टरी के लिये नहीं चुना गया, इसलिये वह धीर नहीं हो सकता।

(२६) सब काग्रेसवादी स्वदेशी कपड़ा पहनना अच्छा समझते हैं। स्वदेशी कपड़े का अच्छा समझनेवाले देशभक्त हैं, अत सब देशभक्त काग्रेसवादी हैं।

(२७) एक व्यवसाय के आदमियों में विरोध नहीं होना चाहिए, क्योंकि उनका एक ही सम्मिलित ध्येय है।

(२८) सब मनुष्यों के बराबर अधिकार हैं, इसलिये सब की तनखाह बराबर होनी चाहिए।

(२९) सब मनुष्य जानदार है। जानदार शब्द फारसी भाषा का है; अत. मनुष्य फारसी भाषा का शब्द है।

(३०) हर एक आदमी अपना सुख चाहता है, इसलिये सब आदमियों को सब का सुख वाञ्छनीय होना चाहिए।

(३१) जो कुछ मन को उच्च विचारों की ओर ले जाता है, वह श्रेय है। जो कुछ मन को उच्च विचारों की ओर ले जाता है, वह ध्येय है। अत. कुछ ध्येय श्रेय है।

(३२) क्या "लालने बहवो दोषाः" से "ताड़ने बहवो गुणा." निकल सकता है? यदि ताड़ने बहवो गुणा ठीक है, तो यह भी ठीक है कि अमुक बालक कठिन ताड़ना में रहने के कारण बहुत गुणवाला है।

(३३) अँगरेज लोग बुद्धिमान हैं। अँगरेज लोग शराब पीते हैं, अतः शराब पीना बुद्धिमानी है।

(३४) यदि शिक्षा को लोग पसंद करते हैं, तो शिक्षा के विषय में राज्य की ओर से जोर देना वृथा है। और यदि लोग पसन्द नहीं करते, तो राज्य की ओर से जोर देना जुल्म है। अतः शिक्षा के सम्बन्ध में राज्य की ओर से जोर देना उचित नहीं।

(३५) व्यापारिक उद्योग तभी सफल होते हैं जब कि उनका सचालन ऐसे लोगों के हाथ में हो जो स्वय व्यापार करते हों। अतः राज्य की ओर से किए हुए व्यापारिक उद्योग सफल नहीं हो सकते।

(३६) परहित सरिस धरम नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
न्यायाधीश लोग अपराधी को दण्ड देकर पीड़ा देते हैं। इस-लिये उनके बराबर कोई अधम नहीं है।

(३७) अच्छे लेखक के लिये यह आवश्यक है कि वह या तो स्फूर्ति-शाली हो या मेहनती हो। गिबन बड़ा मेहनती था; इसलिये वह स्फूर्तिशाली नहीं था।

(३८) यदि कोई पदार्थ चलता है तो वह या तो अपने स्थान में चलता है या अपने से इतर स्थान में।
वह अपने स्थान में तो चल नहीं सकता, क्योंकि वहाँ स्थित है, और दूसरे स्थान में चल ही कैसे सकता है।

(३९) राजद्रोही का विश्वास नहीं करना चाहिए। देवदत्त सरकारी नौकर होने के कारण राजद्रोही नहीं हो सकता, इसलिये वह विश्वास-योग्य है।

(४०) धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि सब जानवरों की सृष्टि एक साथ हुई; अतः विकासवाद ठीक नहीं हो सकता।

(४१) नीचे दिए श्लोक को तार्किक युक्ति का रूप दे कर बतलाइए कि कवि चातक को किस तर्काभास से बचाना चाहता है। रे रे चातक सावधान मनसा मित्रक्षणं श्रूयता। अम्भोदा बहुवो वसंति गगने सर्वेऽपिनैतादृशाः॥ केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति के-चिद्वृथा। यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो माब्रूहि दीनंवच ॥ (हे मित्र चातक, सावधान मन से क्षण भर सुनो। आकाश में बहुत से बादल रहते हैं। सब एक से नहीं है। कोई वृष्टि से पृथ्वी को तर कर देते हैं और कोई वृथा ही गरजते हैं। जिस किसी को देख कर उसके आगे दीन वचन मत बोलो।)

(४२) जो लोग मेहनत करके अपनी मानसिक उन्नति करना चाहते हैं, उनके लिये विश्वविद्यालय की पदवी शिक्षा प्राप्त करने में

विशेष उत्तेजक नहीं हो सकती; और इसलिये वह अनावश्यक है। जो लोग आलसी हैं और मानासिक उन्नति की परवा नहीं करते, उनके लिये उत्तेजना देना वृथा है। विश्वविद्यालय की पदवी या तो अनावश्यक है या वृथा है।

(४३) इङ्गलिस्तान धन सम्पन्न देश है। इङ्गलिस्तान में स्वर्ण का सिक्का है; अत. स्वर्ण के सिक्केवाले देश धन सम्पन्न होते हैं।

(४४) यह काम अवश्य खराब है, क्योंकि इसके विरुद्ध मेरी आत्मा साक्षी देती है। यदि यह खराब न होता तो मेरी आत्मा इसके विरुद्ध क्यों कहती।

(४५) आग लगानेवाले को दण्ड नहीं देना चाहिए, क्योंकि निस्पृहस्य तृणं जगत्।

(४६) साम्यवाद क्यों चाहते हो ? जब तक मनुष्य सदाचारी न बन जायँ, तब तक साम्यवाद असम्भव है; और जब मनुष्य सदाचारी बन जायँगे, तब इसकी आवश्यकता न रहेगी। इस का किस प्रकार से उत्तर दीजिएगा ?

(४७) यह चूरन दस्तावर है, क्योंकि यह रेचक है।

(४८) यदि कोई गैस गरम की जाती है तो उसका ताप परिमाण बढ़ जाता है। अगर उसका ताप परिमाण बढ़ता है तो उसकी लचक बढ़ती है। और यदि लचक बढ़ती है तो जिस बर्तन में वह रक्खी जाती है, उसकी दीवारों पर अधिक दबाव पड़ता है। इसलिये जब गैस गरम की जाती है, तब उसके धारण करनेवाले बरतन की दीवारों पर अधिक बोझ हो जाता है।

(४९) यदि पुरुषों और स्त्रियों में कोई भेद नहीं, तो स्त्रियों को पुरुषों की भाँति चुनाव में राय देने का अधिकार मिलना चाहिए। और यदि पुरुषों और स्त्रियों में भेद है तो पुरुष स्त्रियों के प्रतिनिधि

किस प्रकार हो सकते हैं। इस अवस्था में स्त्रियों को अपने प्रतिनिधि खुद ही चुनने चाहिएँ। दोनों अवस्थाओं में स्त्रियों को राय देने का अधिकार मिलना चाहिए।

(५०) प्राकृतिक नियम या तो निगमनात्मक तर्क द्वारा निश्चित किए जा सकते हैं या आगमनात्मक तर्क से। चूँकि निगमनात्मक तर्क इस कार्य के लिये अपर्याप्त है, इसलिये यह आगमनात्मक तर्क द्वारा ही हो सकता है।

(५१) यदि यह निरपराध है तो इसको दंड नहीं मिलेगा। इसको दंड नहीं मिला, इससे यह अपराधी नहीं।

(५२) यदि पीड़ा चिरस्थायिनी है तो तीव्र नहीं; और यदि तीव्र नहीं तो चिरस्थायिनी नहीं। इन दोनों वाक्यों का क्या सम्बन्ध है?

(५३) हिंसा में कोई पाप नहीं, क्योंकि "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"

(५४) कोई नियम ऐसा नहीं जिसका प्रतिवाद न हो। क्या इस नियम का प्रतिवाद नहीं?

(५५) इस पर विचार कर अपनी राय प्रकट कीजिए।

मुद्दालेह का वकील—इस दरी के बेचने का कोई लिखा हुआ इकरारनामा है?

मुद्दई—जब आप बाजार पूरी खरीदने जाते हैं, तब उसका तो कोई इकरारनामा नहीं लिखा जाता!

वकील—पूरियाँ कमरे में तो नहीं बिछाई जातीं।

मुद्दई—तो दरी भी कुछ खाई नहीं जाती।

(५६) जो बहुत भूखा होता है वह बहुत खाता है।
थोड़ा खानेवाला बहुत भूखा होता है।
अत: थोड़ा खानेवाला बहुत खाता है।

(५७) देवदत्त मुकदमा जीत गया; इसलिये उसका मामला सच्चा है; क्योंकि 'सत्यमेव विजयते'।

(५८) हमारे घर में सब आदमियों की उमर ६० वर्ष से कम की है। हमारे घर में ४ आदमी हैं; इसलिये हमारे घर के हर एक आदमी की उमर १५ वर्ष से कम है।

(५९) खाना पीना जीवन की आवश्यकताओं में से है। अमुक रईस का धन खाने पीने में उठ गय। अतः उसका धन जीवन की आवश्यकताओं में उठ गया। इसी लिये वह निन्दास्पद नहीं।

(६०) एक मित्र अपने मित्र से—
आज तो एकादशी है। आज तो आप गोश्त नहीं खायेंगे।
दूसरे मित्र—अजी गोश्त भी क्या अन्न है जो नहीं खायेंगे।

(६१) आप बड़े बुद्धिमान हैं। आप की बुद्धिमत्ता में सन्देह नहीं। कोई बुद्धिमान मनुष्य इसके विपरीत न करेगा।

(६२) अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए सब के दाता राम॥

(६३) पठितव्य तदपि मरतव्यं ना पठितव्यं तदपि मरतव्य वृथा दन्त किटा किट किं कर्तव्यं।

(६४) मनुष्य सब जानवरों में श्रेष्ठ है; अतः मनुष्य की प्राण शक्ति सब जानवरों से श्रेष्ठतम है।

(६५) ईसाई धर्म सब से श्रेष्ठ है, क्योंकि ससार में राजनीतिक महत्ता ईसाई जातियों की ही है।

(६६) दूसरे मनुष्य से प्रेम करना परम धर्म है। व्यभिचारिणी दूसरे मनुष्य से प्रेम करता है, अत. वह धर्मात्मा है।

(६७) केवल द्विज लोग ही शिखा रखते हैं। देवदत्त द्विज है, अत वह शिखा सूत्र रखता है।

(६८) गरीब लोग धन्य हैं। यह अमीर है, अतः यह निन्दनीय है।

(६९) पढे लिखे मनुष्य जालसाजी करते हैं। फिर पढ़ाने से क्या लाभ? पढ़ना नहीं तो जालसाजी कहाँ से होगी।

(७०) इस पुस्तक को किसी ने पढ़ा है, क्योंकि इसके पन्ने कटे हुए हैं।

आगमनात्मक तर्क

पहला अध्याय

आगमन अथवा व्याप्तिग्रह के साधन

Induction

यूरोपीय निगमनात्मक अनुमान में व्याप्ति अर्थात् हेतु और साध्य का जो सम्बन्ध होता है, उसको मान लेते हैं, सिद्ध नहीं करते हैं। अरस्तातालीसी अनुमान आकारात्रिक (Formal) है। यद्यपि असत्य पूर्व वाक्यों से भी सत्य निगमन (Conclusion) निकल आने की संभावना है, (उदाहरणतः—मनुष्य लोग चतुष्पद होते है, ऊँट मनुष्य होते हैं; अतः ऊँट चतुष्पद होते हैं) तथापि पूर्व वाक्यों की सत्यता स्थापित किए बिना निगमन की सत्यता का निश्चय नहीं हो सकता। कभी कभी अनुमानों में पूर्व वाक्यों की पुष्टि भी कर दी जाती है। फिर इस पुष्टि की भी पुष्टि की आवश्यकता पड़ जाती है और उपजीवक अनुमानों की शृंखला बँध जाती है। अन्त में हम को किसी न किसी सिद्धान्तसूचक वाक्य में आश्रय लेना पड़ता है। ऐसे सिद्धान्तों की प्राप्ति या आगमन करने को ही आगमन कहते है। न्यायशास्त्र के पंचावयवी अनुमाम में निगमन और आग-

आगमन की आवश्यकता

इन दोनों ही का योग किया गया है। नैयायिकों का अनुमान इतना आकार मात्रिक नहीं है जितना कि प्राचीन और मध्य कालीन युरोप का तर्क था। पंचावयवी अनुमान में जो आगमन है, वह अङ्गुलिनिर्देश मात्र है। उदाहरणों से नियम को प्राप्त करना ही आगमन का मुख्य उद्देश्य है। पंचावयवी अनुमान में जो दृष्टान्त दिया जाता है, उससे दो अभिप्राय हैं। एक तो यह कि ऐसे उदाहरणों के भूयोदर्शन से यह नियम प्राप्त हुआ है, और यह उदाहरण इस बात का भी प्रमाण है कि नियम मनगढ़न्त नहीं हैं वरन् अनुभव-सिद्ध हैं। उदाहरण ऐसे ही लिए जाते हैं जो अनुभव के प्रतिकूल न हों। इसी लिये बहुत से आचार्यों ने हेत्वाभासों के साथ दृष्टान्ताभास भी माने हैं। भारतीय तर्क-शास्त्र में वस्तु की ओर पूरा पूरा ध्यान दिया गया है। जो कुछ हो, यह बात अवश्य मानना पड़ेगी कि निगमन की पूरी पुष्टि बिना आगमन का आश्रय लिए नहीं हो सकती।

निगमन और आगमन का भेद और संबंध

निगमनात्मक अनुमान में हम सिद्धान्तों अर्थात् नियमों से चलते हैं; और उनके अन्तर्गत जो विशेष घटनाएँ या उदाहरण आते हैं, उनको स्पष्ट करके बतलाते हैं। इसके विपरीत आगमनात्मक अनुमान में विशेष घटनाओं या उदाहरणों से चलते हैं और किसी व्यापक नियम को उनसे प्राप्त वा सिद्ध करते हैं। निगमन में बड़ी व्याप्तिवाले नियम से छोटी व्याप्तिवाले नियम पर जाते हैं और आगमन में छोटी व्याप्ति

से बड़ी व्याप्ति पर जाते हैं। निगमन में नीचे जाना होता है, आगमन में ऊपर चढ़ना पड़ता है। इन बातों से यह न समझ लिया जाय कि ये दो प्रतिकूल क्रियाएँ हैं। विचार की क्रिया तो एक ही है, निगमन और आगमन ये उसके दो अंग हैं। दोनों ही में विचार नवीन बात की ओर जाता है। भेद केवल इतना ही है कि निगमन में व्यापक नियम से चलना पड़ता है और आगमन में उदाहरणों से। दोनों ही तरह के अनुमान एक दूसरे के सहायक हैं। विना आगमन के निगमन की पुष्टि नहीं होती। व्याप्तिसूचक वाक्य की, जिसे सत्य मानकर हम चलते हैं, अन्तिम सिद्धि आगमन से होती है। कवि लोग मनुष्य होने के कारण नाशवान हैं, यह अनुमान "मनुष्य नाशवान है" इसी सिद्धान्त पर निर्भर है। किन्तु इस सिद्धान्त की सत्यता अनेकानेक मनुष्यों के उदाहरण लेकर आगमन द्वारा ही सिद्ध हुई है। आगमनात्मक अनुमान की भी पुष्टि विना निगमन के नहीं होती। जैसा कि आगे चल कर वतलाया जायगा, कल्पना (Hypothesis) की पुष्टि के लिये हम को उस से निगमनात्मक अनुमान निकालने पड़ते हैं; और जब तक वह निगमन अनुभव-सिद्ध न हो जाय, तब तक कल्पना की पुष्टि नहीं होती। वास्तव में दोनों प्रकार के अनुमान प्रकृति में नियमों की व्यापकता का प्रमाण देते रहते हैं। निगमनात्मक अनुमान यह वतलाता है कि किसी व्यापक नियम के अन्तर्गत कौन कौन से विशेष उदाहरण आ जाते हैं; और आगमनात्मक तर्क से यह

बतलाया जाता है कि विशेष उदाहरण जो वाह्य दृष्टि से भिन्न भिन्न दिखाई पड़ते हैं, अभेद रूप से एक ही नियम का पालन कर रहे हैं। निगमन में नियम को लेकर उसका पूर्ण विस्तार बतलाया जाता है और आगमनात्मक तर्क द्वारा नियम के विस्तार अर्थात् नियम के पालन करनेवाले उदाहरणों में जो नियम व्याप्त है, उसे बतलाते हैं। दोनों संसार और विचार को नियम-बद्ध और ज्ञानमय सिद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार से आगमन ज्ञान का एक मुख्य साधन है। इसका उद्देश्य व्यापक नियम वा सिद्धान्तों को स्थापित करना है।

यह नियम संसार के पदार्थ या क्रियाओं के धर्म बतलाते हैं और पुष्ट हो जाने पर सिद्धान्त की कोटि में आ जाते है।

साधारण नियम और विशेष घटनाएँ

प्रत्येक विज्ञान में, चाहे वह दृश्य पदार्थों से सम्बन्ध रखता हो और चाहे अदृश्य से, कुछ न कुछ सिद्धान्त निरूपित किए जाते हैं। अर्थ शास्त्र का एक नियम है कि जब किसी वस्तु की माँग बढ़ती है और उस की आमदनी कम होती है, तब उस का मूल्य बढ़ जाता है। भौतिक विज्ञान में नियम है कि किसी तेजवान पदार्थ को जसे जैसे निकट लाते जायँ, वैसे वैसे दूरी की निष्क्रमण उपपत्ति (Inverse ratis) के अनुसार तेज दूरी के वेग क्रम से बढ़ता है। जैसे यदि कोई आलोकवान् पदार्थ दो फुट की दूरी पर रक्खा हो और वह एक फुट की दूरी पर कर रख दिया जाय, तो दूरी आधी रह गई, किन्तु रोशनी चौगुनी हो जायगी।

इसी प्रकार हर एक शास्त्र और विज्ञान के नियम हैं। ये नियम पदार्थों के साथ लगे हुए है। ये नियम उन परिस्थितियों को जिन में कि पदार्थों में परिवर्तन होता है और वह क्रम और रूप जिससे ये परिवर्तन होते हैं, बतलाते हैं। प्रत्येक वस्तु संसार की अन्य वस्तुओं से सम्बन्ध रखती है और नाना रूप और क्रम से व्यवहार का विषय बनती है। हर एक विज्ञान वस्तु को अपनी दृष्टि के अनुसार संसार के तारतम्य में स्थान देता है और उस के व्यवहार का नियम और क्रम निश्चित करता है। यह साधारण ज्ञान चाहे जाति मात्र को बतलावे (जैसे मनुष्य) चाहे जाति के किसी व्यापक गुण को बतलावे, (जैसे मनुष्य नाशवान है,) चाहे पदार्थों की क्रिया का क्रम बतलावे (जैसे ग्रह दीर्घ वृत्त (Ellipse) में चलते हैं.) चाहे व्यापक सम्बन्ध बतलावे (जैसे निरुद्योगीपन और निर्धनता का,) हम को विशेष से ऊपर ले जाते हैं। यद्यपि इन का आधार विशेष में है किन्तु यह विशेष से बाहर जाते हैं और तभी देश काल से बाहर की बात कह सकते है। विशेष देश काल से संकुलित है, किन्तु उस में जो व्यापक नियम वा सिद्धान्त हैं, वे देश काल से बाहर हैं। विज्ञान घटनाओं और विशेषों को तुलना करके इस साधारण को एक प्रकार से बाहर निकाल लेता है और इन के सहारे भविष्य में प्रवेश करने लगता है। मनुष्य ने इसी साधारण को पृथक् करने की शक्ति से अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। किन्तु यह शक्ति घर में बैठकर नहीं आस

होती। यह शक्ति विशेषों के निरीक्षण द्वारा ही प्राप्त होती है। प्रकृति की सेवा करने पर ही प्रकृति पर आधिपत्य मिलता है। मनुष्य जाति ने जो रेल और स्टीम एँजिनों, तार और टेलीफ़ोन द्वारा दूरी के प्रश्न को हल किया है, वह प्रकृति के सावधानी के साथ निरीक्षण द्वारा ही किया है। इन सिद्धान्तों द्वारा केवल क्रिया कौशल ही नहीं प्राप्त होता, वरन् हमारे ज्ञान में व्यवस्था उत्पन्न होती है और नानात्व में एकत्व और विभक्त में अविभक्त का आदर्श चरितार्थ होने लगता है।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि आगमनात्मक तर्क हमको साधारण नियमों के प्राप्त करने में सहायता देता है।

साधारण नियम का वास्तविक स्वरूप और आगमनात्मक तर्क का विकास

अब प्रश्न यह है कि वे साधारण नियम किस प्रकार के हैं अर्थात् उन का वास्तविक स्वरूप क्या हैं। साधारण दृष्टि से हम किसी जाति के लिये भी कोई व्यापक नियम बना सकते हैं जब कि उस जाति के सब व्यक्तियों को देख लें। उदाहरणों या विशेषों की गणना कर उन में पाए जानेवाले किसी गुण को उस जाति का गुण बतला देने को ही बहुत से लोगों ने आगमन का मुख्य लक्ष्य माना है। अरस्तू ने भी प्रायः गणना के ही सिद्धान्त पर ऐसे व्यापक नियमों का आगमन दिखलाया है। एक उदाहरण लीजिए।

आदमी, घोड़े, खच्चर आदि जानवर चिरजीवी होते है।

आदमी, घोड़े, खच्चर, आदि जानवर पित्त (Bile) शून्य

हैं, अतः पित्त-शून्य जानवर चिरजीवी होते हैं। इस अनुमान का आकार ठीक नहीं है। जब तक कि यह सिद्ध न हो जाय कि मनुष्य, घोड़े, खच्चर ये सब पित्त-शून्य जीवों की संख्या पूरी कर देते है अर्थात् जब तक कि हेतु और पक्ष की व्यापकता बराबर हो न जाय, तब तक यह अनुमान दूषित रहेगा। अरस्तातालीस के लिये पूरी गणना असम्भव न थी, क्योंकि उसने जातियों की गणना की थी, व्यक्तियों की नहीं। जहाँ पर व्यक्तियों की गणना की जाती है, वहाँ पर यदि व्यक्ति थोड़े नहीं हैं, तो गणना के आधार पर सिद्धान्तों का स्थापित करना असंभव हो जाता है। बहुत से स्थान ऐसे होते हैं जहाँ गणना करना सहज है। उदाहरणार्थ, किसी अलमारी की पुस्तकों को देख कर यह कह देना कि ये सब पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में लिखी हुई हैं, असम्भव नहीं हैं। बहुत से तार्किकों ने ऐसे ही गणनाजन्य अनुमान को पूर्ण आगमन (Perfect Induction) बतलाया है। यह उनकी सर्वथा भूल है। केवल गणना से नियम स्थापित नहीं हो सकते। यूरोपीय आगमन शास्त्र के आदि कर्त्ता बेकन (Bacon) ने ऐसे गणनात्मक आगमन को बच्चों का खेल बतलाया है। इसमें सब उदाहरणों की गणना के असम्भावना-जन्य दोष के अतिरिक्त कई और भी दोष हैं। आगमन का अर्थ सूची बनाना नहीं है। आगमन में नई वस्तु का आविष्कार करना होता है—दृश्य से अदृश्य पर आना पड़ता है। रजिस्टर बनाना अनुमान का काम नहीं, वरन्

विश्लेषण (Analysis) द्वारा अटल सम्बन्धों को दिखलाना ही आगमन का मुख्य लक्ष्य है। गणनात्मक अनुमान में कोई सम्बन्ध निश्चित न होने के कारण सदा यह भय लगा रहता है कि कोई ऐसे नए उदाहरण निकल आवें जो नियम का विरोध करें। जब हम को अपने अनुमान में सम्बन्धों को इससे पूर्वार्जित ज्ञान से सगति मिल जाती है, तब यह भय नही रहता कि कोई भावी घटना या उदाहरण हमारे निर्धारित सम्बन्ध का प्रतिवाद कर सकेगी। जैसे जैसे हमारा ज्ञान बढ़ता जायगा और उसके अंगों की संगति होती जायगी, वैसे वैसे यह विचार दृढ़तर होता जायगा।

संक्षेप से निगमनात्मक तर्क का विचार इस प्रकार विकास को प्राप्त हुआ है।

यूरोपीय दर्शन में सब से पहले सुकरात ने आगमनात्मक पद्धति का व्यवहार किया है। वह अपने प्रश्नों द्वारा लोगों को विशेष से साधारण पर ले जाता था। उपनिषदों में भी इसी प्रकार की युक्तियाँ आती हैं। न्याय, धीरता, वीरता आदि के विशेष उदाहरणों से उसने उनका सामान्य बोध स्थिर करना चाहा था। यद्यपि यह पूर्ण आगमन नही है, तथापि इसको हम आगमन का पूर्व रूप कह सकते है।

सुकरात

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, अरस्तू के मत से आगमन भागों से पूर्ण पर अथवा छोटे वर्गों से बड़े वर्गों पर

जाता है। इसमें भी एक प्रकार से गणनात्मक आगमन होता है।

इन लोगों के विचार में गणना का विचार प्रधान था। जिस बात के बहुत से उदाहरण देखे गए, उसी के आधार पर सामान्य विचार बना लिया जाता था।

मध्य-कालीन तार्किक

यह विचार वास्तव में सामान्य बोध नहीं कहा जा सकता, वरन् विशेष घटनाओं या स्थितियों का मानसिक योग है। यदि किसी सभा के सब आदमियों को काला कपड़ा पहिने देखा, तो कह दिया कि इस सभा के सब मनुष्य काले कपड़े पहने हैं। उन लोगों के मत के उदाहरणों की संख्या ही आगमन का मुख्य अंग है। यदि संख्या पूर्ण हो गई तो आगमन पूर्ण है, और नहीं तो आगमन अपूर्ण है। वे लोग विश्लेषण कर कार्य्य कारण सम्बन्ध नहीं स्थापित करते थे, इसलिये उनको सदा यह भय रहता था कि भावी अनुभव हमारे सामान्यीकरण को झूठा न कर दें। गणना के आधार पर जो सामान्यीकरण होता है, उसमें ऐसा भय लगा रहना ठीक ही है।

बेकन ने आगमन में पहली बार भावात्मक और अभावात्मक उदाहरणों की तुलना का विचार प्रकट किया। इस

बेकन

तुलना द्वारा सामान्य गुणों का एकत्र करना और उनका आधार ढूँढ़ना बेकन साहब ने बतलाया। यह खोज-अकारणों के बहिष्करण (Exclusion) द्वारा हो सकती

है। बहिष्करण का विचार आजकल के विचार में भी सम्मिलित हो गया है।

मिल साहब के आगमन सम्बन्धी विचार चार श्रेणियों में

मिल लिखे जा सकते हैं।

(1) It is drawing inferences from known cases to unknown cases. अर्थात् ज्ञात से अज्ञात का अनुमान करना। (2) Affirming of a class a predicate which has been found true of some cases belonging to the class किसी जाति के विषय में ऐसा विधेय स्थापित करना जो उसके कुछ व्यक्तियों में देखे गए हों। (3) Concluding because some things have a certain property that other things which resemble them have the same property. चूँकि पदार्थों में कोई गुण पाया जाता है, इसलिये उनसे सादृश्य रखनेवाले पदार्थों में भी वही गुण पाया जायगा। (4) Concluding because a thing has manifested a property at a certain time, that it has and will have a property at other time. चूँकि एक पदार्थ ने एक काल में कुछ गुण प्रकट किए हैं, इसलिये और समय में भी उसके वह गुण रहे हैं और रहेंगे। मिल साहब का मुख्य आधार सादृश्य में है—"Induction is that operation of the mind by which we infer that what we know to be true in a particular

case or cases will be true in all cases which resemble the former in certain assignable respects." अर्थात् आगमन मन की वह क्रिया है जिसके द्वारा हम यह अनुमान करते हैं कि जो बात हमने एक वा अधिक विशेष घटना वा घटनाओं के विषय में सत्य पाई है, वह उन सब घटनाओं के विषय में सत्य पाई जायगी जो कि उस वा उन घटनाओं से कुछ निर्दिष्ट बातों में सादृश्य रखती हों।

वर्तमान काल के विचार से आगमन का लक्ष्य इस प्रकार है कि हम विश्लेषण द्वारा आवश्यक और अनावश्यक परिस्थितियों को अलग कर आवश्यक सम्बन्धों से उन साधारण नियमों को स्थापित करते हैं जो उन आवश्यक परिस्थितियों में सदा प्रयुक्त होते हैं। आजकल के आगमन का मूल सूत्र है—विश्लेषण द्वारा अनावश्यक का वहिष्करण (Exclusion) और आवश्यक सम्बन्धों का संयोजन (Synthesis)। यह आवश्यक सम्बन्ध समान परिस्थितियों में हमेशा सत्य पाए जाते हैं। इनकी सत्यता उदाहरणों की संख्या पर निर्भर नहीं ह, वरन् इस बात पर निर्भर है कि यह हमारे ज्ञान की व्यवस्था से साम्य रखते हैं; और यह तभी असत्य हो सकते हैं जब प्रकृति अपना क्रम बदल दे और हमारा सारा ज्ञान उलट पुलट हो जाय। उदाहरणों की संख्या केवल इसी लिये आवश्यक होती है कि भिन्न भिन्न

उदाहरणों के निरीक्षण से यह बात जान लें कि क्या बात आवश्यक है और क्या अनावश्यक। मिल साहब की पद्धतियाँ इस बात की जाँच में बड़ी सहायक हैं। साधारण नियम एक उदाहरण से भी निकल सकता है; और जहाँ पर सम्बन्धों का तारतम्य ठीक मिल जाता है और हमको यह विश्वास होता है कि हमारा विश्लेषण ठीक हो गया है, वहाँ हम को अन्य उदाहरणों की आवश्यकता नहीं रहती। यह साधारण नियम विशेष घटनाओं की गणना का योग नहीं है, वरन् प्रकृति की एकाकारता (जिसका वर्णन आगे किया जायगा) के प्रकार हैं। हमारे ज्ञान का साम्य सत्य की कसौटी है और यही इन नियमों की सत्यता का प्रमाण है।

आगमन के सम्बन्ध में तुलनात्मक विचार

आजकल के तर्क ने ये साधारण नियम प्रायः कार्य्य कारण सम्बन्ध के रूप में ही माने हैं। बौद्धों ने दो सम्बन्ध माने हैं—एक तदुत्पत्ति अर्थात् कारण सम्बन्ध और एक तादात्म्य (जैसे, शिंशपा वृक्ष है)। बौद्धों का कहना है कि व्याप्ति अन्वय व्यतिरेक से जानी ही जाती है किन्तु उसके निश्चय का आधार तादात्म्य और तदुत्पत्ति में ही है। चूँकि कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है, इसलिये कारण से कार्य्य का अनुमान कर लिया जाता है। तादात्म्य में जो एकता है, उसी एकता के आधार पर अनुमान हो जाता है। न्याय ने इस विषय में कई आपत्तियाँ उठाई हैं जिनका उल्लेख तृतीय खण्ड में किया

जायगा। किन्तु इतना कह देना आवश्यक है कि तदुत्पत्ति और तादात्म्य में हेतु के साध्य के साथ जितने सम्बन्ध हो सकते हैं, वे सब निशेष नहीं हो जाते। यह बात जैन तर्क के देखने से स्पष्ट हो जायगी। व्याप्य, कार्य्य, कारण, पूर्व, उत्तर, सहचार इतने प्रकार के हेतु और साध्य के सम्बन्ध माने हैं। इनमें से व्याप्य और तादात्म्य एक ही है। कार्य्य और कारण तदुत्पत्ति में आ जायँगे। पूर्व, उत्तर और सहचार के लिये बौद्ध न्याय में कोई स्थान नहीं रहता। इसी लिये न्याय में अविनाभाव के व्यापक सम्बन्ध को माना है। उसमें सब सम्बन्ध आ जाते हैं। यदि पूछा जाय कि इस सम्बन्ध के अटूट और निश्चयात्मक होने का क्या प्रमाण है, तो यही उत्तर मिलता है कि व्यभिचार रहित भूयोदर्शन ही हमको निश्चय दिलाता है। यदि उसमें शंका हो तो तर्क द्वारा निवृत्त कर ली जाती है। शंका करने से हमको व्याघात में पड़ना पड़ता है। शंका की अवधि व्याघात तक ही है। "व्याघाताधिराशंका"। वास्तव में देखा जाय तो बौद्ध और न्याय मत में थोड़ा ही अन्तर रह जाता है; क्योंकि अन्त में जब हम तर्क द्वारा व्याघात पर पहुँचते है, तब उस व्याघात में यही पाया जाता है कि स्थापित की हुई व्याप्ति के प्रतिकूल मानने से कार्य कारण सम्बन्ध या तादात्म्य सम्बन्ध वा किसी निश्चित अनुभव के विरोध में पड़ना होता है; इसलिये हमारी शंका ठीक न थी।

इन साधारण नियमों के स्थापित करने में हमको सब से

पहले निरीक्षण से काम पड़ता है। किन्तु यह निरीक्षण बिना साधारण नियमों के कुछ अर्थ नहीं रखता।

आगमन पद्धति

यह साधारण नियम पहले अटकल से सोचे जाते हैं। उस अवस्था में ये कल्पना के नाम से पुकारे जाते हैं। ये कल्पनाएँ निरीक्षण में सहायता देती हैं और निरीक्षण हम को कल्पनाएँ बनाने में सहायता देता है। फिर इन कल्पनाओं की परीक्षा की जाती है। यह परीक्षा दो रीतियों से होती है। एक सीधी रीति है और दूसरी फेर की रीति है। जहाँ पर कार्यकारण सम्बन्ध हमारे निरीक्षण का विषय बन सकता है, वहाँ पर सीधी रीति से काम लिया जाता है; और जहाँ पर कार्य कारण सम्बन्ध निरीक्षण का विषय नहीं बन सकता, वहाँ पर फेर की रीति से काम लिया जाता है। ऐसी अवस्था में कल्पना से काम लिया जाता है। पीछे से इस कल्पना से निगमन निकाले जाते हैं और देखा जाता है कि ये निगमन अनुभवसिद्ध होते हैं या नहीं। यदि वे अनुभवसिद्ध होते हैं तो मूल कल्पना भी सिद्ध हो जाती है। कभी कभी सीधी रीति से सिद्ध की हुई कल्पना की भी पुष्टि फेर की रीति से कर ली जाती है। संक्षेप से निगमन पद्धति में कल्पना का उदय और पुष्टि के ही साधन बतलाए जाते हैं। यही कल्पनाएँ सिद्ध होकर नियम या सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती हैं। इन्हीं सिद्धान्तों का स्थापित करना आगमन का मुख्य लक्ष्य है।

पहले अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) साधारण निगमनात्म तर्क की न्यूनता बतलाते हुए आगमनात्मक तर्क की आवश्यकता बतलाइए और यह भी बतलाइए कि उस न्यूनता को भारतीय पचावयवी न्याय किस प्रकार पूर्ण करता है।

(२) निगमन और आगमन का भेद और सम्बन्ध बतलाइए।

(३) अरस्तू से लेकर वर्तमान काल तक आगमनात्मक तर्क के विचार में जो विकास हुआ है, उसको श्रेणीबद्ध रूप में दिखलाइए।

(४) पूर्ण और अपूर्ण आगमन में भेद बतलाइए, इस सम्बन्ध में यह भी बतलाइए कि साधारण नियम का जो निगमनात्मक अनुमान में बृहद्-नुमापक वाक्य बनता है, उसका वास्तविक रूप क्या है।

(५) "प्रकृति की सेवा द्वारा ही हम उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।" इसकी व्याख्या कीजिए।

(६) बेकन ने पूर्ण आगमन को बच्चों का खेल क्यों बतलाया है?

(७) भारतीय तार्किकों का आगमन के सम्बन्ध में क्या मत है? इस सम्बन्ध बौद्ध और न्याय मत की किस प्रकार एकवाक्यता हो सकती है?

दूसरा अध्याय

आगमन पद्धति

निरीक्षण और प्रयोग

कल्पनाओं का उदय और उन की पुष्टि

यह तो ऊपर बतलाया ही जा चुका है कि अनुभव का विषय विशेष उदाहरण है न कि सिद्धान्त, किसी सिद्धान्त के प्राप्त करने के लिये हमें घटनाओं और उदाहरणों को सावधानता से देखना पड़ेगा। इस को हम वैज्ञानिक भाषा में निरीक्षण (Observation) कहते है। विशेप उदाहरणों के देखने से विचारवान् मनुष्य का हृदय सन्तुष्ट नही होता। घटनाओं की व्याख्या करके उन को किसी नियम के भीतर लाना पड़ता है। साधारण और वैज्ञानिक पुरुष में इतना ही अन्तर है कि साधारण पुरुष स्फुट बातों के ज्ञान से सन्तुष्ट हो जाता है और वैज्ञानिक उन फुटकर बातों को किसी व्यापक नियम के अन्तर्गत कर के उनको अपने ज्ञान के तारतम्य में स्थान देता है। निरीक्षित घटनाओं की व्याख्या कल्पनाओं (Hypothesis) द्वारा की जाती है। इन कल्पनाओं में से कुछ ठीक मान ली जाती हैं, और कुछ नही मानी जाती हैं। जो कल्पनाएँ विचार के नियमों के अनुकूल पड़ने के कारण मान ली जाती है, वे नियम वा सिद्धान्त (Law) की कोटि में आ जाती हैं। कल्पनाओं के

उदय और पुष्टि के लिये कई प्रयोगात्मक रीतियों को काम में लाना पड़ता है। कभी कभी निरीक्षण तथा प्रयोग (Experiment) दोनों ही संभव होते है और कभी केवल निरीक्षण। जहाँ पर कि सामग्री ऐसी होती है कि जिस पर हमारा थोडा बहुत ऐसा अधिकार हो और जिस के द्वारा हम घटनाओं में अपने आवश्यकतानुसार थोड़ा बहुत रद बदल कर सके, वहाँ हम प्रयोगात्मक रीतियों से लाभ उठा सकते हैं। नहीं तो हम को केवल निरीक्षण से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है। कल्पनाओ की पुष्टि की एक यह भी रीति है कि हम अपनी कल्पना से निगमनात्मक अनुमान करे और फिर देखें कि हमारे निगमनात्मक अनुमान अनुभवसिद्ध होते हैं या नहीं। यदि वे अनुभवसिद्ध हो जायँ तो ठीक है, अन्यथा नहीं। यह रीति प्रायः सभी अवस्थाओं में काम में लाई जाती है। किन्तु ऐसी अवस्था में जहाँ पर कि सामग्री हमारे अधिकार से बाहर होती है, इस रीति का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। इतना अवश्य ध्यान रहे कि कल्पना का उदय बिल्कुल निरीक्षण के बाद नही होता। निरीक्षण के पूर्व भी कुछ न कुछ कल्पना वैज्ञानिक के मन में रहती है जिस के सहारे वह अपने निरीक्षण का क्रम निश्चित करता है। बिना ऐसी कल्पना के वैज्ञानिकों का निरीक्षण उन्मत्तों का साअकाण्ड ताण्डव ही बन जायगा। निरीक्षित पदार्थों में कार्य्य कारण सम्बन्ध निश्चित करके उनको सिद्धान्त के भीतर लाना आगमन पद्धति का मुख्य लक्ष्य है।

आगमनात्मक अनुमान का काम निरीक्षण से व्याख्या पर ले जाना है। निरीक्षित पदार्थों का वर्णन कर देने मात्र से विज्ञान कृत कार्य्य नहीं हो जाता। कई बार के निरीक्षण से हम यह कह दें कि बारूद में आग लगाने से शब्द होता है अथवा बरसात के दिनों में घड़ों का पानी ठंढा नहीं होता। यह वर्णन मात्र है। जब तक इन बातों की पूरी पूरी व्याख्या न कर दी जाय अर्थात् इन बातों का सम्बन्ध और सब नियमों से बतला कर ज्ञान के तारतम्य में इनको स्थान न दे दिया जाय तब तक यह ज्ञान विज्ञान की पदवी नहीं प्राप्त कर सकता। इसको केवल मानसिक नोट बुक का एक नोट कहेंगे। यद्यपि बहुत से विज्ञान केवल वर्णन की अवस्था से ऊँचे नहीं, किन्तु वर्णन विज्ञान का उद्देश्य नहीं है। केवल निरीक्षण द्वारा बतलाया जाता था कि ग्रह दीर्घ वृत्त (Ellipse) में चलते हैं। न्यूटन ने इसकी व्याख्या की थी और बतलाया था कि उनकी क्यों ऐसी चाल है। न्यूटन ने केप्लर प्रतिपादित नियमों को गुरुत्वाकर्षण के नियम से सम्बद्ध कर उनको वर्णन की कोटि से व्याख्या की कोटि में पहुँचा दिया। अब निरीक्षण और प्रयोग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है।

निरीक्षण और व्याख्या

निरीक्षण

न्यायशास्त्र में सब अनुमान को प्रत्यक्षपूर्वक कहा है।

(तत्पूर्वकं त्रिविधिमनुमानम्*)। प्रत्यक्ष ही अनुमान की आधार शिला है। हम सिद्धान्तों से अनुमान करते है, किन्तु सिद्धान्त ही कहाँ से आते हैं? उदाहरणों को निरीक्षण से ही लिङ्ग और लिङ्गी का संबध प्राप्त होता है। निरीक्षण अनुमान और विशेष का आगमनात्मक अनुमान का मुख्य अंग है। यह अनुमान की पहली श्रेणी है। यदि इसमें भूल हुई तो अंत तक भूल ही होती चली जायगी। निरीक्षण सक्रिय और निष्क्रिय दोनों प्रकार का माना गया है। जहाँ केवल निरीक्षण ही निरीक्षण करना होता है, उसको निरीक्षण अथवा निष्क्रिय निरीक्षण कहते है। उसमें रद्द बदल करने की कोई आवश्यकता वा अवसर नहीं होता। निष्क्रिय निरीक्षण अच्छा शब्द नही है। निरीक्षण में ध्यान की सक्रियता तो अवश्य लगी ही रहती है। हमारे सारे निरीक्षणों में चुनाव रहता है; नही तो निरीक्षण असम्भव हो जाय। मालूम नहीं एक समय में कितनी घटनाएँ होती रहती हैं, उन सब घटनाओं का ध्यान में समावेश करना असम्भव है। जो घटनाएँ किसी विशेष लक्ष्य से संगति रखती है, वही निरी-

निष्क्रिय और सक्रिय निरीक्षण

---

* तत्पूर्वक मित्यनेन लिङ्ग लिङ्गिनो सम्बन्धदर्शन लिङ्ग दर्शन चाभिसम्बध्यते। लिङ्ग लिङ्गिनो सवद्धयोर्दशनेन लिङ्ग स्मृतिरभिमवध्यते। स्मृत्या लिङ्ग दर्शनेन चाप्रत्यक्षो ऽर्थोऽनुमीयते। वात्स्याययन भाष्य। लिङ्ग लिङ्गिनो सम्बन्ध दर्शन, और लिङ्ग दर्शन से। दर्शन वा निरीक्षण प्रत्यक्ष का ही विषय है। इस सूत्र से स्पष्ट है कि अनुमान से पूर्व आगमन सम्बन्धी निरीक्षण आवश्यक है।

क्षण का विषय बनती है; और सब का तिरस्कार कर दिया जाता है। उदाहरण लीजिए। जिस समय ज्योतिषी आकाश में दूरवीक्षण यंत्र द्वारा तारागणों की स्थिति देखता है, उस समय बहुत सी घटनाएँ होती रहती हैं। कहीं से तो घड़ी की टिक-टिक का शब्द सुनाई पड़ता है; कहीं पर कुत्ता अपना कर्कश शब्द करता है, कहीं मयूर ध्वनि होती है। मनुष्य भी खड़े होते हैं। उस समय यह घटनाएँ हमारी इन्द्रियों के सम्बन्ध में आने पर भी हमारे निरीक्षण का विषय नहीं बनती। घड़ीसाज के लिये घड़ी की टिक ही निरीक्षण का विषय है; लेकिन और लोगों के लिये वह गौण है। समाज शास्त्री के लिये एक भूखा कमज़ोर असहाय मनुष्य निरीक्षण का विषय हो जाता है। वन-स्पति शास्त्रवेत्ता के लिये एक फूल की मनुष्य से ज्यादा क़दर होती है। यह सब बातें बतलाती हैं कि निरीक्षण बिल्कुल निष्क्रिय नहीं होता। इसलिये उसको खाली निरीक्षण कहेंगे। और जिसे निरीक्षण में कुछ घटा बढ़ी करनी पड़ती है, अर्थात् अपने अनुमान के लिये घटना में कुछ रद्द बदल करना पड़ता है, ऐसे सक्रिय निरीक्षण को हम प्रयोग कहेंगे। आगे चल कर दोनों का अलग अलग विवरण दिया जायगा।

निरीक्षण

लोग कहेंगे कि प्रत्यक्ष वा निरीक्षण के लिये विवेचना की क्या जरूरत है? प्रत्यक्ष में भी क्या कोई भूल करता है? प्रत्यक्षे किं प्रमाणं! पर यह बात सर्वथा ठीक नहीं है। बहुत बार भ्रम हो जाता है। स्थाणु का मनुष्य दिखाई

पड़ने लगता है। प्रत्यक्ष में भी भ्रम के लिये स्थान रहता है। भ्रम में इन्द्रियों का अर्थ सन्निकर्ष होता है; किन्तु वह मानसिक क्रिया के दोष से ही, जिसका वर्णन हम पूर्व में कर आए हैं, होता है। यदि उस मानसिक क्रिया का अभाव हो तब तो ज्ञान की उपलब्धि ही नहीं होती; और यदि यह क्रियाओं की तीव्रता के कारण अधिक प्रबलता से चल रही हो तो भूल हो जाती है। ऐसी अवस्था में जो कुछ हम को इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्राप्त होता है, उसका ज्ञान ठीक नहीं होता। किसी विशेष भाव की प्रबलता के कारण सब बातें उसी आलोक में दिखाई पड़ने लगती हैं। जो मनुष्य अपने किसी मित्र की प्रतीक्षा कर रहा हो, सम्भव है कि उसको लालटेन का खम्भा मनुष्य प्रतीत होने लगे। लालटेन के खम्भे के साथ जो इन्द्रिय का संयोग हुआ, वह तो ठीक हुआ; किन्तु मन में मित्र मिलन सम्बन्धिनी अभिलाषा के प्राबल्य वश उससे वैसा ही अनुमान होने लगा। हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रिय सन्निकर्ष के अतिरिक्त बहुधा मानसिक क्रिया का भी अभाव रहता है। न्याय शास्त्र में जो प्रत्यक्ष की परिभाषा दी है, उसमें इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञान ही दिया है। किन्तु प्रत्यक्ष एक प्रकार का ज्ञान है। ज्ञान होने के कारण उसमें मानसिक क्रिया अवश्य आ ही जाती है। प्रत्यक्ष में इन्द्रिय सन्निकर्ष मुख्य बात होती है; और ज्ञान में जो मानसिक क्रिया है, वह सब में वर्तमान होती है। इस कारण उसका अलग वर्णन नहीं किया

है *। परिभाषा में ज्ञान के साथ उसका विशेष गुण इन्द्रिय सन्निकर्ष लगा दिया है। जो लोग प्रत्यक्ष में मानसिक क्रिया को स्थान नहीं देते, वे बड़ी भूल करते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के ठीक होने के लिये दोनों ही बातों की आवश्यकता है। इन्द्रिय सन्निकर्ष भी ठीक हो और इन्द्रिय का विषय न इन्द्रिय से बहुत नजदीक हो न बहुत दूर हो †। और मानसिक क्रिया

---

* "प्रत्यक्ष निमित्तत्वाचेन्द्रियार्थयोरसन्निकर्षस्य न्यायप्रथग्वचनम् ।" इस न्यायसूत्र पर वात्स्यायन भाष्य में इस प्रकार लिखा है—प्रत्यक्षानुमानोपमान शब्दानां निमित्तमात्मन सन्निकर्ष प्रत्यक्षस्यैवेन्द्रयार्थ सन्निकर्ष इत्य समानोऽसमानस्य ग्रहणम्। अर्थात् आत्मा का सन्निकर्ष प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान शब्द ज्ञान का निमित्त है। प्रत्यक्ष मे इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष की विशेषता है। इसी विशेषता के कारण उसका ग्रहण किया है। लक्षण में असमान गुण ही दिया जाता है। न्याय के अनुसार इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष की विशेषता है। इसी विशेषता के कारण उसका ग्रहण तथा आत्मा और मन का सन्निकर्ष गौण है। आत्मा और मन के सन्निकर्ष का विरोध नहीं किया है। देखो न्या० सू० २—१—२३, २४७२५।

† अति दूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च ॥

सांख्य कारिका।

अति दूर होने के कारण, अति समीप होने के कारण, (जैसे आँख का सुरमा), इन्द्रियों के खराब हो जाने के कारण, ध्यान बँटे हुए होने के कारण, सूक्ष्मता के कारण, बीच मे किसी चीज़ के आने के कारण (जैसे दीवार वगैरह बीच मे आ जाने से) अभिभवात् अर्थात् किसी बडी चीज के दबाव मे आ जाने के कारण (जैसे सूर्य्य के कारण दिन में तारा गण नहीं दिखाई पडते) समान चीजों मे मिल जाने के कारण (जैसे एक रुपया बहुत से रुपयों मे मिल जाने के कारण) वस्तु के

भी ठीक तौर से काम करती हो । ईश्वर कृष्ण की सांख्य-कारिका में मनोऽनवस्थानात् वाक्य से बतलाया है कि मन का दूसरी जगह लगा होना वस्तु को प्रत्यक्ष नहीं होने देता । जब किसी मनुष्य की कोई चीज़ खो जाती है, तब एक मिट्टी का ढेला भी उसी वस्तु का रूप धारण कर लेता है । कारण यह है कि उसकी सारी मानसिक प्रवृत्तियाँ उस पदार्थ विशेष की ओर झुकी हुई होती हैं । जब कोई मनुष्य भूल से किसी और पदार्थ को अपनी प्रिय वस्तु बताने लगता है, तब लोग कहने लगते हैं कि ठीक है, क्यों न हो, तुम्हारे मन में तो वही वह समाया हुआ है, तुम को और कुछ क्यों सूझेगा । बिल्ली को स्वप्न में छिछड़े ही दिखाई पड़ते है । मानसिक क्रिया की अधिकता से जो खराबियाँ हुआ करती हैं, यह सब लोकोक्तियाँ इस बात की गवाही देती है । "जाकी रही भावना जैसी । प्रभु मूरत देखी तिन तैसी"॥ इस चौपाई में बहुत कुछ मनोवैज्ञानिक सत्य है । प्रभु जो भगवान् रामचंद्र है, सब गुणों की खानि हैं । जिसके मन में जो भाव प्रबल था, उसको रामचन्द्र जी में वही गुण दिखाई पड़ा । यह मानसिक क्रिया का, जो कि प्रत्यक्ष ज्ञान में काम करती है, अच्छा उदाहरण है ।

देखे जाने में बाधा पड़ती है । आज कल के यन्त्रों ने अति दूर होने और अति सूक्ष्म होने की बाधा को बहुत कम कर दिया है । बीच में किसी चीज के आ जाने की बाधा को एक्सरेज ने बहुत अंशों में दूर कर दिया है । नेत्र, श्रोत्रादि इन्द्रियोंके दोष का भी चश्मों वगैरह से परिहार किया जाता है ।

इस मानसिक क्रिया की अधिकता से जिस प्रकार भ्रम की संभावना रहती है, उसी प्रकार इस के अभाव से बहुत सी बातें हमारे ज्ञान में आने से रह जाती हैं। जो बारीकियाँ फूल में वनस्पतिशास्त्रवेत्ता को मालूम पड़ेंगी, वह साधारण मनुष्य को नहीं। कविता के जो गुण रसिक जनों को मालूम पड़ते है, वह साधारण लोगों को नहीं। इसी लिये कहा है—'अरसिकेषु कवित्व निवेदनम् शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।' और भी कहा है—काव्यामृतरसास्वादो जानाति विरलो भुवि। रत्न-परीक्षक को रत्न में जो गुण दोष दिखाई पड़ते है वह, साधारण देखनेवाले के ध्यान में नहीं आते। इन सब बातों का कारण यह है कि जो बात मन में रहती है, जिस बात की खोज मे लोग रहते है, उसको वे बहुत जल्द पहचान कर लेते हैं। इस ज्ञान की प्रबलता से यह दोष होता है कि जहाँ पर कोई वस्तु नहीं होती, वहाँ पर वह दिखाई देने लगती है, और अभाव का यह फल होता है कि जहाँ पर यह होती है, वहाँ पर भी नहीं दिखलाई देती। वैज्ञानिक को निरीक्षण मे बड़ी सावधानता से काम लेना चाहिए। दोनो ही बातो का खयाल रखना चाहिए—विषय का भी पूरा पूरा ज्ञान रहे; और उसके साथ यह भी ध्यान रहे कि वह अपनी कल्पना के जोश में भूल न कर जाय। वैज्ञानिक निरीक्षक को ज्ञान की आवश्यकता है, किन्तु वह ज्ञान ऐसा होना चाहिए कि उसमें पक्षपात का लेश न हो। यद्यपि यह बात ठीक है कि हर एक मनुष्य का दृष्टि-कोण अलग हो

होता है और उस के व्यक्तिगत विचार उस के निरीक्षण पर बड़ा प्रभाव डालते है, तथापि वैज्ञानिक निरीक्षक को चाहिए कि वह यथासम्भव अपने मन को पक्षपात से शून्य रक्खे। पक्षपात से मन को शून्य रखने का यही अर्थ है कि अपनी कल्पनाओं के प्रतिकूल घटनाओं की ओर भी इतना ही ध्यान दिया जाय जितना कि उन कल्पनाओं की ओर जो उसके विचारों के अनुकूल पड़ती है। लोग अपने विचारों के प्रतिकूल बातों के सुनने को भी तैयार नहीं होते और अपने विचारों के अनुकूल झूठी बात पर भी दौड़ कर विश्वास कर लेते हैं। इसी को पक्षपात कहते हैं। वैज्ञानिक के लिये पक्षपात बड़ा ही हानिकारक है। बड़े आदमी भी पक्षपात के वश हो धोखा खा जाते हैं और सत्य का पक्ष खो बैठते है। वैज्ञानिक को अपना पक्ष छोड़ कर सत्य का पक्ष ग्रहण करना चाहिए।

निरीक्षण के लिये संक्षेप से नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं।

(१) जिस विषय का निरीक्षण करना हो, उसमें निरीक्षक की रुचि और उस विषय की जानकारी।

(२) निरीक्षण के लिये ज्ञानेन्द्रियों की निर्दोषता और उनके सहायक यंत्रों की उपलब्धि। (यंत्रों के विषय में इस अध्याय के अंत में लिखा जायगा।)

(३) निरीक्षक का पक्षपात रहित होना।

प्रकृति की घटनाएं हमारे हुक्म में नहीं चलती हैं। चापलूस मुसाहिबों के कहने पर भी समुद्र की लहरों ने विलायत के बादशाह

केन्यूट का हुक्म नहीं माना था। प्रकृति की गति प्रायः एक सी रहती है। नई स्थितियों के लिये बहुत काल तक ठहरना पडता है। कार्य कारण सम्बन्ध निश्चित करने के लिये हम को एक ही घटना को नई नई स्थितियों में देखना पडता है। इस तुलना के लिये हमको वास्तविक घटना में रद्-बदल करना पड़ता है; अथवा हमको उनके प्राकृतिक रीति से उत्पन्न होने की प्रतीक्षा न करके उनके विशेप निरीक्षण के लिये उनको कृत्रिम रीति से वना लेना पड़ता है। प्रयोग द्वारा इस वात की सुविधा हो जाती है कि प्राकृतिक घटनाओं का विश्लेपण कर उनमें से एक एक वात का विशेष निरीक्षण करके मुख्य वात को अलग कर लेते हैं। एक वात को अलग करके परीक्षा करने से यह वात मालूम हो जाती है कि वह वात कार्य के उत्पादन में कहाँ तक समर्थ होती है। कभी ऐसा भी होता है कि हमने कोई कार्य कारण सम्बन्ध निश्चित किया और उस सम्बन्ध की सत्यता निश्चित करने के लिये उस स्थिति को कृत्रिम रीति से उपस्थित करके यह देखते हैं कि अमुक घटना का उदय होता है या नहीं। अपनी कल्पनाओं से निगमनात्मक अनुमानों के संवंध में हम प्रयोगो द्वारा देख लेते हे कि यह अनुभव-सिद्ध होते हे या नहीं; और फिर इससे कल्पनाओं की सत्यता निश्चित कर सकते हे। वहुत से ऐसे विज्ञान हे जिनमें प्रयोग से खूव काम लिया जाता है; और वहुत से ऐसे हैं, जो हमारी प्रयोगात्मक क्रियाओं के क्षेत्र से वाहर हैं।

प्रयोग

रसायन शास्त्र पहले प्रकार के विज्ञानों की संज्ञा में आता है। भूगर्भ विद्या और ज्योतिष शास्त्र उन विज्ञानों की संज्ञा में आते है जिनमें प्रयोग की अधिक गुंजाइश नहीं। कभी कभी प्रकृति भी इन वैज्ञानिक खोज में हमारी सहायक बनकर हमारे लिये प्रयोग कर देती है। जब कभी खग्रास सूर्य ग्रहण होता है, तब ज्योतिष शास्त्र-वेत्ताओं को सूर्य के चारो ओर की स्थितियों के विशेष निरीक्षण का अच्छा अवसर मिल जाता है। जो बात सूर्य के तेज के कारण दृष्टि में नहीं आती, वह उस समय दिखाई पड़ने लगती है। ऐसे अवसरों की वैज्ञानिक लोग बड़ी प्रतीक्षा करते रहते हैं* ।

निरीक्षण और प्रयोग में संबध और अतर

निरीक्षण और प्रयोग दोनों ही कार्य्य-कारण सम्बन्ध निश्चय कराने में सहायक हैं। इनमें बहुत से लोग भेद किया करते हैं। यह उनकी भूल है। एक को निष्क्रिय बतलाते हैं और एक को सक्रिय। इस भ्रम का संशोधन तो ऊपर हो ही चुका है। दोनों हा निरीक्षणों में भेद इतना ही है कि जिसको हम निरीक्षण कहते हैं उसमें घटनाओं को स्वाभाविक स्थिति में देखना होता है; और जिसको हम प्रयोग कहते हैं, उसमें अपनी उपस्थित की हुई स्थितियों में घटनाओं का निरीक्षण करना होता है। दोनों ही में थोड़ी बहुत क्रिया है और दोनों ही में निरीक्षण है।

* सन् १९१९ में एन्स्टीन की तेज सम्बन्धी कल्पनाओं की जाँच के वास्ते बहुत से विज्ञानवेत्ता अफ्रिका, ब्रेजिल आदि देशों में सूर्य्य ग्रहण देखने को गए थे।

वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा निरीक्षण में थोड़ी बहुत दोनों ही बातें आ जाती हैं।

वैज्ञानिक निरीक्षण के लिये केवल इतना ही आवश्यक नहीं कि वह पक्षपात शून्य हो, वरन् उसके लिये यह भी आवश्यक है कि उसका ज्ञान तुला हुआ हो। परिमाण का यथार्थ ज्ञान वैज्ञानिक की सफलता के लिये अत्यंत वाञ्छनीय है। यह 'बावन तोले पाव रत्ती' की बात बिना वैज्ञानिक यंत्रों के प्राप्त नहीं हो सकती। आज कल के यंत्रों द्वारा एक सेकेंड का ५०० वाँ भाग तक नापा जा सकता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ वैज्ञानिक की तौल नाप का विषय बन जाते हैं। इस तौल नाप के अतिरिक्त वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा हमारे निरीक्षण में भी बहुत सहायता मिलती है। किसी ने कहा है कि आज कल के विज्ञान की उन्नति का मूल आधार फुट, रूल और कम्पास हैं। यह बहुत अंशों में ठीक भी है। बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो इन यंत्रों की सहायता के बिना देखे ही नहीं जा सकते। इनके द्वारा अति सूक्ष्म और अति दूर की वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। कभी कभी लोग ऐसी शंका करने लगते हैं कि इन यंत्रों द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान वास्तविक नहीं हो सकता। नितान्त वास्तविकता तो किसी प्रकार नहीं प्राप्त हो सकती क्योंकि गर्मी, सर्दी, वायु का दबाव, पृथ्वी की आकर्षण शक्ति आदि कारण हमारी नाप तौल में फरक डालते रहते हैं। कोई तौल बिलकुल ठीक नहीं हो सकती। इन सब

वैज्ञानिक यंत्र

कारणों का प्रभाव न्यूनातिन्यून कर दिया जाता है। नापने का मीटर (Metre) शून्य दर्जे की ताप में रक्खा रहता है। यद्यपि नितान्त यथार्थता प्राप्त करना बहुत कठिन है, तथापि व्यवहार के लिये हमारा ज्ञान यथार्थता प्राप्त कर लेता है। अनुवीक्षण (Microscope) आदि यंत्रों द्वारा देखे हुए पदार्थों की यथार्थ लम्बाई चौड़ाई भी अनुमान द्वारा जानी जा सकती है। किसी निश्चित रीति से नापे हुए पदार्थ को यंत्र द्वारा देख कर निश्चय कर लिया जाता है कि यंत्र द्वारा देखे जाने पर उसकी लंबाई चौड़ाई किस हिस्से में बढ़ी हुई दिखाई पड़ती है। फिर उसी हिसाब से और पदार्थों की लंबाई चौड़ाई का अन्दाज लगा लिया जाता है।

यंत्र एक प्रकार से निरीक्षण और प्रयोग के बीच की स्थिति में हैं। यह निरीक्षण और प्रयोग दोनों ही में सहायक होते हैं। प्रकृति पर हमारा पूरा स्वत्व न होने के कारण हमारे निरीक्षण में बहुत असुविधाएँ पड़ती हैं। प्रयोग द्वारा वास्तविक स्थिति में थोड़ा रद्द बदल कर अपने निरीक्षण की पुष्टि की जाती है; और कभी कभी प्राकृतिक स्थिति के स्थान में कृत्रिम स्थिति उपस्थित कर निरीक्षण में प्रतीक्षा काल घटा दिया जाता है, और तब कार्य्य अधिक सावधानी के साथ हो जाता है। इन यंत्रों द्वारा निरीक्षण के क्षेत्र में इतना रद्द-बदल तो नहीं किया जाता किन्तु निरीक्षित क्षेत्र, जो कि सूक्ष्मता या दूरी के कारण अप्राप्य था, प्राप्य हो जाता है। प्रयोग द्वारा वास्त-

विक स्थिति बदल दी जाती है अथवा नई स्थिति उपस्थित कर दी जाती है। इन यंत्रों द्वारा वास्तविक परन्तु अप्राप्य स्थिति या घटना प्राप्य हो जाती है। वास्तविकता में केवल इतना ही अंतर पडता है कि उन पदार्थों का आकार घटा बढ़ा हुआ दिखाई पड़ता है; किन्तु पीछे से हिसाब लगा कर यथार्थता प्राप्त कर ली जाती है।

दूसरे अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

निरीक्षण और प्रयोग

(१) आगमनात्मक परीक्षा का क्रम बतलाइए।

(२) कल्पना और नियम में भेद बतलाइए।

(३) कल्पना और निरीक्षण में किस का स्थान पहले है, इसका विवेचना पूर्ण उत्तर दीजिए।

(४) वर्णन और व्याख्या में अन्तर बतलाइए, और उदाहरण द्वारा अपने उत्तर को स्पष्टता दीजिए।

(५) निरीक्षण और प्रयोग का अन्तर बतलाइए और उसी के साथ उनका परस्पर सम्बन्ध भी बतलाइए। यह कहना कहाँ तक ठीक होगा कि निरीक्षण निष्क्रिय निरीक्षण है और प्रयोग सक्रिय निरीक्षण है ?

(६) क्या प्रकृति भी हमारे लिये प्रयोग कर देती है ?

(७) निरीक्षण की अपेक्षा प्रयोग के सुभीते बतलाइए। ऐसे उदाहरण दीजिए जहाँ कि प्रयोग के लिये गुंजाइश न हो।

(८) वैज्ञानिक यंत्रों की निरीक्षण में उपयोगिता बतलाइए। वैज्ञानिक

यन्त्रा को निरीक्षण और प्रयोग के बीच को श्रेणी कहा है। इस कथन की सार्थकता बतलाइए।

(९) सांख्य के मत से किसी वस्तु के दिखलाई न पड़ने के कौन कौन से कारण माने गए हैं? आजकल के विज्ञान ने उन कारणों का कहाँ तक निराकरण किया है?

(१०) यथार्थ निरीक्षण के लिये किन किन बातों की विशेष आवश्यकता है?

तीसरा अध्याय

आगमन का आधार

आगमन में हम विशेष से साधारण में आते हैं। काल विशेष की घटना से हम ऐसे नियम पर जाते है जो त्रिकालाबाधित हों। अपने अनुभव में आए हुए मनुष्यों को मरते हुए देखकर यह अनुमान करते है कि मनुष्य नाशवान है। भूत और वर्त्तमान से भविष्य का अनुमान करने का हम को क्या अधिकार है? हम किस प्रकार जान सकते हैं कि भविष्य में भी मनुष्य मरण-धर्मवाले होंगे? यदि अभी तक हमारे अनुभव का प्रतिवाद नहीं हुआ है, तो इसका क्या प्रमाण है कि आगे भी न होगा। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, विज्ञान विशेष से सन्तुष्ट न रह कर सदा साधारण की ओर दौड़ता रहता है। वर्तमान दृष्ट सम्बन्धों को तीनों कालों में विस्तार देकर वैज्ञानिक लोग प्राकृतिक सिद्धान्तों के आधार पर बड़े बड़े मूल्यवान यंत्र बना डालते हैं। उन यन्त्रों की सफलता उनके अनुमान की सत्यता सूचित करती है। यह सब विशेष से साधारण की ओर आना दो मन्तव्यों के ऊपर निर्भर करता है।

आगमन के आधार-रूप मन्तव्य

(१) प्रकृति की एकता (Unity of nature) अर्थात् प्रकृति सब स्थानों और सब कालों में एक सी रहती है।

(२) प्रत्येक परिवर्त्तन का कोई न कोई कारण होता है।

प्रकृति में अस्त व्यस्तता का अभाव है। वह चारों ओर नियम और व्यवस्था से बँधी हुई है। यदि हम अपने अनुमान से नियम निश्चित करते हैं, तो वस्तुतः प्राकृतिक पदार्थ भी उन्ही नियमों के अनुसार व्यवहार करते है। वे नियम अटल है और सब कालों और व्यक्तियों के लिये एक से है। यदि भारतवर्ष में वृक्ष पर से फल धरती की ओर गिरते हैं, तो अमेरिका में आकाश की ओर नही उड़ जाते। इस नियम के कहने का यह आशय नही है कि सब स्थानों में एक सी ही अवस्थाएँ वर्त्तमान हैं; क्योंकि यदि ऐसा होता तो भारतवर्ष में लू न चलती और नौर्वे आदि देशों में उसके प्रतिकूल शीत का आधिक्य न होता। इस नियम का इतना ही अभिप्राय है कि ताप का जो धर्म भारतवर्ष में है, वही धर्म नौर्वे में भी है। अगर यहाँ ताप से थर्मामेटर का पारा ऊपर चढ़ता है, तो विलायत में नीचे नही उतर जाता। भारतवर्ष में गर्मी की तीव्रता और नौर्वे में शीत का आधिक्य प्राकृतिक नियमों के अनुसार होने के कारण प्रकृति की एकाकारता में बाधा नहीं डालता। सारांश यह है कि जो संबंध निश्चित किए जाते हैं, वे चाहे सब जगह वर्त्तमान न हों, किन्तु जिस जगह उस संबंध की सूचक घटनाएँ या उदाहरण एक ही अवस्था में वर्त्तमान होंगे, वहाँ पर उस संबंध में अन्य दूसरा संबंध न पाया जायगा। समान अव-

पहले मतव्य की व्याख्या

स्थाओं में समान ही परिणाम होंगे, यही सिद्धांत का मुख्य अभिप्राय है। यदि यह सिद्धांत न माना जाय तो न तो हमारे ज्ञान में कोई व्यवस्था रहेगी और न हमारे कार्यों का ही अभीष्ट परिणाम होगा। यदि वस्तुएँ अपना धर्म छोड़ दें तो सारा सामाजिक संस्थान अस्तव्यस्त हो जावेगा। यदि अग्नि में पाचन शक्ति न रहे तो हमको अपक्व अन्न ही खाना पड़ेगा। यदि लोहे की दृढ़ता चली जाय तो न जाने कब पुल पर से जाती हुई रेल जल में गिर पड़े और सहस्रों मनुष्यों की हत्या हो जाय। यदि फल पृथ्वी पर गिरने के बदले आकाश को उड़ने लगें तो फल प्राप्ति ही कठिन हो जाय। प्रकृति के सुव्य-वस्थित और नियमवद्ध होने में और इन नियमों की त्रिकाला-बाधित सत्यता में ही समाज के स्थायी रहने की एक मात्र आशा है। सत्य ही कहा है—'सत्येन धार्यते पृथ्वी।

इस पहले मंतव्य का उदय अर्थात् मनुष्य जाति को ज्ञान कहाँ से हुआ है, इस प्रश्न का उत्तर देने में दार्शनिकों में बडा मतभेद है। अनुभववादी (Experiencists), जिनमें मिल (Mill) प्रधान है, कहते हैं कि इस नियम का उदय अनुभव से हुआ है; अर्थात् अनेक बार इस बात के देखने पर कि समान अव-स्थाओं का परिणाम समान होता है, यह निश्चय किया गया है कि यह नियम सब अवस्थाओं में ठीक रहेगा।

पहले मतव्य की उपलब्धि

हमारा प्रश्न यह था कि वर्त्तमान से भविष्य पर जाने का

हमको क्या अधिकार है ? प्रकृति की एकता अर्थात् समान अवस्थाओं का समान परिणामवाला मंतव्य हमारा आधार बतलाया जाता है। जब इस आधार पर विचार किया जाता है, तो मालूम पडता है कि यह आधार अपने ऊपर ही अवलम्बित है। यदि हमारे अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि अभी तक जहाँ जहाँ समान अवस्थाएँ मिलीं, वहाँ वहाँ समान परिणाम भी मिले, तो इसका क्या प्रमाण है कि आगे भी यह नियम सत्य ठहरेगा ? इसके उत्तर में कहा जायगा कि जहाँ जहाँ समान अवस्थाएँ होती हैं, वहाँ वहाँ समान परिणाम होते हैं, अर्थात् हमारा अनुभव अभी तक ठीक रहा, इसी से प्रकृति की एकता के सिद्धांतानुसार आगे भी अबाधित रहेगा। अनुभवपूर्वक आगमनात्मक अनुमान से प्रकृति की एकता-वाले नियम की सिद्धि करने में उसी नियम का आश्रय लेना पड़ता है। इस युक्ति में आत्माश्रय नामक दोष आता है। दूसरा दोष यह है कि केवल निरीक्षण द्वारा हमको प्रकृति में एकता और भिन्नता दोनों ही के उदाहरण मिलते हैं। केवल अनुभववादी के लिये प्रकृति सदा एक-रस नहीं रहती। कहीं पर हम देखते हैं कि हमारे प्रयोग का शीघ्र ही फल मिल जाता है और कहीं फल का लोप हो जाता है। अच्छे माता पिता की बुरी सन्तान होती है और बुरे माता पिता की अच्छी सन्तान। यदि मनुष्य केवल अनुभव पर ही चले तो प्रकृति की एकता और भिन्नता दोनों ही का अनुमान कर सकता है।

संसार में प्रकृति की एकता के जितने उदाहरण देखे जाते हैं, उतने ही भिन्नता के भी देखे जा सकते हैं। फिर भिन्नता के उदाहरण वर्त्तमान होते हुए भी मनुष्य जाति ने एकता के नियम का क्यों निरूपण किया? इससे ज्ञात होता है कि कोरे अनुभव के अतिरिक्त और कोई कारण इस सिद्धांत के निश्चित होने में अपना प्रभाव डाल रहा है। इस बात को बतलाने के लिये अधिक तर्क और विज्ञान की आवश्यकता न पड़ेगी कि हम भिन्नता से संतुष्ट नहीं रहते। जब हम दियासलाई को हाथ में लेकर जलाते हैं, तब यदि किसी कारण से वह न जले तो हम यह नहीं कहते कि प्रकृति का ऐसा ही नियम है कि कभी दियासलाई जलती है और कभी नहीं। हम तुरत ही अपने अनुभव की प्रतिकूलता का कारण ढूँढने लगते हैं। कल्पना करने लगते हैं कि या तो दियासलाई के बक्स पर का मसाला झड़ गया है या वह सरदी खा गई है। भिन्नता की व्याख्या करने के लिये जो हमारा उपाय है, वही इस बात को प्रमाणित करता है कि हम भिन्नता से संतुष्ट नहीं रहते। हमको एकता का सिद्धांत पूर्व ही मान लेना पड़ता है। बिना उसके ज्ञान का विकास असंभव हो जाता है। यदि एकता का सिद्धांत पहले से ही हमारे मानसिक संस्थान में गुप्त रीति से स्थान पाए हुए न होता तो हमारा अनुभव छिन्न भिन्न हो गया होता। हमारा ज्ञान विशेष से साधारण तक न पहुँचता और न भिन्नता में एकता स्थापित हो सकती

भूत के अनुभव से भविष्य में सहायता न मिलती। प्रत्येक दिन हमको नया पाठ पढ़ना होता और प्रकृति के विद्यालय में हम शिशु ही बने रहते। कार्य्य में कारण को न देख सकते; सिद्धांत और नियम को इस संसार में स्थान न मिलता। इसी एकता के सिद्धान्त के आधार पर हमारे ज्ञान की लता बढ़ी है। यह जो अनुमान का आधार है, अनुभव का फल नहीं हो सकता। सारा अनुभव, ज्ञान और विज्ञान इसी का फल है। फल से ही मूल के अस्तित्व का अनुमान किया गया है। मानव जाति का इतिहास भी बतलाता है कि पहले लोग एकता और समानता को भिन्नता की अपेक्षा अधिक देखा करते थे। बालकों में भी भेद-दृष्टि कम होती है। इसी कमी के कारण लोग बड़ी बड़ी भूलें भी कर जाते हैं। सब सफेद वस्तुओं का एक ही गुण समझ लेते हैं। किन्तु हमारी भूलें भी हमारे मानसिक झुकाव को बतलाती है। यदि यह बात है कि यह सिद्धान्त अनुभव का फल नहीं वरन् उसका सहायक है, तो फिर क्या अनुभव से इस सिद्धान्त का कोई सम्बन्ध नहीं? क्या यह सिद्धान्त मनुष्य जाति में आदि काल से वर्तमान है? क्या बालक और जंगली मनुष्य भी इस सिद्धान्त को जानते हैं। नहीं नहीं! ऐसा कहना भूल है। बालक और जंगली मनुष्य सभी इस सिद्धान्त के अनुसार और इसकी सहायता से ज्ञानोपार्जन करते रहते हैं किन्तु किसी सिद्धान्त के अनुसार कार्य करना और उसका जानना एक बात नहीं है। विचार के साधारण नियमों को सभी काम में लाते

है, किन्तु उनका विशेष निरूपण तार्किक लोग ही कर सकते है। गुरुत्वाकर्षण के नियम के मालूम होने से पहले भी फल गिरा करते थे। फल गिरते समय जिस नियम का पालन करते थे, उसको वह नही जानते थे। मनुष्य जाति में इतनी विशेषता है कि उसमें जो नियम गुप्त रीति से काम किया करते है, वह समय पा कर जाति के कुछ व्यक्तियों में प्रकट हो जाते है। एकता का सिद्धान्त जैसा कि आज कल तर्क शास्त्र के ग्रन्थो में निरूपित किया जाता है, वैसा तो मनुष्यों के मन में आदि काल से वर्तमान नही था; किन्तु उसका कार्य आदि काल से ही मनुष्य जाति के ज्ञानोपार्जन में हो रहा था। हमारा मानसिक संस्थान क्षण क्षण पर एकता का प्रमाण देता रहता है। चाहे बूढा हो चाहे बालक, चाहे निरक्षर हो चाहे साक्षर, अपने अनुभव में एकता स्थापित करता रहता है। हमारा साधारण से साधारण प्रत्यक्ष वर्तमान अनुभव का पूर्व अनुभव के साथ मिलान का फल है। हमको असम्भव ग्राह्य नही होता। प्रकृति की एकाकारता हमारे मानसिक संस्थान की एकाकारता की प्रतिलिपि है। हमारा मानसिक संस्थान भी प्राकृतिक संस्थान का एक भाग है। यदि एकाकारता का नियम प्रकृति के एक भाग में काम कर रहा है, तो ऐसा नही हो सकता कि अन्य भाग उससे शून्य हो। यदि ऐसा होगा तो एकाकारता का सिद्धान्त अपनी आत्महत्या करेगा। यह सिद्धान्त सारी चराचर प्रकृति में वर्तमान है। मनुष्य द्वारा प्रकृति वाचाल हो

जाती है। मनुष्य ही प्रकृति का मुख है। काल पाकर प्रकृति वाचाल हो जाती है और यह नियम ज्ञान में स्पष्टता पाती है। मनुष्य के मानसिक संस्थान और प्राकृतिक संस्थान की एकता और एकाकारता अनुभव से सिद्ध होती रहती है। कभी कभी हमको प्रकृति की एकाकारता के विरुद्ध प्रमाण मिलते हैं, किन्तु विचार करने पर वह विरोध साम्य को प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक वैज्ञानिक आविष्कार प्रकृति विषयक एकता की मुक्त कण्ठ से साक्षी देता है। वह बताता है कि जिस प्रकार की कार्य कारण सम्बन्धिनी आनुपूर्वी हम कुछ विशेष प्राकृतिक अवस्थाओं में देखते हैं, वे अवस्थाएँ यदि कृत्रिम रीति से भी उपस्थित कर दी जायँ, तो वही आनुपूर्वी दिखाई पड़ती है। जो ग्रहणादि की घटनाएँ हम प्रकृति की एकाकारता के आधार पर पहले से बतला देते हैं, वह काल पाकर प्रत्यक्ष हो जाती हैं। प्रायः ऐसा भी होता है कि कभी हमको एकाकारता में विरोध दिखाई पड़ता है, तो उसका शमन करने के लिये जो सम्भावनाएँ सोचते हैं वह अनुभवगत हो जाती हैं। नेपट्यून की ज्ञान-प्राप्ति इसी प्रकार के विरोध साम्य सम्बन्धी प्रयत्नों का फल है। यह उदाहरण इस बात को सिद्ध करते है कि एकाकारता हमारे मानसिक संस्थान की ही आवश्यकता नहीं है, वरन् प्रकृति में भी इसकी सत्यता है। जो नियम या सम्बन्ध विचार में निश्चित किए गए हैं, प्रकृति में भी वह नियम या सम्बन्ध वर्तमान हैं। जो कार्य हम इन नियमों के आधार पर करते है, उनकी

सफलता ही प्राकृतिक और मानसिक सस्थानों के साम्य का प्रमाण है।

आगमनात्मक तर्क में घटनाओं से सिद्धान्त पर जाते हैं। इस से यह अभिप्राय न समझ लिया जाय कि घटनाओं और सिद्धान्तों मे कुछ सम्बन्ध नहीं अथवा यहाँ सिद्धान्त पर पहुँच कर आगमनात्मक तर्क का कर्त्तव्य खतम हो जाता है। यह दोनों ही बातें ठीक नही है। घटनाओं के निरीक्षण से कल्पनाएँ बनतीं हैं और कल्पनाओं से सिद्धान्त बनते हे, और सिद्धान्तों के निश्चित हो जाने पर बहुत सी बातें जो कल्पना समझी जाती थी, वह वास्तविकता की कोटि में आ जाती हैं। हमारे ज्ञान से हमारे निरीक्षण का फल बहुत कुछ बदल जाता है। निरीक्षण और अनुमान-जन्य ज्ञान का एक दूसरे पर प्रभाव पडता रहता है; इसलिये निरीक्षण को आगमन की सब से प्रथम श्रेणी मानना निर्विवाद नहा है। सिद्धान्त भी अन्तिम श्रेणी नहीं है। सिद्धान्त भी कभी आगमनात्मक अनुमान का आधार बना लिये जाते है और उन से अधिक व्याप्तिवाले सिद्धान्त निकाले जाते हं। इसी प्रकार विज्ञान का प्रवाह सदा से चलता आया है और चला जायगा। एक प्रकार से कल्पना, निरीक्षण और सिद्धान्त का बीज वृक्ष का सा सम्बन्ध है। निरीक्षण से पूर्व किसी प्रकार को कल्पना हमारे निरीक्षण का आधार बनती है, अर्थात् उसी के सहारे हम निरीक्षण का क्षेत्र निश्चित

सिद्धान्त और घटनाएँ

करते हैं। प्रत्येक वस्तु अनेकानेक नियमों और सम्बन्धों का केन्द्र है।

इन्हीं नियमों और सम्बन्धों द्वारा सारे संसार के पदार्थ हमारे ज्ञान के तारतम्य में स्थान पाते हैं। विज्ञान इन नियमों को निश्चित कर हमारे ज्ञान में व्यवस्था उत्पन्न करता है। यह नियम और सम्बन्ध ईंट पत्थर की भाँति सड़क पर पड़े हुए नहीं मिलते, वरन् एक प्रकार से बनाए जाते हैं। वह हमारी मानसिक क्रिया का फल हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका आधार केवल कल्पना में है। उनका आधार प्रत्यक्ष की दृढ़ भित्ति में है। नियम पालनेवाले पदार्थों के अभाव में यह नियम बिलकुल बेकार हैं। प्रकृति में यह नियम और सम्बन्ध साधारण घटनाओं की भाँति प्रत्यक्ष का विषय नहीं बनते, किन्तु यह घटनाएँ उन्हीं नियमों और सम्बन्धों के अनुसार चलती हैं। यह नियम और सम्बन्ध हमारे विचार में रहते हैं विषय हैं और घटनाएँ हमारे संवेदनों का विषय हैं। किन्तु न तो विचार और संवेदन एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं और न पदार्थ या घटनाएँ नियमों से। हमारा ज्ञान कैमरा (Camera) के प्लेट की भाँति नहीं है जो केवल बाहर के संवेदनों को अंकित कर ले। हर एक पदार्थ को हम एक विशेष स्थिति और सम्बन्ध में देखते हैं और उसी के अनुसार वह हमारे लिये अपना मूल्य रखती है। संसार में जो हमारा व्यवहार है वह केवल बाहरी पदार्थों की स्थिति मात्र से नहीं चल रहा

है, वरन् हमारे ज्ञान की सुव्यवस्था के कारण। जो क्रम हम निश्चित करते हैं, उसी क्रम से हमको संसार के पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि हमारे स्थापित किए हुए नियम और क्रम स्थिर नहीं रहते और अनुभव का विस्तार होने पर उनमें रद्द बदल होता है, तथापि उनमें एक प्रकार की स्वतन्त्र स्थिति सी मालूम होती है। (आज कल के वस्तुवादी जो सम्बन्धों की वास्तविकता मानते है, बतलाते हैं कि 'किन्तु' 'एकसा' आदि का ऐसा ही प्रत्यक्ष होता है जैसा कि घड़े या टोपी का।) वास्तव में हमारा मानसिक संस्थान विश्व के संस्थान का अंश होने के कारण उससे सम्बन्ध रखता है। बुद्धि और प्रकृति में एक प्रकार की परस्परानुकूलता है। हमारे बोध हमारे प्रत्यक्षों को शासित करते हैं और हमारे प्रत्यक्ष हमारे बोधों को निश्चयता देते है। कांट ने ठीक ही कहा है कि बोध (Conception) प्रत्यक्षों बिना खोखले हैं और प्रत्यक्ष बोधों बिना अंधे हैं। विचार से हमारे संवेदन स्पष्टता प्राप्त करते हैं और संवेदनों से हमारे विचार निश्चयता को पहुँचते हैं। प्रत्यक्ष और संवेदन का सम्बन्ध विशेष से है और विचार और बुद्धि का सम्बन्ध साधारण से है। जो सम्बन्ध संवेदन और विचार का है, वही विशेष और साधारण का है। आगमन का उद्देश्य विशेषों में रहने वाले साधारण को निकालना है। इस साधारण के आधार पर ज्ञात से अज्ञात विशेषों तक जा सकते हैं, क्योंकि वह साधारण सभी विशेषों को शासित करता है।

यह प्रश्न भारतीय तर्कशास्त्र में भी उठाया गया है कि जो हम रसोईघर, यज्ञशाला आदि के धूम को देख कर यावत् धूमों के विषय में अनुमान कर लेते हैं अथवा धूम और वह्नि की व्याप्ति स्थापित कर लेते हैं, उसका क्या आधार है। इसमें भूयोदर्शन (Repeated observation) थोड़ा काम अवश्य करता है, लेकिन भूयोदर्शन इस सामान्य ज्ञान के उत्पन्न करने में पर्य्याप्त नहीं है। भूयोदर्शन के सिद्धान्त में बहुत कठिनाइयाँ हैं। उनको तत्वचिन्तामणि के कर्ता ने इस प्रकार बतलाया है। भूयोदर्शन में प्रत्येक उदाहरण व्याप्ति ज्ञान नहीं करा सकता, क्योंकि दूसरे उदाहरण के देखे जाने के पूर्व पहला नष्ट हो जाता है। यदि यह कहा जाय कि पहले का संस्कार बना रहता है या पहले निरीक्षण का फल लिखा जा सकता है, तो सब उदाहरण समान नहीं होते। रसोईघर का धूआँ और श्मशान का धूआँ एक सा नहीं होता। फिर यह नहीं समझ में आता कि भूयोदर्शन का क्या अर्थ है। एक ही घटना को बहुत वार देखना अथवा एक सी घटनाओं को कई स्थानों में देखना भूयोदर्शन है। इसके अतिरिक्त इसका कोई प्रमाण नहीं कि भूयोदर्शन का अर्थ कितने बार का दर्शन है। दो सौ दफा का अथवा एक सौ दफा का या एक दो ही बार का? यह अन्तिम कठिनाई गणनात्मक अनुमान की जड़ काटती है। भूयोदर्शन की उपयोगिता केवल व्यभिचार शंका की निवृत्ति करने के अर्थ मानी

सामान्यीकरण के विषय में भारतीय तार्किकों का मत

गई है। "भूयोदर्शनं तु न कारणम्, व्यभिचारास्फूर्तौ सकृद्दर्शनेऽपिक्वचिद्व्याप्तिग्रहात्क्वचिद्व्यभिचार शङ्का विधूनन द्वारा भूयोदर्शनमुपयुज्यते।" अर्थात् भूयोदर्शन व्याप्ति ग्रहण में कारण नही है। व्यभिचार न दिखलाई पड़े तो एक दफा के दर्शन से भी व्याप्ति का ग्रहण हो सकता है। कुछ तो व्याप्ति के ग्रहण करने के लिये और कुछ व्यभिचार शंका को हटाने के लिये भूयोदर्शन की उपयोगिता है। व्याप्ति ग्रहण में व्यभिचार के अभावयुक्त सहचार की कारणता मानी गई है।

"व्यभिचाराग्रहः सहचारग्रहश्च व्याप्ति ग्रहे कारणमित्यर्थः। व्यभिचार ग्रहस्य व्याप्तिग्रह प्रतिवन्धकत्वात् तदभावः कारणं। एवमन्वमव्यतिरेकाभ्यां सहचार ग्रहस्यापि हेतुता।" अर्थात् व्यभिचार का अग्रहण और सहचार का ग्रहण व्याप्ति-ग्रहण में कारण है। व्यभिचार ग्रहण के व्याप्तिग्रह में प्रतिवन्धता होनेके कारण उसका अभाव व्याप्तिग्रह का कारण होता है, और इसी के साथ अन्वय और व्यतिरेक करके सहचार व्याप्ति ग्रहण का कारण होता है। यदि यह पूछा जाय कि जो सहचार देखा जाता है, वह तो थोड़े उदाहरणों का होता है, उसे भूत, भविष्य के उदाहरणों के विषय में किस प्रकार कह सकते है, तो उसमें एक सामान्य लक्षण नाम का अलौकिक संन्निकर्ष काम करता है।

धूमत्व सभी धूमों में रहता है। धूम में धूमत्व देखकर सब धूमों का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि धूमत्व सभी धूमों में

पाया जाता है। यह अलौकिक प्रत्यक्ष यों कहा है कि लौकिक प्रत्यक्ष तो केवल वर्तमान धूम का होता है, लेकिन यह तीनों काल का है।

इस धूमत्व के साथ जिन बातों का अविना भाव है, वह अविना भाव तीनों कालों के लिये सत्य रहेगा। यह ज्ञान हम को सामान्य के ज्ञान द्वारा होता है। इसको सामान्य लक्षण अर्थात् सामान्य विषय का सन्निकर्ष कहते हैं।

तीसरे अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

आगमन का आधार

(१) आगमन पद्धति किन सिद्धान्तों पर अवलम्बित है?

(२) प्रकृति की एकाकारता से आप क्या समझते हैं?

(३) प्रकृति की एकाकारता का नियम हम को कहाँ से प्राप्त हुआ? क्या यह आगमन का फल है?

(४) १००० वार गरम करने से लोहे के भिन्न भिन्न छड़ों की लम्बाई बढ़ जाती है। तो जब १००१ वीं वार हम लोहे के किसी छड़ को गरम करें, तब भी उस की लम्बाई बढ़ जायगी? इस प्रकार की आशा रखने का क्या मुख्य आधार है?

(५) नैयायिकों ने सामान्यीकरण (General isation) की क्रिया किस प्रकार की मानी है?

(६) घटना और नियम में क्या सम्बन्ध है?

चौथा अध्याय

कल्पना

(Hypotheses)

ऊपर बतलाया जा चुका है कि व्याख्या विज्ञान का मुख्य उद्देश्य है। व्याख्या केवल विज्ञान का ही उद्देश्य नहीं है वरन् साधारण मनुष्य का भी। जब हम बाहर से लौट कर कमरे में आते हैं और किताबें इधर उधर उलटी पलटी हुई दिखाई पड़ती हैं, तब हम इतने से संतुष्ट नहीं रहते। तुरन्त ही कारण की खोज करने लगते हैं और नौकर से पूछने लगते हैं कि कोई आया तो नहीं था। अगर गाय ने दूध नहीं दिया तो फौरन कल्पना करने लगते हैं कि कहीं बछड़ा तो दूध नहीं पी गया। यदि किसी मित्र का पत्र नहीं आता तो फौरन कल्पना करने लग जाते हैं कि कहीं वह बाहर तो नहीं चले गए, अथवा पत्र ही न पहुँचा हो; अथवा वह बीमार पड़ गए; अथवा कहीं नाराज़ तो नहीं हो गए। शायद यह हो कि उनके पास काम ज्यादा आ गया हो या शायद आलस्यवश ही उत्तर न दिया हो। ऐसी ऐसी नाना भाँति की कल्पनाएँ करने लग जाते हैं। इनमें से कुछ कल्पनाएँ असम्भव समझ कर छोड़ दी जाती हैं; और जिनको अधिक सम्भावना होती है, वह मान ली जाती है। सम्भव कल्पनाओं पर काम चलने लगता है। मनुष्य के जीवन

कल्पना किसे कहते हैं

में कल्पना करने के अवसर बहुत आते रहते हैं। यही व्याख्या की ओर दौड़ने में पहला पग रखना है। किसी घटना वा घटनाओं की व्याख्या किसी घटना वा सिद्धान्त द्वारा करने में जो अटकल पहले पहल लगाई जाती है, उसी को कल्पना कहते हैं। ऊपर साधारण मनुष्यों की कल्पनाएँ तो बता दी गई हैं। वैज्ञानिक लोगों की कल्पनाएँ और साधारण लोगों की कल्पनाएँ प्रायः एक ही सी होती हैं; अन्तर इतना ही होता है कि साधारण मनुष्य की संतुष्टि शीघ्र हो जाती है। न वह उतनी छानबीन करता है और न उसकी कल्पनाओं में पूरी यथार्थता आती है। वैज्ञानिक लोग साधारणतया संतुष्ट नहीं होते। वह बड़ी छानबीन करते हैं और अपना ज्ञान बिलकुल बावन तोले पाव रत्ती तुला हुआ चाहते हैं। साधारण मनुष्य के ज्ञान में और वैज्ञानिक के ज्ञान में बड़ा अन्तर है। साधारण लोगों का ज्ञान उन्हीं के लिये होता है। यदि आपके मित्र का पत्र उनकी बीमारी के कारण नहीं आया, तो इससे और लोगों को क्या प्रयोजन? शायद कोई आपके मित्र का सम्बन्धी हो तो इस ज्ञान से लाभ उठा सके; लेकिन सर्व साधारण को इस ज्ञान से कुछ मतलब नहीं। वैज्ञानिक का ज्ञान ऐसा नहीं है, जैसा एक व्यक्ति का ज्ञान होता है। उससे सारा संसार लाभ उठा सकता है। वैज्ञानिक लोगों का ज्ञान सार्वजनिक है। यदि ऐसे ज्ञान में जरा सी त्रुटि रह जाय तो सारे संसार का ज्ञान दूषित रह जायगा; और जो लोग अयथार्थ ज्ञान पर

काम कर बैठेंगे, वह हानि उठावेंगे। वैज्ञानिक लोगों का बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। साधारण लोग प्रायः एक या दो बातों की व्याख्या करना चाहते हैं। उनका हित संकुचित होता है। जो बात उनसे सम्बन्ध रखती है, उसी के बारे में वह सोच विचार करना चाहते है, और बातों को वह वृथा समझते है। वैज्ञानिक लोग जाति भर की बातों पर विचार करते है। यदि व्यक्ति पर भी वैज्ञानिक लोग विचार करते हैं, तो उसकी भी जाति के सम्बन्ध में, अर्थात् उसको जाति का प्रतिनिधि मान कर उस पर विवेचना करते हैं। इस कारण से भी वैज्ञानिक के ज्ञान का यथार्थ होना आवश्यक है। जा बात वह एक विशेष घटना के लिये निश्चित करते है, वह उस जाति की सभी घटनाओं के लिये होती है। इसी प्रकार कल्पनाओं के विषय में साधारण लोगों और वैज्ञानिकों में भेद है। साधारण लोग कल्पनाओं को तभी काम में लाते है जब कि उन को कोई अनोखी बात अर्थात् साधारण अनुभव से प्रतिकूल बात दिखाई पड़ती है। साधारण बातों के लिये साधारण मनुष्य कल्पना नहीं करना चाहते। जो बात प्रति दिन होती रहती है, साधारण लोगों के लिये उसमें कोई विशेषता नहीं। उनके लिये 'अतिपरिचयादवज्ञा' का नियम घटता है। टूटते हुए तारों की ओर तो उनका ध्यान जल्द दौड़ जाता है; किन्तु जो तारागण हर रात को उदय और अस्त होते रहते है, उनकी ओर साधारण लोगों का

विचार नहीं जाता। वैज्ञानिक लोगों का कुतूहल बढा चढ़ा रहता है। उनको साधारण से साधारण बात भी अनोखी मालूम होती है और वह उनके गवेषण का विषय बन जाती है। गिरते हुए फलों को सब देखते हैं। पर उनके लिये कोई अपनी विचार शक्ति को कष्ट नहीं देता। बटलोई में सभी लोग खाद्य पदार्थ पकाया करते हैं, पर वह लोग उनके सम्बन्ध में बिल्कुल ध्यान नहीं देते। किन्तु इन्हीं बातों को देख कर न्यूटन (Newton) और वॉट (Watt) साहब *ने बड़ी बड़ी बातों के आविष्कार किए हैं। वैज्ञानिक लोग प्रायः हर एक घटना की, चाहे वह साधारण हो चाहे असाधारण, व्याख्या करना चाहते हैं। यद्यपि उनकी बहुत सी कल्पनाएँ बिलकुल अटकल पच्चू होती हैं, तथापि उनकी कल्पनाओं में साधारण लोगों की कल्पना से यथार्थता की मात्रा अधिक होती है। साधारण लोगों की कल्पना की अपेक्षा वैज्ञानिक की कल्पना का विस्तार अधिक होता है अर्थात् वह बहुत सी घटनाओं पर प्रयुक्त होती है।

कल्पनाएँ हम को कंकड़ पत्थर की भाँति सड़क पर पड़ी हुई नहीं मिलतीं। वह हमारे निरीक्षण का विषय नहीं है वरन हमारी स्फूर्ति का विषय हैं। यद्यपि कल्पनाओं का आधार इन्द्रिय ज्ञान में अवश्य है, तथापि स्फूर्ति के बिना कल्पना का उदय नहीं होता।

कल्पना का उदय

---

*न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का नियम ढूँढ निकाला था और वॉट साहब ने बटलोई के ढक्कन को उठते देखकर भाप की शक्ति का ज्ञान संसार को दिया।

इसके उदय के लिये कोई नियम भी निर्धारित नहीं किए जा सकते। जिस प्रकार कविता के लिये कल्पना शक्ति की आवश्यकता है, उसी प्रकार वैज्ञानिक लोगों के लिये भी कल्पना शक्ति की आवश्यकता है। कोई केवल छन्द शास्त्र के नियम पढ़ कर कवि नहीं बन सकता। इसी प्रकार तर्क शास्त्र के नियमों को जान लेने से ही कोई वैज्ञानिक नही बन जाता। दोनों ही के लिये वैज्ञानिक स्फूर्त्ति की आवश्यकता है। जिस प्रकार कवि को छोटी छोटी बातों से बड़े बड़े विचारों के लिये संकेत मिल जाता है, उसी प्रकार वैज्ञानिक को भी छोटी छोटी घटनाओं से बड़ी बड़ी कल्पनाओं के लिये मसाला प्राप्त होता है। इस संकेत को समझने में ही कवि और वैज्ञानिक लोगों की असाधारण बुद्धि का परिचय मिलता है। कौन कह सकता था कि एक लटके हुए लम्प को देख कर कोई विज्ञानवेत्ता गति के नियम निर्धारित कर लेगा। ऐसा किस का मालूम था कि गिरते हुए फल देखने से गुरुत्वाकर्षण का नियम निकाला जा सकेगा। क्या कोई जानता था कि जो भाप की शक्ति आज कल इतना काम कर रही है, जिसके द्वारा करोड़ों मन बोझ दुनिया के इस कोने से उस कोने तक पहुँचाया जाता है, एक हाँड़ी के ऊपर के ढकने को उठते हुए देखने से कल्पना में आई होगी? यह सब बातें वैज्ञानिकों को स्फूर्त्ति का फल है। ऊपर की आलोचना से यह न समझ लिया जाय कि यह सब आविष्कार आकस्मिक ही होते हैं अथवा इनको जो चाहे वह कर लेगा।

ऐसा नहीं है। यद्यपि इन आविष्कारों में आकस्मिकता का थोड़ा बहुत अंश प्रायः रहता है, तथापि ऐसा नहीं है कि विचारशून्य मनुष्य को ऐसे आविष्कार करने का गौरव प्राप्त हो जाय। इस का कारण यह है कि जो मनुष्य जिस बात को सोचता रहता है, वही बात उसको जल्द सूझने लग जाती है। संसार में उसके उदाहरण भी मिल जाते हैं। प्रकृति का भंडार अनन्त है। उस में से जो चाहे सो अपनी रुचि के अनुसार फल खा सकता है। जो आविष्कार हमको आकस्मिक मालूम होते हैं, न मालूम वह कितनी रातों के जागरण का फल है। मनुष्य विचार किया करते है और सदा उनकी पुष्टि की खोज मे रहते हैं। भाग्य से उनको कोई ऐसा संकेत मिल जाता है जिसके ऊपर चलने से उनके विचारों की पुष्टि होती है *।

वैज्ञानिक लोगों को कल्पनाओं के उदय के लिये अपने निरीक्षण और ज्ञान का विस्तार बढ़ाना चाहिए। जो मनुष्य पहले से कुछ नही जानता, वह प्रकृति के संकेतों को नही समझ सकता। धनवानों को ही धन मिला करता है। रुपए से रुपया कमाया

---

* अर्शमीदस को जल के कुण्ड मे गोता लगाते ही आपेक्षिक गुरुत्व (Specefic gravity) का सिद्धान्त समझ में आ गया था और वह यूरीका यूरीका (मैने पा लिया है) कहता हुआ जल से नंगा ही भाग निकला था। देखने में तो यह आविष्कार आकस्मिक सा ही है, किन्तु वास्तव में यह आविष्कार आकस्मिक नहीं। यह अर्शमीदस के विचार और चिन्ता का फल है। अर्शमीदस को भय लगा हुआ था कि यदि ताज मे सोने और अन्य धातुओ का परिमाण न बतला सकेगा, तो उसे प्राण-दण्ड मिलेगा।

जाता है। इसी प्रकार ज्ञान से ज्ञान का उपार्जन होता है। यदि अल्प ज्ञानी के मन में कोई स्फूर्ति हो भी तो वह फलवती न होगी। स्फूर्ति के होते हुए भी ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। यही कारण है कि कभी कभी ज्ञानवान लोग अज्ञानियों की स्फूर्ति से लाभ उठा लेते हैं। जिसके पास पूर्वार्जित ज्ञान का भण्डार नहीं है, उसको यह भी न मालूम होगा कि क्या नया और क्या पुराना है और कौन सा रास्ता ऐसा है जिस पर चल कर अभीष्ट प्राप्ति की आशा हो सकती है। अज्ञानी पुरुष का बहुत सा परिश्रम निष्फल जाता है। बहुत से लोग अपने मन में समझते हैं कि हमने कोई नई कल्पना निकाली है और उसकी सिद्धि में वे परिश्रम करते रहते हैं। पीछे से जब मालूम होता है कि इस पर लोग पहिले से परिश्रम कर चुके हैं और उन्होंने इसके विषय में अमुक भूल की थी और फिर अन्त में अमुक निश्चय किया, तब उन्हें पछताना पडता है। यदि यह बात पहले से मालूम हो जाती तो वही भूलें न दुहराई जाती। संसार के ज्ञान की इसी प्रकार उन्नति होती है। एक की भूल दूसरे की शिक्षा का कारण बनती है और एक की उपलब्धि दूसरे के आगे बढने के लिये श्रेणी होती है। किन्तु जिसको पूर्व संचित ज्ञान का पता ही नहीं वह क्या लाभ उठा सकता है। वैज्ञानिक के लिये ज्ञान भंडार को बढ़ाने की बड़ी आवश्यकता है। जब तक कि ज्ञान भण्डार अच्छा नहीं है, तब तक कल्पना का उदय होना कठिन है। इसके लिये सारा

संसार अँधेरी कोठरी है। ज्ञान का दीपक स्वयं अपने को प्रकाशित करता है और उसके आलोक में सब पदार्थ दिखाई देने लगते हैं। यदि ज्ञानशून्य मनुष्य के मन में किसी कल्पना का उदय भी हो गया, तो बन्दर के हाथ में मणि की भाँति वह निष्फल रहती है।

स्फूर्ति, ज्ञान, धैर्य आदि तो कल्पनाओं के उदय होने में साधारणतया सहायक हैं ही, किन्तु गणना, उपमान, सम्भव के ज्ञान आदि के द्वारा भी कल्पना का अंकुर उठने लगता है। इन विषयों का वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

यह न समझ लिया जाय कि पहली ही बार ठीक कल्पना की प्राप्ति हो जाती है। ज्ञान की उन्नति के क्रम में वृथा कल्पनाओं के त्याग से ही काम लिया जाता है। बहुत सी कल्पनाओं के बीज बोए जाते हैं। कोई एक फलवती होती है और शेष सब नष्ट हो जाती हैं। कभी कभी अयथार्थ कल्पना से भी यथार्थ कल्पना का उदय होता है। अयथार्थ कल्पना का निरन्तर तिरस्कार नहीं करना चाहिए। बहुत सी अयथार्थ कल्पनाओं में भी सत्य का अंश रहता है; और उसी अंश से निर्दिष्ट घटनाओं की वह व्याख्या कर देती हैं। ज्ञान के विस्तार से ही कल्पना की यथार्थता निश्चित होती रहती है। जो कल्पना आज यथार्थ प्रतीत होती है, वही कल ज्ञान क्षेत्र के बढ़ जाने के कारण अयथार्थ समझी जाती है। किन्तु इससे कोई यह न अनुमान करे कि इस कल्पना का कोई प्रयोजन ही

न था और उसके निर्माण-कर्त्ताओं का परिश्रम निष्फल गया। यदि वह कल्पना न होती तो विचार के लिये कोई आधार ही न होता, और फिर इस नई कल्पना का भी उदय न होता। फिर वह उस समय की निरीक्षित घटनाओं की व्याख्या करने में समर्थ थी। विना सत्य के अंश के उतनी घटनाओं की व्याख्या करने मे भी वह असमर्थ रहती। लोग उस कल्पना के आधार पर अपने काम भी चलाते हैं और उन कामों में सफलता भी होती रहती है।। ये सब बातें उसकी सत्यता का प्रमाण हैं। जैसे जैसे ज्ञान का विकास होता जाता है, वैसे वैसे यथार्थता की मात्रा बढ़ती जाती है। हमको कोई अधिकार नहीं कि हम उनको निष्प्रयोजन कहें। उस समय जितनी बातें निरीक्षण में आई थीं, उनसे हम भी वही कल्पना करते। इसलिये हमको अपने पूर्वजों के कार्य्यों को सहृदयता से देखना चाहिए।

सब कल्पनाएँ भी एक श्रेणी की नहीं होतीं। कुछ तो सिर्फ़ आगे काम चलाने के लिये मान ली जाती हैं। ऐसी कल्पनाओं को काम चलाऊ कल्पनाएँ (Working Hypothesis) कहते है। कोई केवल गणना का फल बतलाने के लिये होती है और कोई व्याख्या के लिये।

कल्पनाओं के प्रकार

(१) काम चलाऊ कल्पना से यह अर्थ नही कि काम चलाने के लिये चाहे जैसी उल्टी सोधी कल्पना कर ली जाय। भविष्य की गवेषणा के लिये जिस कल्पना द्वारा हमको सूत्र मिलता है, वह Working Hypothesis अथवा काम चलाऊ

कल्पना कही जाती है। कामचलाऊ का यहाँ पर वाचक अर्थ लेना चाहिए, उसकी लक्षणा से प्रयोजन नहीं। ऐसी कल्पनाएँ कभी झूठी साबित होने पर भी आगे के अनुसंधान के लिये आधार बनी रहती हैं। कुछ कल्पनाएँ केवल वर्णनात्मक होती हैं। वह निरीक्षित बातों का थोड़े शब्दों में वर्णन कर देती हैं; और कुछ ऐसी कल्पनाएँ हैं जो व्याख्या करती हैं। विज्ञान में सभी कल्पनाओं का काम पड़ता है; किन्तु विज्ञान का मुख्य उद्देश्य उन्हीं कल्पनाओं से है जो व्याख्या करती है।

(२) फालतू कल्पना—(Gratuitious Hypothesis) जब एक कल्पना से किसी घटना की व्याख्या हो जाय, तब उसी की व्याख्या के लिये किसी अन्य पदार्थ या शक्ति की कल्पना करना फालतू कल्पना कहलाती है। आवश्यक से अधिक कल्पना करना ठीक नहीं है। इसी को अपने यहाँ लाघव गुण कहते हैं। यदि किसी स्थान में रक्खा हुआ दूध गिर गया हो और उसकी व्याख्या बिल्ली या कुत्ते के आने से हो जाय, तो पृथ्वी के हिलने अथवा चोर के आने की कल्पना फालतू कल्पना समझी जायगी।

(३) वर्णनात्मक कल्पना—जहाँ पर हमको ठीक तौर से कार्य्य कारण सम्बन्ध निश्चित न हो सके, वहाँ प्रायः दूसरे किसी जाने हुए सिद्धान्त के उपमान पर हम उन घटनाओं का कार्य्यक्रम वर्णन करते हैं। ऐसे वर्णन के लिये जो कल्पना की जाती है, उसे वर्णनात्मक कल्पना (Descriptive Hypo-

thesis) कहते हैं। विद्युत् के संचार के नियम ठीक तौर से नहीं मालूम हैं। उसको भी और द्रव (Fluid) पदार्थों की भाँति मान लेते हैं और उनके अनुसार उसके कार्य्यक्रम की कल्पना करते हैं। यह वर्णनात्मक कल्पना ठहरेगी।

(४) सिद्ध कल्पनाएँ—जो कल्पनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, वह मत या वाद (Theory) कहलाती हैं। जब वह पूर्ण निश्चयता की कोटि में आ जाती है, तब वह सिद्धान्त या नियम कहलाने लगती हैं। कल्पनाओं की परीक्षा और सिद्धि किस प्रकार होती है, यह नीचे बतलाया जाता है।

कल्पनाओं की परीक्षा

यह तो स्पष्ट ही है कि सब कल्पनाएँ एक सा मूल्य नही रखती। कुछ यथार्थ होती हैं और कुछ अयथार्थ, इसलिये उनकी परीक्षा की आवश्यकता है। यह बात ध्यान में रहे कि कल्पनाएँ जबर्दस्ती नही बनाई जाती। न्यूटन (Newton) ने कहा है—Hypothesis non fingo अर्थात् मै कल्पना नही बनाता। इसका अर्थ यही है कि मैं निराधार कल्पना नही बनाता। निराधार कल्पना का कोई मान नहीं करता। यद्यपि कल्पनाओं की पुष्टि और सिद्धि कई और रीतियों से होती रहती है, तथापि उन की सत्यता जानने के लिये यह एक मुख्य नियम माना गया है कि उनसे निगमनात्मक अनुमान निकाले जायँ; अर्थात् यह देखा जाय कि उनको सत्य मानकर और कौन कौन सी बातें सत्य मानना पड़ेंगी; और फिर उनको जाँचा जाय कि वह

अनुभव-सिद्ध ठहरती हैं या नहीं। यदि अनुभव-सिद्ध हैं ता ठीक है अन्यथा नही। इसी नियम के अनुसार कल्पनाओं की सत्यता की तीन शर्त्तें मानी गई है। कल्पनाओं में यह बातें अवश्य होना चाहिएँ, तभी वह ठीक मानी जा सकती है।

(१) कल्पना में अपने साथ संगति हा और पूर्वार्जित सिद्धान्तों के साथ भी सगति हो।

(२) उस से निगमनात्मक अनुमान निकाले जा सकें।

(३) यह निगमन अनुभव-सिद्ध पाए जायँ।

पहली शर्त की परीक्षा—संगति का होना कल्पना ही के लिये नही आवश्यक है, वरन् सारे ज्ञान के लिये। वदतोव्याघात तर्क शास्त्र में बड़ा भारी दोष गिना गया है। कहा है

"वाधितमर्थं वेदोऽपिन बोधयति" अर्थात् वेद भी बाधित अर्थ को नही ठीक कर सकते। कोई कल्पना ऐसी नही होनी चाहिए जिसका फल उसी कल्पना से विरोध में पड़े अथवा किसी निश्चित सिद्धान्त के विरोध में पड़े। जो कल्पनाएँ किसी निश्चित सिद्धान्त के विरोध में पड़ती है, वह विचारने योग्य नही समझी जाती। उदाहरणतः यदि कोई कल्पना ऐसी की जाय कि जिसके मानने से हमको यह मानना पड़े कि गति सातत्य (Perpetual Motion) सम्भव है, तो उस कल्पना को झूठ ही मानना पड़ेगा। भौतिक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि गति सातत्य असम्भव है। यदि कोई कल्पना इस

के विरुद्ध खड़ी कर दी जाय तो जब तक कि उसके पक्ष में कोई बड़ा जोरदार सबूत न हो, मानी न जायगी। जो कल्पनायें सिद्धान्त की कोटि में आ चुकी हैं, उनके विरुद्ध सहसा कोई कल्पना खड़ी करना कठिन है। किन्तु यदि नई कल्पना के लिये पूरे पूरे प्रमाण सिद्ध हों और वह सब प्रकार से युक्ति-युक्त ठहरे, तो केवल इस कारण से कि पहले सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ती है, तिरस्कार करने योग्य नहीं समझी जायगी। यदि नई कल्पना के लिये दृढ़ आधार मिल जाय तो पुराने सिद्धान्तों को भी कभी कभी नई कल्पना के आलोक में बद-लना पड़ता है। नए आविष्कारों से पुराने सिद्धान्तों में रद् बदल करनी पड़ती है। पुराने सिद्धान्तों को नई कल्पना की अपेक्षा अधिक दृढ़ मानते हैं, किन्तु यह नियम नहीं कि पुराने सिद्धान्त ऐसे दृढ़ और स्थायी समझे जायँ कि नई बातों के मालूम होने पर भी उनमें रद बदल न हो सके *। प्राकृतिक स्थिति और शक्ति स्थिति के सिद्धान्त (Law of Conservation of matter and energy) ऐसे अटल नियम समझे जाते थे कि उनके विरुद्ध विचार करना अवैज्ञानिक समझा जाता था। किन्तु आज कल अच्छे अच्छे वैज्ञानिक लोग इनके

---

* ऐन्स्टीन (Einstein) की कल्पनाएँ न्यूटन प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण और तेज की गति सम्बन्धी नियमों के विरुद्ध पड़ती हैं और इन नियमों मे नए सिद्धान्त के अनुसार रद बदल होना आवश्यक समझा जाने लगा है।

विरुद्ध कल्पना करते हैं। विज्ञान में नए और पुराने का आदर नहीं; उस को सत्य ही सर्वथा मान्य है।

दूसरी शर्त्त विज्ञान के आदर्श से सम्बन्ध रखती है। ज्ञान में व्यवस्था स्थापित करना, नए ज्ञान की पिछले ज्ञान के साथ संगति किए बिना सम्भव नहीं। यदि कोई ऐसी कल्पना की जाय जो पहले ज्ञान से कुछ सम्बन्ध न रखती हो, तो उसको न सत्य ही कह सकेंगे और न मिथ्या ही। जिन कल्पनाओं के फल ऐसे हैं जो हमारे ज्ञान से बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखते, उनसे कोई निगमन निकालना कठिन है और उनकी परीक्षा असंभव है। परीक्षा के लिये यह बात परम आवश्यक है कि कल्पना जाने हुए सिद्धान्तों से कुछ सम्बन्ध रखती हो। परीक्षा मिलान करने ही से होती है। जब उसकी तुलना किसी जानी हुई चीज से नहीं हो सकती, तब उसकी परीक्षा ही किस प्रकार हो सकेगी? ईथर (Ether) की कल्पना से बहुत सी बातों को व्याख्या की जाती है; किन्तु यदि ईथर अन्य जाने हुए पदार्थों से बिलकुल समानता न रखता होता, तो उसके सम्बन्ध में जितनी कल्पनाएँ की जाती, वे सब निष्फल होती और उन कल्पनाओं की सत्यता जानना कठिन हो जाता। यदि कोई गुरुत्वाकर्षण के नियम का तिरस्कार करके यह कल्पना करे कि जो फल गिरते हैं, वे वृक्ष पृथ्वी को भेंट देते हैं, तो यह कल्पना ऐसी है कि इसको न कोई झूठ ही कह सकता है और न सत्य। यदि वृक्ष के कोई आंतरिक भाव हैं, तो हमको

उनका विल्कुल पता नहीं है और इससे हम कोई अनुमान नहीं निकाल सकते। यदि यह वात किसी मनुष्य के वारे में कही जाती तो उसका मानना कठिन न था। हमको मनुष्य जाति की मानसिक स्थिति का इतना साधारण ज्ञान है कि हम यह कह सकें कि उसमें इतनी उदारता सम्भव है या नहीं। परीक्षा के लिये हमको एक वात की अन्य जानी हुई वातों से संगति करनी पड़ती है। कुछ काल पहले युरोप के लोग पृथ्वी को केवल ५००० वर्ष का बना हुआ मानते थे। जब भूगर्भ विद्या द्वारा देखा गया तो मालूम हुआ कि इतने थोड़े काल में इतनी मोटी चट्टानों का वनना, जीव जन्तुओं की इतनी जातियों का मिटकर प्रस्तरीभूत होना, ज्वालामुखी पर्वतों से निकले हुए भस्मीभूत पदार्थों के पर्वतोपम ढेर के ढेर वनना सम्भव नहीं था। वह लोग सोचते थे कि संसार की प्रारंभिक अवस्था में बड़े बड़े परिवर्तन शीघ्र ही होते रहते थे। तूफान के आने में, पृथ्वी के फटने में, पहाड़ के वनने में, रेत इकट्ठा होने में कुछ देर नहीं लगती थी। यह वातें आज कल के अनुभव के विरुद्ध हैं। और इस कारण पृथ्वी के केवल ५००० वर्ष की ही वनी हुई होने की कल्पना के मानने में वाधा पड़ती है। यद्यपि यह कोई नही जानता कि आरम्भ में क्या अवस्था होगी, तथापि विकासवादियों की कल्पनाएँ आजकल के अनुभव के अनुकूल हैं। जिस प्रकार आजकल सव वातें क्रम से होती जाती है, वैसे ही पूर्व काल से भी होती चली आई हैं।

आजकल के सादृश्य पर पूर्व काल की बातें भी निश्चित की जाती हैं। लेकिन यदि यह मान लिया जाय कि पूर्व काल में और वर्त्तमान काल में कोई सादृश्य न था, तो पूर्व काल के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाय, उसको न हम मान ही सकेंगे और न उस का खण्डन ही कर सकेंगे। आजकल की घटनाओं के सादृश्य पर उनसे न हम कुछ अनुमान कर सकेंगे और न हम उन अनुमानों की परीक्षा कर सकेंगे। किसी कल्पना के ठीक होने के लिये यह आवश्यक है कि वह हमारे जाने हुए सिद्धान्तों से कुछ न कुछ सम्बन्ध रखती हो; और जानी हुई बातों के सादृश्य पर उससे ऐसे निगमन निकाले जायँ जिनकी अनुभव में परीक्षा हो सके। इसी कारण धर्म सम्बन्धी अदृश्य पदार्थों के विषय में विज्ञान मौन रहता है।

तीसरी शर्त—हर प्रकार के ज्ञान के लिये अनुभव के अनुकूल होना आवश्यक है। जब हम कोई कल्पना करते हैं तो उसकी सिद्धि में और बहुत सी बातें लगी हुई होती हैं; अर्थात् यदि उसको ठीक मानें तो उसके साथ और बहुत सी बातों को ठीक मानना पड़ता है। ऐसी कल्पना को न्याय दर्शन में अधिकरण सिद्धान्त कहा है*। जो बातें कल्पना

---

* यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धि सोऽधिकरण सिद्धान्त। अर्थात् जिसके सिद्ध होने से अन्य प्रकरणों की सिद्धि होती है, उसे अधिकरण सिद्धान्त कहते हैं।

प्राय सभी कल्पनाएँ अधिकरण सिद्धान्त की कोटि की होती हैं। उनके मानने से और बहुत सी बातें माननी पड़ती हैं। यदि वह सब बाते भी सत्य हो तो कल्पना के सत्य होने में कम सन्देह रहता है।

के साथ उसके फल स्वरूप अवश्य माननी पड़ेंगी, उनको देखना चाहिए कि वह अनुभव-सिद्ध हैं या नहीं। जब कल्पना के फल अनुभव-सिद्ध ठहरें, तभी कल्पना को ठीक समझना चाहिए। हमारा ज्ञान व्यवसायात्मक है। जो ज्ञान अनुभव विरुद्ध है, उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता। उसके आधार पर कोई कार्य्य नहीं उठाया जाता। जो अनुभव सकल प्रवृत्ति का कारण होता है, वही सिद्ध ठहरता है। इसलिये कल्पनाओं तथा उनके फलों का अनुभव सिद्ध होना परमावश्यक है। विज्ञान के इतिहास में इस परीक्षा पद्धति के अच्छे अच्छे उदाहरण मिलते हैं। उनमें से एक यहाँ पर दिया जाता है। पहले ज़माने के लोग पम्प में पानी उठने का कारण यह बतलाते थे कि प्रकृति को शून्य से घृणा है (Nature abhors vacuum)। उन लोगों को यह बात मालूम नहीं थी कि पम्प में पानी ३३ फुट से ज्यादा ऊँचा नहीं उठता। इस बात को पहले पहल गैलीलियो (Galello) ने देखा था। वह इसकी कुछ व्याख्या नहीं कर सका। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके मित्र टोरीसेली (Toricelli) ने इस विषय में विवेचन करना शुरू किया। उसने प्रश्न किया कि पानी क्यों ऊपर उठता है? तब उसके विचार में आया कि वायु का कुछ न कुछ बोझ होगा और उसी बोझ के कारण पम्प के शून्य स्थान में पानी उठ जाता है। इस कल्पना की सत्यता जानने के लिये इससे निगमनात्मक अनुमान किया गया। पारे का बोझ पानी

से चौदह गुना है। यदि यह कल्पना ठीक है, तो हवा का बोझ पारे को ३३ फुट के चौदहवें हिस्से तक उठावेगा। उसने ३४ इञ्च लम्बी एक नली में पारा भरा और उसको पारे से भरे हुए खुले बरतन में उलट दिया। पारा ३० इञ्च की ऊँचाई पर ठहर रहा। उसका अनुमान अनुभव सिद्ध हो गया, और उसने वायुभारमापक, यंत्र जिसको बेरोमीटर कहते हैं, बनाया। पेस्कल (Pascal) ने इस कल्पना को और भी पुष्ट कर दिया। ऊँचे पहाड़ों पर हवा का बोझ कम होता है। वहाँ हवा की पारा या पानी उठाने की शक्ति और भी कम होनी चाहिए। यदि हवा के ही बोझ से पानी या पारा उठता है, तो पारे का चढ़ना भी कम होना चाहिए। पहाड़ों पर बेरोमेटर ले जाने से यह बात अनुभव-सिद्ध हो गई और कल्पना की पुष्टि हो गई। इसी प्रकार कल्पनाओं की पुष्टि होती है।

कल्पनाओं की पुष्टि की और भी कई रीतियाँ है जिनका आगे वर्णन किया जायगा। बहुत सी कल्पनाओं में से ठीक कल्पनाओं को निकालना वैज्ञानिक का मुख्य कर्त्तव्य है। भावात्मक और निपेधात्मक उदाहरणों द्वारा योग्य कल्पनाओं की पुष्टि और अयोग्य कल्पनाओं का निषेध होता रहता है। कभी ऐसा भी होता है कि दो ऐसी प्रतिद्वन्दिनी कल्पनाएँ उठ खड़ी होती हैं जो निरीक्षित घटनाओं की पूरी व्याख्या कर देती हैं। ऐसी अवस्था में कोई ऐसी नई घटना ढूँढ़नी पड़ती है जिसको

निर्णायक उदाहरण

व्याख्या एक कल्पना कर सकती है और दूसरी नहीं, तो ऐसी घटना या उदाहरण को निर्णायक उदाहरण (Crucial test) कहते हैं। हमको ऐसे निर्णायक उदाहरणों का प्रयोग जीवन की साधारण घटनाओं में अनेक बार करना पड़ता है। विज्ञान में निर्णायक उदाहरणों का वहुत काम पड़ता है। प्रकाश (Light) के विषय में दो कल्पनाएँ की गई हैं। एक तो यह है कि प्रकाश एक प्रकार की तरंगों (Waves) का फल है। यह तो अनड्यूलेटरी (Undulatory) अर्थात् तरंग सम्बधिनी कल्पना के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरी कल्पना के अनुसार प्रकाश के छोटी छोटी कण वा परिमाणु होते हैं, वह दौड़ते रहते हैं। इसको कारपस क्यूलर थियरी (Corpuscular Theory) कण सम्बन्धिनी कल्पना कहते हैं। यह दोनों ही कल्पनाएँ रेखागणित के नियमों के अनुकुल पड़ती हैं और दोनों ही साधारणतया सन्तोषजनक हैं इनमें से कौन वस्तुतः ठीक है, इस वात का निश्चय करने के लिये निर्णायक उदाहरणों की आवश्यकता पड़ी। लोगों ने विचार किया कि यदि तरंग की कल्पना ठीक है, तो घने माध्यमें पतले माध्यम की अपेक्षा प्रकाश की गति को रुकावट के कारण घट जाना चाहिए। और दूसरी कल्पना के माननेवालों का यह मत था कि घने माध्यम में आकर्षण के वल से प्रकाश की गति वढ़ जायगी। जव काँच के लम्वे लम्वे टुकड़ों को ऐसा रक्खा गया कि उनकी लम्वाई में होकर प्रकाश की किरणें निकलें, तो देखा गया कि वास्तव में प्रकाश

की गति घट गई। ऐसे ही प्रयोग को निर्णायक प्रयोग (Experimentum Crusis) कहते हैं। यह प्रयोग पहली कल्पना के अनुकूल पड़ा, और दूसरी के प्रतिकूल, इसी से पहली कल्पना की पुष्टि हुई और दूसरी कल्पना का पत्त गिर गया। इसी प्रकार पृथ्वी के घूमने के सम्बन्ध में दो कल्पनाएँ बहुत काल से चली, आई है। पहली कल्पना तो पृथ्वी को स्थिर मानती है और दूसरी कल्पना पृथ्वी को घूमती हुई मानती है। दोनों ही कल्पनाओं से दिन रात सूर्य्योदय ग्रहणादिक घटनाओं की व्याख्या हो जाती है; किन्तु इन दोनों प्रतिद्वन्द्विनी कल्पनाओं में कौन अधिक माननीय है, इस बात का निश्चय करने में दो उदाहरण दिए जाते हैं। एक तो तारागणों के तेज का अपेरण (Aberration of stars) और दूसरा फॉनकॉल्ट का पेण्डूलेम (Foncault's Pendulum) है। विस्तार भय से इनका वर्णन यहाँ पर नहीं दिया जाता।

चौथे अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

(१) कल्पना (Hypothesis) किसको कहते हैं ? कल्पना की सिद्धि से क्या अभिप्राय है ? ऊह (अकटल) और वैज्ञानिक कल्पना में अन्तर बतलाइए।

(२) कल्पना कैसी होनी चाहिए अर्थात् उसके लिये कौन कौन सी बातें आवश्यक हैं ?

(३) नीचे लिखे शब्दों की व्याख्या कीजिए और उनके उदाहरण दीजिए—काम चलाऊ कल्पना। निर्णायक प्रयोग। फालतू कल्पना।

(४) भविष्यद्वाणी पूरी होने से कल्पना की सिद्धि होती है। इस वाक्य की व्याख्या कीजिए और उदाहरणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि कीजिए।

(५) किसी मरे हुए मनुष्य के पास किसी के नाम की अंकित तलवार पाई जाय, तो उससे क्या क्या कल्पनाएँ कीजिएगा ?

पाँचवाँ अध्याय

गणनात्मक आगमन

निरीक्षण द्वारा हमको घटनाओं का ज्ञान होता है। विज्ञान के लिये गुण के ज्ञान के अतिरिक्त संख्या और परिमाण का भी ज्ञान आवश्यक है। यह सब कोई जानता है कि विष खाने से मृत्यु हो जाती है; किन्तु क्या विष को लोग औषधि मे नही खाते? यदि उचित परिमाण का ज्ञान न हो तो औषध में विष खाने का कौन साहस करेगा। प्लेग से हर साल मनुष्य मरा करते हैं। किन्तु मृत्यु संख्या के ठीक ठीक जाने विना यह किस प्रकार मालूम हो कि किस साल वीमारी कम रही और किस साल ज्यादा; किस नगर में कम रही और किस नगर में अधिक। ऐसी ही वातों के जानने से प्लेग के कारण जानने में सहायता हुई। इसी प्रकार जैसे जैसे विज्ञान का विकास होता गया, वैसे वैसे गुणों के अतिरिक संख्या और परिमाण का भी ज्ञान वढता गया। यह संख्या परिमाण का ही फल है कि विज्ञान ने वड़े वडे चमत्कार कर दिखाए हैं। यदि किसी घटना को वार वार होते देखें तो हम यह अनुमान करने लगते हैं कि अमुक समय के आने पर वह घटना होगी। विज्ञान की दृष्टि से तो यह ज्ञान तभी सार्थक होगा जव कि उस घटना का और उस काल विशेष का कोई सम्बन्ध निश्चित हो। किन्तु विना इतने ज्ञान के उस सम्बन्ध की खोज करने का किस को विचार होता। गणना से निरीक्षित पदार्थों

के वर्णन में बड़ी सहायता मिलती है। केवल इतना ही नहीं, गणना द्वारा हम घटनाओं के वर्णन से उनकी व्याख्या की ओर एक दम आगे बढ़ जाते हैं। केवल गणना तो बहुत कम होती है। गणना किसी न किसी लक्ष्य को ही लेकर की जाती है। ऐसी गणना से घटनाओं के वर्गीकरण में सहायता मिलती है। उनका थोड़ा बहुत विश्लेषण भी हो जाता है और कल्पनाएँ भी उठने लगती है। गणना आगमनात्मक अनुमान का आरम्भ है। कल्पना करने से पहले घटनाओं को गिनना पड़ता है—उनका वर्गीकरण करना पड़ता है। कार्य्य कारण संबंध निश्चित करने के लिये भावात्मक और अभावात्मक उदाहरण देखने पड़ते हैं। यह सब बातें गणना द्वारा ही मालूम हो सकती हैं। जब तक हम विश्लेषण द्वारा घटनाओं का ठीक कार्य्य कारण संबंध निश्चित नहीं कर लेते है, तब तक गणना से प्राप्त किया हुआ ज्ञान बड़ा उपयोगी होता है। कार्य्य कारण संबंध निश्चय हो जाने पर गणना की आवश्यकता नहीं रहती। पहले ज़माने में लोग ग्रहणों को गिना करते थे कि कितने काल बाद पड़ते हैं। अब उनका सिद्धांत मालूम हो गया। अब इस प्रकार की गणना की कोई आवश्यकता नहीं। आँधी और तूफानों के कारण पूरी तौर से निश्चित नहीं हुए हैं। उनके लिये लोग अब भी गणना की रीति का प्रयोग करते हैं। अकालों का भी अभी ठीक कारण ज्ञात नहीं हुआ है और लोग प्रायः गणनात्मक अनुमान से ही काम लिया करते

हैं। ऐसा औसत निकाल कर कि ५ या १० वर्ष पीछे अकाल पड़ता है, लोग उतने वर्ष बीत जाने पर अकाल की सम्भावना बतलाने लग जाते हैं। जब तक कोई कार्य्य कारण सम्बन्ध निश्चित न हो जाय, तब तक ऐसे ज्ञान के आधार पर अनुमान करना संशयशून्य नही, तथापि ऐसे अनुमान पर ही संसार के बहुत से कार्य्य चलते हैं। बहुत से शास्त्र तो ऐसे है जिन का विषय हमारी प्रयोगात्मक खोज से बाहर है और जो गणना का विषय बनते है। राजनीतिक विज्ञान और अर्थ शास्त्र में तो गणना के आधार पर बने हुए चक्रों (Statistics) से बहुत काम लिए जाते हैं। यह गणना के चक्र ऐसी जगह खास तौर से काम में लाए जाते हैं जहाँ की घटनाएँ बड़ी पेचीदा होती हैं और व्यापक सिद्धान्त सहज में दिखाई नही पड़ते। समाज शास्त्र सरीखे कठिन विषय में गणना का ही प्रयोग होता है।

उदाहरण—यदि अनिवार्य्य प्रारम्भिक शिक्षा और देश की आर्थिक अवस्था का सम्बन्ध देखना चाहें तो हम को गणना से काम लेना पड़ेगा। यदि हम देखना चाहें कि बाल-विवाह से लाभ होता है या हानि, तो हम को गणना की सहायता लेनी होगी। यदि हम जानना चाहें कि किस प्रान्त में विधवाओं की संख्या ज्यादा है, तब भी हमको इन चक्रों की छानबीन करनी पड़ेगी। यदि हम यह जानना चाहें कि सामिश भोजन करना लाभदायक है या निरामिश तो भी हमको इन दोनों दलों की मृत्युसंख्या की ही जाँच करनी पड़ेगी। इन सब उदाहरणों

से ज्ञात होगा कि संख्या द्वारा बहुत सी घटनाओं को हाथ में लेकर सुगमता से उनपर विचार कर सकते हैं। इन अनुमानों में बहुत से निश्चयात्मक अनुमान होते हैं; बहुत से केवल सम्भावना बतलाते हैं। सम्भावना का भी आधार इसी गणना में निकलता है। गणना द्वारा सम्भावना स्थापित कर फिर उसका निश्चय होता है।

आकस्मिकता

संसार में बहुत सी ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनका कोई कारण नहीं बतलाया जाता; किन्तु गणना के आधार पर उनके घटने की सम्भावना बतलाई जाती है। यद्यपि दुनिया में ऐसी कोई घटना नहीं होती जिसका कोई कारण न हो, तथापि हमारा ज्ञान इतना बढ़ा हुआ नहीं है कि हम सब बातों का कारण बतला सकें। जब हम कौड़ियों को हाथ से फेंकते है, तब हम नहीं जानते कि कितनी चित्त गिरेंगी कितनी पट्ट; और न हम इसका कोई कारण ही दे सकते हैं कि इतनी चित क्यों गिरी। बहुत से लोगों का कहना है कि यद्यपि हम नहीं जानते कि किसी खास समय में किसी कौड़ी के चित या पट्ट गिरने का क्या कारण है, तथापि यह घटना बिना कारण के नहीं है। ऐसी अवस्था में हम इन सब बातों को आकस्मिक कहते हैं*। इनके लिये कोई नियम मालूम नहीं कि

---

* आज कल के मनोविश्लेषण शास्त्र (Psycho analysis) के अनुसार प्राय सभी आकस्मिक घटनाओं का कारण मन की अनुबद्ध अवस्था (Sub-concious state) में खोजा जाता है।

कब होंगी। ऐसी अवस्था में इनमें सम्भावना ही देखी जाती है। सम्भावना निश्चित करने के लिये लोगों ने नियम भी बनाने का यत्न किया है, किन्तु उनका फल निश्चित नही होता। यदि सौ वार पैसा फेंका जाय, तो उसके चित्त पड़ने की पचास बार सम्भावना है। लेकिन यह बिल्कुल ठीक नही कि पैसा पचास ही बार चित्त पड़े। सम्भव है कि एक बार भी चित्त न पड़े या सौ बार ही चित्त पड़े। ऐसा देखा गया है कि जितनी ज्यादा बार परीक्षा की जाय, उतना ही सम्भावना का हिसाब ठीक बैठता है। जो लोग कौड़ी फेंकने में सिद्धहस्त होते हैं, वह चित्त पड़ने की सम्भावनाओं को अपने वश में कर लेते है, किन्तु वह सच्ची सम्भावना नही। जीवन्स् साहब अपने अनुभव से लिखते हैं कि उन्होंने २०४२० बार कई सिक्के ऊपर को उछाले। उनमें १०६१३ बार चित्त पड़े। करीब करीब आधे का औसत पड़ गया। तिस पर भी उनका कहना है कि चित्त पड़ने का नम्बर अधिक रहा। जब चिट्ठी पड़ती है और चिट्ठी डालनेवालों की संख्या ज्यादा होती है, तब उतनी ही किसी व्यक्ति के नाम चिट्ठी निकलने की कम सम्भावना रहती है। एक आदमी जितनी ज्यादा चिट्ठियाँ अपने नाम से डालता है, उतनी ही उसके नाम इनाम आने की अधिक सम्भावना गिनी जाती है। बहुत सी सम्भावनाएँ औसत पर से निकाली जाती हैं। उदाहरणतः हजार बच्चों में करीब २५० बच्चे छः वर्ष की अवस्था से पहले मर जाते हैं।

२००० में ७५० बालकों अर्थात् चार में तीन बालकों की सम्भावना है कि ६ वर्ष की अवस्था से ऊँचे पहुँचें। देखा गया है कि एक हज़ार मनुष्यों में २ मनुष्य ६० वर्ष की अवस्था तक पहुँचते हैं, तो प्रत्येक मनुष्य के ६० वर्ष तक पहुँचने की २/१००० अर्थात् १/५०० सम्भावना है। ऐसे ही औसत के आधार पर जीवन का बीमा करनेवाली कम्पनियाँ अपना काम चलाती हैं। बीमा करानेवालों की संख्या जितनी अधिक होती है, उतना ही औसत भी ठीक बैठता है। उदाहरण लीजिये-५० वर्ष की उमर से पहले मरनेवालों का औसत १०० में ५ है। मान लो कि किसी कम्पनी में २००० मनुष्यों ने १०००) प्रति मनुष्य का बीमा कराया है और साल भर में ज्यादा से ज्यादा १०० आदमी मरेंगे। इस हिसाब से कम्पनी को १००००) सालाना नुकसान के देने पड़ेंगे। उस रुपए के लिये उस कम्पनी को ५०) सालाना फी आदमी लेना पड़ेगा। इस नुकसान की कुछ कमी ब्याज से पूरी हो जाती है। अब कम्पनीवाले जान का बीमा करानेवालों से इस हिसाब से रुपया लेंगे कि एक खास उमर तक बीमे का रुपया पूरा हो जाय और नुकसान भी पूरा हो जाय। बीमा करानेवाला आदमी यदि पूरी उमर तक जीवित रहे, तो बीमे के रुपए से कुछ अधिक देना पड़ता है। यह हिसाब बहुत पेचीदा है। इसमें बहुत सी बातों का पड़ता लगाना पड़ता है। मनुष्यों का उम्र के हिसाब से विभाग किया जाता है। ऐसे मनुष्य लिए

ही नहीं जाते जिनके जल्द मर जाने की विशेष आशंका हो। मेरे एक उस्ताद, जो कि अब इस संसार में नहीं है और जो अच्छे गणितज्ञ थे, एक बीमा करनेवाली कम्पनी के केवल इसलिये एजेंट थे कि उनको बोमे के हिसाब लगाने में बड़ी दिलचस्पी थी। बीमा करानेवालों का नम्बर जितना ज्यादा होता है, उतनी ही औसत के ठीक बैठने की सम्भावना घट जाती है। यदि केवल एक ही मनुष्य की जान का बीमा कराया जाय, तो वह बड़ी जोखों का काम रहे और वह एक प्रकार का जूआ हो जाय।

सब बातों का फल यह है कि गणना बहुत सावधानी से करनी चाहिए और जिस लक्ष्य से की जाय, वह लक्ष्य सामने से न हटने पावे। जहाँ तक हो सके, गणना में एक जाति के अधिक से अधिक व्यक्ति आ जायँ। ऐसी अवस्था में गणना से वर्णन में सहायता मिलेगी। घटनाओं के विश्लेषण द्वारा उनकी व्याख्या करने में भी सुलभता होगी। नई कल्पनाएँ खड़ी की जा सकेंगी और गणना करके औसत के आधार पर सम्भावनाएँ निश्चित करके इस ज्ञान का क्रिया में भी प्रयोग कर सकेंगे। जो लोग अकाल, बीमारी वगैरह के लौटने का ठीक ठीक औसत लगा लेते हैं, वे आगे के लिये सचेत हो जाते हैं। सरकार जो मर्दुमशुमारी कराती है, उसका अभिप्राय केवल मनुष्य संख्या की घटती बढ़ती जान लेना ही नहीं है, वरन् उससे अनुमान के लिये बहुत सी बातें मिल जाती हैं और शासन एवं जनता का सुख सम्पादन करने में बड़ी सहायता मिलती है।

पाँचवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

गणनात्मक आगमन

(१) आगमन में गणना का स्थान बतलाइए।

(२) उदाहरणों की गणना या निरीक्षण से किन किन अवस्थाओं में यथार्थ निगमन प्राप्त हो सकते हैं ?

(३) गणनों सम्बन्धी नकशों का उपयोग बतलाइए।

(४) गणनात्मक नकशे कार्य्य कारण सम्बन्ध निश्चित करने अथवा निश्चित किए हुए सम्बन्ध को अनिश्चित सिद्ध करने में कहाँ तक सहायक होते हैं ?

(५) बीमा कम्पनियाँ किस सिद्धान्त पर चलती हैं ? क्या वह जूए का एक रूप है ? यदि नहीं है, तो भिन्नता किस बात में है ?

छठा अध्याय

उपमान

(Anology)

जब दो पदार्थों में कोई विशेष समानता हो तो गौण पदार्थ की मुख्य पदार्थ से उपमा दी जाती है। न्याय शास्त्र में उपमान एक प्रकार का प्रमाण है*। जब दो पदार्थों में किसी विशेष बात की समानता देखते हैं, तब उनमें और बातों की भी समानता का अनुमान करते हैं। इस प्रकार का अनुमान कल्पनाएँ बनाने में बड़ा सहायक है और इसके आधार पर बहुत सी बातों की व्यवस्था की जाती है। जब हमको किसी घटना की व्याख्या नहीं मिलती, तब हम उस घटना की और घटनाओं के साथ सादृश्य के आधार पर व्याख्या करना शुरू कर देते हैं। डारविन ने जानवरों में वैविध्य की व्याख्या पालतू जानवरों के वैविध्य के सादृश्य ही पर की थी। उसने सोचा था कि जब मनुष्य ने जातियों का मिलान करके इतनी नई

---

* सांख्यवाले इसको अनुमान के अन्तर्गत मानते हैं। न्याय शास्त्र में जिस उपमान का वर्णन किया है, वह इस उपमान से भिन्न है। यह उपमान तो एक प्रकार का अनुमान ही है। किन्तु न्याय शास्त्र का उपमान एक प्रत्यक्ष का सहायक है। उसमें इतनी बात अधिक होती है कि ज्ञात वस्तु के आधार पर अज्ञात का अनुमान हो जाता है।

जातियाँ पैदा कर लीं, तो प्रकृति में भी इसी प्रकार वैविध्य हो गया होगा।

उपमान का आधार

उपमान का आधार सादृश्य पर हो। जब दो घटनाओं या दो सम्बन्धों में कुछ बातों का सादृश्य होता है, तब यह अनुमान किया जाता है कि इन घटनाओं वा सम्बन्धों का अनुमान सम्भावना ही बतला सकती है। बहुत से अनारी लोग जो हिकमत करते हैं, उपमान के ही आधार पर दवा देने लग जाते हैं। यदि एक आदमी के बुखार को किसी औषध से लाभ हुआ, तो दूसरे बुखारवाले आदमी को भी वही दवा दे देते हैं; और इस बात का विचार नहीं करते कि दोनों आदमियों को बुखार एक ही कारण से आया है अथवा अलग अलग कारणों से आया है।

उपमा का सांकेतिक रूप इस प्रकार है—

अ क गुणवाला है।
ब क गुणवाला है।
अतः ब अ गुणवाला है।

साधारणतया यह अनुमान दूषित है। इसमें मध्य पद अव्याप्त है। किन्तु जितना अ और क तथा ब और क का संबंध घनिष्ट साबित होता है, उतना ही अ और ब के गुणों में सादृश्य होता है। मध्य पद की व्याप्ति एक आकारिक दोष है। यदि कोई गुण अ के लिये और 'अ' व 'क' के लिये इतना आवश्यक हो ही अ बिना क के न पाया जाय और 'क' बिना अ के न मिले,

तो मध्य पद की अव्याप्ति का दोष न रहेगा। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि पृथ्वी की सी सृष्टि किसी और ग्रह में है या नहीं लोग उपमान ही से काम लेते हैं। मंगल और पृथ्वी का अनेक बातों में सादृश्य है। वह भी सूर्य से प्रायः इतनी ही दूरी पर है, जितनी दूरी पर पृथ्वी सूर्य्य से। जिस २३½ दर्जे के झुकाव से पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है, उसी प्रकार मंगल भी घूमता है। मंगल में पृथ्वी की भाँति जल आदि भी देखे गए हैं। हमारे यहाँ शायद इसी सादृश्य के कारण मंगल को भौम अर्थात् पृथ्वी का पुत्र कहा है। जब इतनी बातों का मंगल और पृथ्वी में सादृश्य है, तो सम्भव है कि इस बात में भी सादृश्य हो कि उसमें भी पृथ्वी की भाँति मनुष्य बसते हों।

अब प्रश्न यह है कि क्या सब सादृश्यों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है? नहीं। सादृश्य हम को मुख्य बातों में देखना पड़ेगा; और यह मुख्य बातें भी ऐसी हों जिनसे अनुमान किए हुए गुण का कुछ सम्बन्ध हो। उदाहरण लीजिए। यदि दो मनुष्यों का एक ही आकार एक ही लम्बाई हो, एक ही से कपड़े पहनते हों, एक ही गाँव के रहनेवाले हों और एक ही दफ़्तर में काम करते हों, तो यदि उनमें से एक बड़ा भावुक हो तो यह अनुमान नहीं कर सकते कि दूसरा भी भावुक होगा; क्योंकि आकार और भावुकता का कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आकार भी भिन्न हो, ऊँचाई भी एक सी न हो, एक पूर्व से आया हो और एक पश्चिम से, किन्तु उनमें

एक गुण का सादृश्य हो कि यदि वह दोनों कविता करते हों, तो इसकी कुछ सम्भावना हो सकती है कि यदि एक भावुक हो तो दूसरा भी उसी प्रकार का होगा। कविता और भावुकता का कुछ सम्बन्ध है। प्रायः कवि लोग भावुक होते हैं। जिस समय ऐसा मुख्य गुण खोज लिया जाय, तो अ और क की व्याप्ति में बहुत अंतर न रहेगा; और फिर उसमें मध्य पद की अव्याप्ति का दोष न रहेगा। बड़े आदमियों की योग्यता और स्फूर्ति इसी बात में है कि वह एक साथ मुख्य गुण देख लेते हैं। मुख्य गुण वही है जो अनुमेय के सम्बन्ध में मुख्यता रखता हो। साधारण लोग बाहरी बातों के सादृश्य पर अनुमान कर लेते हैं और इसी कारण वे भूल कर जाते हैं। गुणों की संख्या से सादृश्य नहीं होता। यदि सौ गौण बातों में सादृश्य हो और एक मुख्य बात में भेद हो, तो अनुमान ठीक न बैठेगा। पर यदि सौ गौण बातों में भेद हो और एक मुख्य बात में समानता हो तो अनुमान ठीक होगा। वैसे तो समानता विपरीत बातों में भी किसी न किसी अंश में होती है। कुनेन और शकर को लीजिए। दोनों ही सफेद हैं और दोनो ही चूर्ण हैं; किन्तु एक मीठी है और दूसरी कड़वी। यदि इन दो गुणों की समानता पर एक के मीठेपन से दूसरे का मीठापन और एक के कड़वेपन से दूसरे का कड़वापन अनुमान किया जाय तो, यह अनुमान ठीक न होगा। कमल और जोंक दोनों ही पानी में उत्पन्न होते हैं; किन्तु इन गुण

की समानता से उनके गुण समान न हो जायँगे। महात्मा तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—

उपजहिं एक संग जल माही।
जलज जोंक जिमि गुण बिलगाही॥

सार यही है कि मुख्य गुणों में समानता देखनी चाहिए। मुख्य गुण प्रायः वही होते हैं जो जाति भर में पाए जायँ। यदि किसी गुण की समानता के आधार पर किसी दूसरे गुण की समानता का अनुमान किया जाय, तो उन दोनों का जितना घनिष्ठ सम्बन्ध होगा, उतने ही अंश में अनुमान ठीक होने की सम्भावना होगी।

छठे अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

उपमान

(१) उपमान किसको कहते हैं? आगमन में उसकी उपयोगिता बतलाइए।

(२) न्याय के उपमान और आगमनात्मक तर्क के उपमान में अन्तर बतलाइए।

(३) उपमान का न्याय लैंगिक अनुमान के कौन से आकार और योग में रक्खा जा सकता है? वह अनुमान आकस्मिक तर्क से ठीक बैठता है या नहीं? यदि नहीं तो उसमें कौन सा तर्काभास है?

(४) उपमान को अपूर्ण व्याख्या क्यों कहते हैं?

(५) उपमान की उत्तमता किस प्रकार निश्चित की जाती है?

(६) सादृश्य से क्या अर्थ है और गौण बातों की अपेक्षा मुख्य बातों में सादृश्य क्यों देखना चाहिए?

(७) निम्नोल्लिखित युक्तियों का तार्किक मूल्य बतलाइए।

(क) इङ्गलिस्तान टापू है और उसकी बड़ी उन्नति हो रही है; इसलिये लङ्का की भी उन्नति होनी चाहिए क्योंकि वह भी टापू है।

(ख) यह मनुष्य अच्छा धनुषधारी होगा, क्योंकि अर्जुन की भाँति यह भी सव्यसाची अर्थात् बाएँ हाथ से काम करनेवाला है।

(ग) एक बार यूनान में पेट्रीशियन और प्लीवियन लोगों में झगड़ा हुआ। पेट्रीशियन ऊँची जाति के लोग थे और प्लीवियन नीची जाति के लोग थे। प्लीवियन लोग पेटीशियन लोगों को छोड़ कर गाँव के बाहर चले आए और कहने लगे कि कुछ हम ही लोग काम करने के लिये नहीं हैं। तब एक वृद्ध पेट्रीशियन ने उनको समझाया कि एक बार शरीर के सब अवयव काम करते हैं; पेट काम नहीं करता इसलिये सबने काम करना छोड दिया। उसका फल यह हुआ कि सब अवयव सूखने लग गए। फिर उन सब अवयवों ने अपना काम शुरू कर दिया।

(घ) पूर्व काल के सब साम्राज्यों का थोड़े वहुत काल के पश्चात् वहुत पतन हो गया था, इसलिये वर्तमान काल में भी कोई साम्राज्य स्थित नहीं रह सकता।

(ङ) व्यायाम बिना कोई पिण्ड (Body), चाहे वह प्राकृतिक हो चाहे राजनीतिक, स्वस्थ नहीं रह सकता। राज्य के लिये युद्ध व्यायाम स्वरूप है। घरू लड़ाई (Civil war) ज्वर जन्य ताप की भाँति है, किन्तु विदेशों से युद्ध करना स्वास्थ्य-जनक व्यायाम है। (बेकन)

(च) प्रजातंत्र के विरुद्ध कारलाइल ने लिखा है कि राज्य एक जहाज की भाँति है। कप्तान राजा का काम करता है। यदि जहाज का कप्तान हर समय जहाज के बैठनेवालों की सलाह से काम करे,

तो एक दिन भी काम न कर सकेगा, क्योंकि कोई यात्री तो कुछ सलाह देगा और कोई कुछ। इसी प्रकार यदि राजा प्रजा की सलाह से काम करे तो वह एक दिन भी अपना काम न चला सकेगा, क्योंकि लोग उसे अपनी अपनी मति के अनुसार सैकड़ों परस्पर विरोधी परामर्श देंगे।

(८) सादृश्य की बातों की संख्या नहीं करनी चाहिए, वरन् उनको तौलना चाहिए। इसकी व्याख्या कीजिए।

सातवाँ अध्याय

कारणवाद

(Causation)

इस संसार को परिवर्तनशील कहा है। इसमें क्षण प्रति क्षण परिवर्तन होते रहते हैं। जो कल था सो आज नहीं; और जो आज है सो कल न होगा। काल को चक्र कहा है। वह सदा चलता ही रहता है। नदी के प्रवाह की भाँति संसार का भी प्रवाह है। यह सब ठीक है; किन्तु इसमें प्रश्न यह उठता है कि परिवर्तन किस का होता है। स्थायी ही बदलता रहता है (The Permanent alone changes)। अचल ही चलता है। संसार माला के बिखरे हुए दानों की भाँति नहीं है। संसार में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनमें पूर्वापर का सम्बन्ध है। वह नियम और व्यवस्था से खाली नहीं। एक परिवर्तन हम को दूसरे परिवर्तन तक पहुँचा देता है। यदि चलन का आधार अचल में न होता तो परिवर्तन को परिवर्त्तन ही न कह सकते। बिना एकता के परिवर्तन नहीं हो सकता, और परिवर्तन में एकता का विरोध होता है; किन्तु निरी एकता कोई अर्थ नहीं रखती। निरी एकता स्थिरता का रूपान्तर है और स्थिरता मृत्यु है। निरा परिवर्तन भी कोई अर्थ नहीं रखता।

कारण का अर्थ

सम्बन्ध रहित परिवर्तन संसार को व्यवस्था-शून्य बना देता है। परिवर्तन के साथ ही प्रश्न होता है—परिवर्तन किसके? अचल के! 'चल में अचल' यह भेद में अभेद का ही रूपान्तर है। भेद में अभेद का नियम सर्वत्र व्यापक है। चल में अचल क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देने में हम तर्कशास्त्र से हट कर तत्व ज्ञान के क्षेत्र में आ जायँगे। तर्कशास्त्र के लिये हम को परिवर्तनशील व्यावहारिक संसार से ही काम है। हमको इस समय तत्व ज्ञान की भूलभुलइयाँ में पड़ने की अवश्यकता नहीं। व्यावहारिक संसार चाहे वास्तविक रूप से सच्चा हो और चाहे झूठा, जब तक हम इस संसार में हैं, तब तक हमको इस संसार के परिवर्तनों से ही काम है। उनके नियमों का ध्यानपूर्वक निरीक्षिण करके हम इस संसार में काम चला सकते हैं। जैसे जैसे संसार से हमारा व्यवहार बढ़ता जाता है, वैसे वैसे हमको परिवर्तनों पर ध्यान देना आवश्यक होता जाता है। जो बातें आज कल देखी जाती हैं, वह पहले नहीं देखी जाती थीं। किन्तु यदि वह बातें फिर हों तो उन्ही नियमों के अनुसार होंगी। इन परिवर्तनों की नियमितता का वर्णन प्रकृति की एकता वा एकाकारता की व्याख्या करते हुए किया गया है। कारणवाद भी प्रकृति की एकाकारता का ही रूपान्तर है। जो कारण किसी विशेष कार्य्य के उत्पादन में कभी समर्थ होता है और कभी नहीं, वह कारण नहीं हो सकता। प्राकृतिक एकाकारता परिवर्तनों का सम्बन्ध आनपूर्वी संयोग मात्र

नहीं है, उनमें एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है। एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन के बिना नहीं हो सकता और एक परिवर्त्तन दूसरे परिवर्तन की व्याख्या है। कार्य्य कारण की खोज करने से प्रत्येक घटना को संसार की व्यवस्था में उचित स्थान मिल जाता है। एक घटना को दूसरी घटना के साथ सम्बद्ध करके प्रत्येक घटना को संसार के नियम और व्यवस्था में उचित स्थान देना और इस प्रकार संसार में व्यवस्था को देखना कारणवाद का मुख्य उद्देश्य है।

कारण शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है। 'कारण कवन नाथ मोहि मारा' इसमें कारण शब्द का जो अर्थ है, वह अर्थ इस वाक्य में कि "दूध दही का कारण है" नहीं है। पिता पुत्र का कारण है। रेल न मिलना आज सवेरे न उठने का कारण है। मच्छर बुखार का कारण है। गोली लगना मृत्यु का कारण है, इत्यादि। इन सब वाक्यों में कारण का अर्थ एक दूसरे से भिन्न है। किन्तु एक बात सब कारणों में पाई जाती है। एक घटना वा परिवर्तन की दूसरी घटना वा परिवर्तन पर निर्भरता है। अब आगे यह विचार करना है कि, कौन घटना वा परिवर्तन किस घटना वा परिवर्तन पर निर्भर है। तात्विक दृष्टि से संसार में कोई ऐसी घटना नहीं जो और दूसरी घटनाओं पर निर्भर न हो। सारा संसार छोटी से छोटी घटना का कारण बन जाता है। यदि मैं इस समय इस पुस्तक के लिखे जाने के कारणों की खोज करूँ, तो

कारणों को लिखते लिखते एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जायगा। इस पुस्तक के कारणों में पहले पहल महर्षि गौतम और अरस्तू आवेंगे और उनके साथ सारे यूनान और भारतवर्ष का इतिहास आ जायगा। यूनान और भारतवर्ष का ही इतिहास नहीं, वरन् सारे संसार का इतिहास का ज्ञान हमको इन दो महान् पुरुषों को व्यक्तिता के समझने के लिये आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति संसार की सारी घटनाओं से सम्बन्ध रखता है। यदि आर्य जाति का ऐसा मानसिक विकास न होता तो गौतम, कपिल न होते। फिर लीजिए। भारतवर्ष में यूरोपीय तर्क के सिद्धान्त, जिनका समावेश इस ग्रन्थ में हुआ है, अँगरेज़ों द्वारा आए। इसलिये विलायत और भारतवर्ष के इतिहास की सारी घटनाएँ आ जायँगी। यदि कहा जाय कि इस ग्रन्थ के कारणों में से इङ्गलिस्तान के बादशाह एल्फ्रेड और लार्ड मेकाले भी हैं जिन्होंने भारतवर्ष में अंगरेजी शिक्षा की नियमित रूप से व्यवस्था का सूत्रपात किया है, तो कोई विश्वास न करेगा। किन्तु यह बात ठीक है। यदि एल्फ्रेड बादशाह न होता तो सम्भव है कि विलायती इतिहास और ही प्रकार का होता; और यदि मेकाले या और किसी महानुभाव द्वारा भारत में अँग्रेजी शिक्षा का प्रचार न होता, तो यूरोपीय तर्क शास्त्र से वर्तमान लेखक का विशेष परिचय न होता। और देखिए। पुस्तक के कारणों में से कागज, प्रेस इत्यादि सब वस्तुएँ भी हैं। कागज और छापेखाने के साथ संसार के सभी पदार्थों का सम्बन्ध है। कागज के सम्बन्ध

में खेती, बारी, रसायन विद्या सभी आ जायँगी। लिखनेवाले और पढनेवाले सभी इस पुस्तक के लिखे जाने के कारण है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का साहित्य प्रेम, लेखक का विषय-प्रेम, धन, और यश की आकांक्षा, हिन्दी-प्रेमी मित्रों का लेखक के ऊपर प्रभाव, जल, तेज, वायु आदि जिनके कारण लेखक जीवित है, सभी पुस्तक के कारणों में स्थान पावेंगे, और इन सब बातों पर विचार करते हुए सारा विश्वात्मा परमात्मा एक लेखनी चलने का कारण बन जाता है। यह तात्विक दृष्टि है। यह ठीक है कि किसी घटना का तात्विक कारण सारा चराचर संसार है; किन्तु यदि हम सारे संसार को कारण मानें तो अन्धेर नगरी के बेवूफ़ राजा की भाँति, जिसने दीवार गिरने का कारण भिश्ती और मशक बनानेवाले और कोतवाल सभी को मान लिया था, तत्ववेत्ताओं को छोड़ कर सारे संसार में हास्यास्पद बनेंगे। हास्यास्पद बनने में इतनी विशेष हानि नहीं, किन्तु संसार का काम भी न चलेगा। तात्विक दृष्टि के आधार पर जो बात वास्तविक रूप से ठीक है, वह व्यवहार मे ठीक नही पड़ती। हमको काम चलाने के लिये नितान्त आवश्यक कारणों की खोज करनी पड़ती है। नितान्त आवश्यक कारण भी एक नहीं; इसी लिये आकाश वायु आदि, जो हर एक समय वर्तमान रहते है, साधारण कारण माने गए है। हमको असाधारण वा विशेष कारणों ही से काम पड़ता है। नितान्त आवश्यक वा साधारण कारणों के निर्णय में भी दृष्टि-भेद

पड़ जाता है। जिसको साधारण मनुष्य नितान्त आवश्यक समझता है, उसको वैज्ञानिक अनावश्यक समझता है; और जिसको वैज्ञानिक आवश्यक समझता है, वह साधारण मनुष्य के लिये कुछ अर्थ नहीं रखता। साधारण लोग ऊपरी बातों पर ख़याल करते हैं। वैज्ञानिक लोग ऊपरी दृष्टि से काम नहीं लेते। साधारण लोग सहायक कारणों को मुख्य कारण मान लेते हैं। वैज्ञानिक लोग सहायक और मुख्य कारणों में भेद करते हैं। साधारण लोग गर्मी सर्दी को ही बुखार का मुख्य कारण मानते हैं और डाकृर लोग मच्छरों को। आवश्यकतों में भेद होते हुए भी हमको आवश्यकता असाधारणता, वा निर्भरता का कोई परिमाण (Standard) मानना पड़ेगा। कौन घटना किसके ऊपर निर्भर है, कौन घटना किस के लिये आवश्यक है, इन बातों के उत्तर पर ही कारण की परिभाषा बनाई जा सकती है। वह घटना दूसरी घटना के लिये आवश्यक नहीं समझी जा सकती, जिसके होते हुए भी (यदि कोई बाधक कारण उपस्थित न हो) और जिसके अभाव में भी दूसरी बात का भाव हो। कारण उन स्थितियों वा घटनाओं के समूह को कहते हैं जो किसी दूसरी घटना के उत्पन्न होने में आवश्यक हैं; अर्थात् जिनके बिना हुए दूसरी घटना का भाव न हो सके। और जितनी बातें किसी घटना के उत्पादन में आवश्यक हैं, उन सब को मिला कर कारण से किसी एक विशेष बात को स्थिति (Condition) कहते हैं। स्थितियाँ

भावात्मक और अभावात्मक दोनों ही प्रकार की होती हैं। सफरी दियासलाई के जलने में बक्स पर मसाला होना भावात्मक स्थिति है, नमी का न होना अभावात्मक स्थिति है। ग्रन्थों में कारण की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है—

अन्यथा सिद्धिशून्यस्य नियतां पूर्ववर्तिता।
कारणत्वं भवेत्तस्यं त्रैविध्यं परिकीर्तितम्॥

जो अन्यथा सिद्ध न हो, जो नियत रूप से पूर्ववर्ती हो, वही कारण है। कारण के लिये दो बातें मुख्य मानी गई हैं। अन्यथा सिद्धि-शून्यता अर्थात्; बिना उसके रहे काम हो जाने का अभाव। दूसरी बात नियत पूर्व-वर्त्तिता है। अर्थात् कारण कार्य से नियत रूप से पहले आवेगा। यह दोनों बातें ही निर्णायक हैं कि कौन सी घटना किसके लिये आवश्यक है। यूरोप के तार्किकों ने कारण की जो परिभाषाएँ की हैं, वह भी नैयायिकों की परिभाषा से मिलती जुलती हैं। नैयायिकों ने अन्यथा सिद्ध शून्यता का विचार और बढ़ा दिया है। इस विचार को बढ़ा देने से नियतता और पूर्ववर्तिता की सीमा सी बँध जाती है। नियतता और पूर्ववर्तिता यद्यपि देखने में साधारण विचार हैं, तथापि इनमें विवेचना के लिये बहुत स्थान है। आज कल के दार्शनिकों ने नियतता और पूर्ववर्तिता के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं, वह आगे दिए जायँगे; किन्तु इससे पूर्व अन्यथा सिद्धिशून्यता की व्याख्या कर देना आवश्यक है।

न्याय के मत से कारण का लक्षण

अन्यथा अन्य प्रकारेण सिद्धं, अन्यथा सिद्ध। जो अन्य प्रकार से सिद्ध हो अर्थात् जिस पदार्थ के रहने पर भी कार्य की दूसरे प्रकार से सिद्धि हो जाय। संक्षेप से जो कार्य की उत्पत्ति के लिये स्वतन्त्र रूप से आवश्यक न हो। अन्यथा सिद्ध पाँच प्रकार के माने गये है।

अन्यथा-सिद्ध की व्याख्या

(१) पहले प्रकार के अन्यथा सिद्ध को इस प्रकार व्याख्या की गई है—

"यत्कार्यं प्रति कारणस्य पूर्ववर्तिता येन रूपेण गृह्यते तत्कार्यं प्रति तद्रूपमन्यथा सिद्धमिति भावः। यथा घटं प्रति दण्ड-त्वमिति"। जिस कार्य्य के प्रति कारण की जिस रूप से पूर्व-वर्तिता मानी जाती है, उस कार्य्य के प्रति वह रूप अन्यथा-सिद्ध होता है। घट रूपी कार्य्य के प्रति दण्डत्व रूप से दण्ड की कारणता मानी जाती है। इसमें घट के प्रति दण्डत्व अन्यथा-सिद्ध माना जायगा। साधारण भाषा में अन्यथा सिद्ध का अर्थ 'अनावश्यक' है। घट के प्रति दण्ड तो कारण है, दण्डत्व कारण नही; क्योंकि दण्डत्व घट का उत्पादन नहीं कर सकता। हाँ दण्ड न हो तो घट नही बन सकता।

(२) दूसरे प्रकार के अन्यथा-सिद्ध की इस प्रकार व्याख्या की गई है—

"यस्य स्वातन्त्र्येणान्वयव्यतिरेकौ न स्तः कारणमादायैवा-न्वयव्यतिरेकौगृह्यते तदन्यथासिद्धम्। यथा दण्डरूपं।

अर्थात् जिसका स्वतन्त्र रूप से कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक नहीं हो सकता, किन्तु कारण के साथ लग कर अन्वय व्यतिरेक हो, वह अन्यथा सिद्ध होगा। घट के साथ दण्ड का अन्वय व्यतिरेक है; किन्तु घट के रूप श्वेत पीतादि से घट का अन्वय व्यतिरेक नहीं, क्योंकि बहुत से श्वेत पीत पदार्थ हैं जिनका घट से कोई सम्बन्ध नहीं है। दण्ड अपने अधिकार से अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध रखता है। दण्ड का रूप दण्ड के साथ रह कर यह सम्बन्ध रखता है; अतः दण्ड का रूप अन्यथा-सिद्ध समझा जायगा। इससे यह प्रकट होता है कि स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध होना ही कारणता का मुख्य निर्णायक है।

(३) "अन्यं प्रति पूर्ववर्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रतिपूर्ववर्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धत्वम्। यथा घटत्वादिकं प्रत्याकाशस्य।" जिसकी किसी कार्यान्तर के प्रति और किसी काल में पूर्ववर्तिता ग्रहण हो चुकी हो और फिर उसकी दूसरे कार्य के साथ पूर्ववर्त्तिता लगावे तो वह उस दूसरे कार्य्य के प्रति अन्यथा सिद्ध समझा जायगा। जैसे शब्द के प्रति आकाश की पूर्ववर्तिता सिद्ध हो चुकी है, फिर उसकी घट के प्रति पूर्ववर्तिता मानें तो आकाश घट के लिये अन्यथा सिद्ध समझा जायगा। आकाश आदि को वैसे भी साधारण कारण माना है; ये सभी में वर्तमान रहते हैं। शब्द और आकाश का विशेष सम्बन्ध है।

(४) चौथे अन्यथा सिद्ध की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"यत कार्यजनकं प्रति पूर्ववर्तित्वंगृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रति· पूर्ववर्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्यं प्रति अन्यथा सिद्धत्वम् । यथा कुलालपितुर्घटंप्रति"। जिसकी कार्य के जनक के प्रति पूर्व-वर्तिता ग्रण हो चुकी है, उसकी उस कार्य के प्रति पूर्ववर्तिता ग्रहण की जाय तो वह अन्यथा सिद्ध होगा। जैसे घड़े का जनक कुलाल है। उसके प्रति उसके पिता को पूर्ववर्तिना है। इस प्रकार से कुलाल के पिता की घट के प्रति पूर्ववर्तिता है, किन्तु यह अन्य था सिद्ध है। घट के लिये कुलाल आवश्यक नहीं। (ऊपर बताई हुई तात्विक दृष्टि से चाहे हो; किन्तु इस दृष्टि से सभी चीजें सब का कारण वन जाती हैं।) कुलाल का पिता कुलाल मात्र होने के हेतु घट का कारण माना जाता है; किन्तु कुलाल का पिता कुलाल पित्रत्वेन घट का कारण नही है। अँग-रेजो तर्क के हिसाब से दूर के कारण को कारण मानना भूल समझा जाता है।

(५) "नियतावश्यकपूर्वभाविनोऽवश्यक्लृप्तनियमितपूर्ववर्तिन एव कार्यसम्भवे तद्भिन्नमन्यथासिद्धमित्यर्थः। अतएव महत्त्वम-वश्यं क्लृप्तं तेनानेकद्रव्यमन्यथासिद्धम् ।" नियत रूप से आवश्यक कारण समुदाय से कार्य का सम्भव होता है। उससे भिन्न जितने पदार्थ हैं, वह सब अन्यथा-सिद्ध समझे जाते हैं। इस पाँचवें को मुख्य माना है; क्योंकि इसका लक्षण और सब प्रकार के अन्यथा-सिद्धों में घटता जाता है। घड़े के प्रति दण्ड आव-श्यक रूप से वर्तमान रहता है। रासभ का होना या मेढ़क का

बोलना यह सब अन्यथा-सिद्ध है। ऊपर के चार अन्यथा-सिद्ध उदाहरण रूप हैं। पाँचवें में उनका व्यापक लक्षण दिया गया है।

अन्यथा सिद्ध शून्यता कारण के लक्षण में अभावात्मक भाग है। अब नियतता और पूर्ववर्तिता की विवेचना करना आवश्यक है। नियत का अर्थ है नियम से अर्थात् हमेशा रहनेवाला। यदि कारण नियत न हो तो संसार का कार्य न चले। यदि जल से एक बार प्यास बुझे और दूसरी बार मुँह जले तो इस संसार में रहना कठिन हो जाय। प्रकृति में नियतता को ही मान कर सब लोग काम करते हैं। कारण की नियतता भी प्रकृति की एकाकारता से सम्बद्ध है। मकान बनाने से पूर्व हम को यह विश्वास रहता है कि ईंट और पत्थर धूप में मोम की भाँति पिघल न जायँगे। नियतता का, एक और भी फल है। वह यह कि एक कार्य का एक ही कारण हो सकता है। इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध तार्किक मिल साहब ने बहु कारणवाद माना है। अर्थात् उनके मत से एक कार्य के कई कारण हो सकते हैं। उदाहरणार्थ प्लेग, इंफ्ल्यूएंजा, पानी मे डूबकर मरना, लड़ाई में गोली से मरना, विष खाकर मरना, आदि कई कारणों से मृत्यु हो सकती है। साधारण दृष्टि से यह बात ठीक सी मालूम होती है, किन्तु विचार करने पर यह भ्रमयुक्त सिद्ध होगी। यह माना कि ऊपर के बताए हुए कारणों का फल मृत्यु है, किन्तु सब मृत्यु एक सी नहीं। यदि ऐसा होता तो डाक्टरों की मृत्यु

नियतता और पूर्ववर्तिता

के पश्चात् की परीक्षा (Post Mortum Examination) वृथा होती। डाक्टर लोग जव लाश को देख कर यह बता देते हैं कि अमुक मनुष्य जहर खाकर मरा अथवा डूबकर मरा अथवा गोली से मारा गया, तो हम सब मृत शरीरों को एक सा नहीं कह सकते। यह हमारा अज्ञान है कि हम कार्यों में भेद नहीं करते। किन्तु, यदि हम कार्यों में भी भेद करें, तो एक कार्य का एक से अधिक कारण नही हो सकता। विष खाने से मौत का कारण विष खाना ही हो सकता है, गोली लगना नही। जव तक कार्य का यथार्थ रूप से विश्लेषण न हो, तव तक हम एक कार्य के बहुत से कारण मान सकते है। किन्तु वास्तव में बहु-कारणवाद मानना ठीक नहीं। विश्लेषण के न होते हुए कार्य से कारण पर जाना ठीकनहीं। किन्तु जहाँ पर कार्य और कारण का सम्बन्ध निश्चित है, वहाँ पर कार्य से कारण पर जा सकते हैं। न्याय ग्रन्थों में इसमें के अनुमान शेषवत नाम से माने हैं। वृष्टि को देखकर मेघ का अनुमान करना अयथार्थ न होगा। इस प्रकार के अनुमान में बहु-कारणवाद के आधार पर बाधा उठाई गई है। "रोधोपघात साद्दश्येभ्यो व्यभिचारादनुमानम प्रमाणम्"। नदी में बाढ़ वर्षा के कारण भी आ सकती है और बाँध बँधने के भी कारण भी। इसलिये नदी की बाढ़ से वृष्टि का अनुमान करना उचित नहीं। यह रोध का उदाहरण है। चीटियाँ वर्षा के आगमन पर भी अण्डे बच्चे लेकर बाहर जाती हैं और वैसे भी अपना बिल छोड़कर बाहर जाती हैं।

इसलिये चींटियों को देखकर भी वर्षा का अनुमान करना ठीक नहीं। यह उपघात का उदाहरण है। मोर के शब्द से बादल का अनुमान होता है; लेकिन मनुष्य भी मोर का सा शब्द कर सकता है। यह सादृश्य का उदाहरण है। इस शंका का समाधान करते हुए बहु कारणवाद की असारता प्रकट कर दी गई है। वात्सायन भाष्य में इस प्रकार लिखा हुआ है—

"नायमनुमान व्यभिचारः अननुमाने तु खल्वयमनुमानाभिमानः। कथं नाविशिष्टो लिंगं भवितुमर्हति। पूर्वोदेकविशिष्टम् खलु वर्षोदकं शीघ्रतरत्वं स्रोतसो बहुतरफेनफलपर्णकाष्ठादि वहनं चोपलभमानं पूर्णत्वे नद्या उपरि वृष्टो देव इत्यनुमिनोति नोदक वृद्धिमात्रेण। पिपीलिका प्रायस्याण्डसंचारे भविष्यति वृष्टिरित्यनुमीयते न कासांचिदिति। नेदं मयूरवाशितं तत्सदृशोऽयं शब्द इति विशेषा परिज्ञानान्मिथ्यानुमानमिति। यस्तु विशिष्टाच्छब्दाद्विशिष्ट मयूरवाशितं गृह्णाति तस्य विशिष्टोर्थो गृह्यमाणो लिंगं यथा सर्पादीवामिति। सोयमनुमातुरपराधो नानुमानस्य योऽर्थ विशेषेणानुमेयमर्थमविशिष्टार्थ दर्शनेन बुभुत्सत इति।"

भावार्थ—उक्त अनुमान का व्यभिचार नही है। एक देश, त्रास और तुल्यता से भिन्न पदार्थ के होने से, क्योंकि विशेषण के साथ हेतु होता है। बिना विशेषण के हेतु नहीं हो सकता। पूर्व जल सहित वर्षा का जल, सोते का बड़े वेग से बहना, बहुत सा फेन, फल, पत्ता, काठ आदि के देखने से ऊपर

हुई वर्षा का अनुमान होता है। बहुधा चींटियों के अण्डा लेकर निकलने से होनेवाली वर्षा का अनुमान किया जाता है, न कि कुछ चीटियों के झुण्ड देखने से। इसी प्रकार जब मोर के शब्द का निश्चय रहता है और यह पक्का ज्ञान होता है कि यह शब्द मनुष्य ने नहीं किया, तभी यथार्थ अनुमान होता है। जो भली भाँति विचार किए बिना झटपट साधारण हेतु से ही अनुमान कर बैठता है, प्रायः उसी का अनुमान मिथ्या होता है। तो क्या यह अनुमान प्रमाण का दोष गिना जायगा? कदापि नहीं। किन्तु यह दोष अनुमान करनेवाले का ही माना जायगा।

नियतता के विषय में बहुत से लोगों ने यह शंका उपस्थित की है कि वास्तव में कार्य कारण का अविचल पूर्व पर संबंध के अतिरिक्त और भी कोई विशेष संबंध है या नहीं, अर्थात् कार्य कारण का सम्बन्ध केवल हमारे मन के प्रत्यक्षों (Perceptions) की आनुपूर्वी का फल है अथवा यह संबंध वस्तुगत है। आग से हाथ जलता है। इस विषय में ह्यूम का कहना है कि नियत रूप से अग्नि के प्रत्यय के पश्चात् जलने का प्रत्यय अनन्तकाल से आता रहता है। अग्नि और जलन मे कोई वस्तु-गत संबंध नहीं। ह्यूम के मतानुसार हेतु (Reason) से फल का अनुमान हो सकता है, किन्तु कारण से कार्य्य का नहीं। "From a reason you can infer the consequence, from a cause you cannot infer the effect" हेतु

या सबब (Reason) और फल (Consequent) यह विचार का संबंध है; कारण (Cause) और कार्य (Effect) यह वस्तुओं के सम्बन्ध हैं। विचार का संबंध आनुपूर्वी की प्रतीक्षा के आधार पर है; किन्तु कार्य्य कारण संबंध वस्तुओं के गुण पर निर्भर है। वस्तु में कोई कार्योत्पादन शक्ति नहीं है। उनके मत से तो यह बात कोई असंभव नहीं कि बरफ़ से जलन पैदा हो और अग्नि से शीतलता; किन्तु बरफ़ और शीतलता तथा अग्नि और जलन एक दूसरे के पीछे नियमित रूप से आते रहे हैं; और तब अग्नि को देखते हुए यह आशा होती है कि जलन पदा होगी; और बरफ़ के देखने से शीतलता की आशा होने लगती है। इसी आशा और प्रतीक्षा को वह कार्य्य कारण संबंध में मुख्य मानते हैं। यदि किसी काल में हम घड़ी देखने के पूर्व मेज पर हाथ रक्खें, तो फिर दुबारा मेज पर हाथ रखने पर हमको यह प्रतीक्षा न होगी कि घड़ी को देखेंगे। किन्तु यदि हम घड़ी की सूइयों को हाथ से घुमावें और यदि हमने पूर्व में ऐसा देखा हो कि घड़ी की सूइयों के घुमाने से घड़ी बजती है और यदि चाभी वगैरह ठीक है, तो हम यह प्रतीक्षा करेंगे कि घड़ी बजेगी। यही अन्तर ह्यूम के मत से आकस्मिक और कार्य्य कारण संबंधी आनुपूर्वी में है। यदि ह्यूम साहब का कथन ठीक माना जाय, तो दिन रात का कारण हो सकता है और रात दिन का कारण हो सकती है। क्योंकि रात दिन से पहले आती है और दिन रात से पहले

ह्यूम साहब यदि केवल प्रत्ययों की आनुपूर्वी को ही कारण मानें, तो जिस समय प्रारंभिक काल में यह आनुपूर्वी बहुत बढ़ी हुई न थी तो क्या आग जलने का कारण न थी ? आनुपूर्वी और उससे उत्पन्न हुई प्रतीक्षा में दर्जे हो सकते हैं, किन्तु कारण में दर्जे नहीं। पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप उसकी गर्भान्तर घटनाओं का फल है, किन्तु प्रत्येक घटना निराली ही है। बहुत सी जगह एक घटना दूसरी घटना का कारण होती है किन्तु वह घटना पृथ्वी की गर्भान्तर घटनाओं की भाँति दुहराई नही जाती। इस दुहराए न जाने के कारण अथवा प्रत्ययों के आनुपूर्वी का पुनः पुनः दर्शन न होने के हेतु उन घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध का क्या अभाव रक्खा जायगा ? आनुपूर्वी-जन्य प्रतीक्षा में कभी कभी धोखा भी हो जाता है। जल में कोई जलती हुई वस्तु डाली जाय तो वह बुझ जाती है; किन्तु यदि पोटेशियम को जल में डालें, तो वह जलने लगता है। यदि ह्यूम साहब का पक्ष माना जाय, तो हमको कारण से कार्य के अनुमान का कोई आधार न रहेगा। हमारे मत से कारण के ज्ञान में ही कार्य का ज्ञान लगा हुआ है। कारण के साथ ही कार्य है; कार्य कारण का पूर्ण विकास है। कारण के ज्ञान को विस्तार देने से कार्य का ज्ञान प्राप्त होता है। यही हमारे अनुमान का आधार है। कार्य कारण सम्बन्ध केवल प्रत्ययों की आनुपूर्वी नही है, वरन् वास्तविक सम्बन्ध है। कार्य कारण सम्बन्ध दो ही दो वस्तुओं का सम्बन्ध नहीं; यह सारे

संसार को व्यवस्था की शृंखला में बाँधे हुए है। एक वस्तु स्वयं कार्य होती है और दूसरी का कारण होती है। इसी प्रकार संसारमें तारतम्य बँधा हुआ है। यह कार्य कारण सम्बन्ध ऊपर का लगाया नहीं। यदि ऐसा होता तो चाहे जिन वस्तुओं में जो चाहे वह सम्बन्ध लगा दिया जाता। वस्तु और सम्बन्ध पृथक् नही किए जा सकते। वस्तु जो वस्तु है, वह सम्बन्धों के साथ ही वस्तु है। यदि वह उन सम्बन्धों में न होती तो उसका रूप और ही कुछ होता।

निययता कार्य्य कारण सम्बन्ध की उत्पादन करनेवाली नहीं होती, वरन् वह इस बात की पहचान है कि सम्बन्ध आकस्मिक नही है और वह संसार की व्यवस्था में स्थान रखता है। प्रकृति की एकाकारता और कार्य कारण की नियतता का विशेष सम्बन्ध है। नियतता से बार बार की पुनरावृत्ति का इतना अभिप्राय नही है जितना कि संसार की व्यवस्था और नियम से है। वास्तविक पुनरावृत्ति तो किसी चीज़ की नहीं हो सकती। क्षण क्षण में भेद आ जाता है; किन्तु उस भेद के साथ अभेद लगा रहता है। कभी ऐसी भी घटनाएँ होती है जो अपनी तरह की एक ही होती है। वहाँ पर नियतता का अर्थ आवश्यक समझा जायगा। अर्थात् उस अवस्था मे वही स्थिति हो सकती थी, और कोई नहीं। भूगर्भ विद्या के हिसाब से पृथ्वी की जो वर्तमान अवस्था है, वह दुबारा न आवेगी। इसका अर्थ यह है कि जो अवस्था है, वह कार्य कारण शृंखला का

फल है; और उसके अतिरिक्त और कोई अवस्था नही हो सकती। नियतता आवश्यक होने की पहचान है; इससे उसका अर्थ आवश्यक ही मानना चाहिए।

पूर्ववर्तिता के विषय में लोगों ने बहुत वाद विवाद उठाया है। पूर्व के अर्थ में ही लोगों का मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि पूर्व और अपरत्व के मानने से अनवस्था दोष आ जाता है; क्योंकि न तो पूर्व ही की ओर सीमा बाँधी जा सकती है और न अपरता की ओर ही। पूर्व से पूर्व में भी हमेशा यह पृश्न रहता है कि इसके पूर्व क्या था। इस पृश्न का कम से कम विचार में अन्त नहीं होता। इसी प्रकार पश्चात् से पश्चात् में भी यह प्रश्न रहता है कि इसके पश्चात् क्या है? लोगों ने ईश्वर के विषय में भी यह प्रश्न उठाया है कि यदि ईश्वर जगत् का कारण हो तो ईश्वर का क्या कारण है? वास्तव में ऐसा पृश्न कारण के यथार्थ स्वरूप को न जानने से उपस्थित होता है। कार्य कारण की शृंखला का पृसार केवल आगे और पीछे ही नही, वरन् माला की भाँति इसका कही आदि और अन्त नही। जहाँ आरम्भ कर दिया जाय, वही से उसका आदि है। वास्तव में कार्य और कारण में भेद करने के कारण पूर्वापर का भ्रम हो जाता है। पूर्व के विषय में यह भी शंका उठाई गई है कि कहाँ पर पूर्व शेष होता है और कहाँ पश्चात् का आरंभ होता है। यदि वास्तव में पूर्व का शेष हो कर पश्चात् का आरम्भ हो, तो पूर्व पश्चात् के बीच में एक

पूर्ववर्त्तिता

अन्तर रह जायगा; और उस अन्तर के कारण पूर्व और पश्चात् में कोई सम्बन्ध न रह सकेगा। और जब सम्बन्ध न रहा, तो कारण को कारण कहना शब्दों का दुरुपयोग होगा। इसलिये हमको मानना पड़ता है कि कारण और कार्य के बीच में कोई रेखा नहीं। कारण ही भावी कार्य है और कार्य ही भूत कारण है। यदि कार्य से पीछे की ओर देखें, तो उसको हम कारण कहेंगे; और कारण से यदि आगे की ओर देखें, तो उसी कारण को कार्य कहेंगे।

कार्य और कारण में केवल दृष्टि का भेद है। बहुत से लोग तो ऐसे भी उदाहरण देते है, जिनमें कि कार्य और कारण में बिल्कुल भेद ही नहीं होता। उदाहरणतः स्याही का कागज़ पर गिरना धब्बे का कारण है; किन्तु स्याही का कागज़ को स्पर्श करना जो कि कारण माना जाता है, कार्य रूप धब्बे से पृथक् नही है। पूर्व और अपरत्व का भेद तभी बहुत मालूम पडता है जब कि हम मध्यगत श्रेणियों को भूल जाते हैं। यदि हम मध्यगत श्रेणियों को पूरी पूरी रीति से ध्यान में रक्खें, तो हमको कार्य और कारण में विशेष अन्तर न मालूम पड़ेगा। ज़हर खाने और श्वासान्त होने में कई माध्यमिक श्रेणियाँ हैं। किन्तु वह हमारे दृष्टिगोचर नहीं होतीं; इसी हेतु कार्य और कारण में इतना अन्तर मालूम होता है। गेहूँ और रोटी में बहुत अन्तर मालूम पड़ता है; किन्तु यदि बीच की सब श्रेणियों पर ध्यान रक्खा जाय तो इतना अन्तर मालूम न होगा। कभी

कभी यह अन्तर इतना बढ़ा चढ़ा होता है कि हमारी समझ में नहीं आता कि अमुक कारण से अमुक कार्य की किस प्रकार उत्पत्ति हुई।

पूर्वापर के सम्बन्ध के अतिरिक्त सहाचार वा सहभाव का भी सम्बन्ध माना गया है। दीपक में एक साथ उष्णता और तेज होता है। इनमें से किसको पूर्व कहा जा सकता है और किसको पश्चात्? ऐसी दशा में हम यह भी नहीं कह सकते कि कौन किसका कारण है। इस बात की मोटी परीक्षा केवल इसी तरह से हो सकती है कि हम देखें कि किसके अभाव से दूसरे का भी अभाव हो जाता है। हमको इस अनिश्चय में यह मान लेना पड़ता है कि दोनो ही सहचारिणी घटनाएँ किसी तीसरी घटना का कार्य हैं।

पूर्वापरत्व को कार्य कारण की पहचान मानते हुए हमको ऊपर की बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पूर्व और पर केवल सुभीते के भेद हैं, वास्तविक भेद नहीं। पूर्ववर्तिता एक प्रकार से कारण की मोटी पहचान है, क्योंकि जिस चीज़ पर कोई दूसरी चीज़ आश्रित हो, तो आश्रित पदार्थ से पूर्व आश्रय का होना,आवश्यक है। यदि वह पहले से वर्त्तमान नहीं,तो वह आश्रित पदार्थ की उत्पत्ति में किस प्रकार समर्थ हो सकती है?

पूर्ववर्त्तिता का सम्बन्ध केवल काल में इतना नहीं है जितना कि विचार की आवश्यकता में है। पूर्ववर्तिता कार्य की कारण पर निर्भरता की सूचक है।

कारण की परिभाषा में जो दो बातें नियतता और पूर्ववर्तिता मुख्य थी, उनकी व्याख्या हो चुकी। अब कारण सम्बन्धी स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त यहाँ पर बतलाए जाते हैं जिनसे कारण का विचार और भी स्पष्ट हो जायगा। वह इस प्रकार से हैं।

कारण सम्बन्धी स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त

(१) प्रत्येक घटना का कारण अवश्य होता है।

(२) हमेशा जो कारण जिस कार्य्य को उत्पादन करता है, वह उसी कार्य का उत्पादन करता है, और का नहीं।

(३) जो कार्य्य जिस कारण से उत्पन्न होता है, वह उसी से उत्पन्न हागा, और से नहीं।

(४) कारण और कार्य्य की शक्ति (Energy) की मात्रा बराबर होती है।

(१) यदि ऐसा न माना जाय तो असत् से सत् की उत्पत्ति हो जायगी जो असम्भव है। यदि किसी घटना का कारण न हो तो उसका समय भी निश्चित नही रह सकता; और वह चाहे जब हो बैठे। ऐसी अवस्था में संसार का कार्य्य ही बन्द हो जायगा।

(२) और (३) यह दोनों कार्य्य कारण सम्बन्ध की नियतता के विषय में हैं। एक कारण एक ही कार्य्य का उत्पादन करेगा। यदि ऐसा न हो तो कोई व्यवस्था न रहेगी। कभी गेहूँ के बीज से चना उत्पन्न होगा और कभी गेहूँ।

इसके विरुद्ध सम्भावना असत् से सत् की उत्पत्ति के

समान है, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। कार्य्य कारण में अव्यक्त रूप से रहता है। जो वस्तु अव्यक्त होती है, वही व्यक्त होती है। तिल से तेल निकलता है, बालू से नहीं। जो कार्य कि कारण में मौजूद है, उसी की उत्पत्ति होगी, अन्य की नहीं।

(३) एक कार्य्य एक ही कारण से उत्पन्न होता है। यह सिद्धान्त बहुकारणवाद के विरुद्ध है। बहुकारणवाद के सम्बन्ध में ऊपर विवेचना हो चुकी है। यदि बहुकारणवाद माना जाय तो कार्य्य से कारण का अनुमान नहीं हो सकता, और यदि माना जाय तो हो सकता है। (२) और (३) स्वयं-सिद्धों के मानने से कार्य कारण में पारस्परिक निर्भरता का भाव (Receprocity of causal relation) माना जा सकता है; अर्थात्—

(१) कारण से कार्य्य का अनुमान। (२) कार्य से कारण का अनुमान। (३) कारण के अभाव से कार्य के अभाव का अनुमान। (४) कार्य के अभाव से कारण के अभाव का अनुमान।

(४) कारण कार्य्य के उत्पादन के लिये समर्थ होना चाहिए। कारण कार्य में परिणत होता है; और इस प्रकार कारण की शक्ति कार्य्य को प्राप्त हो जाती है। यदि कार्य की शक्ति कारण की शक्ति से अधिक है तो हमको यह देखना पड़ता है कि और कोई सहायक कारण तो कार्य नहीं कर रहा

है। और यदि कार्य की शक्ति कम है, तो हमको देखना पड़ता है कि कोई बाधक कारण तो काम नहीं कर रहे हैं।

इस सम्बन्ध में हमारे दर्शनों में बड़ा मत-भेद है। इस भेद को सर्व-दर्शन-संग्रह कार ने इस प्रकार बतलाया है। इस

कारणवाद के सम्बन्ध में हिन्दू दर्शनों का मत-भेद

कार्य कारण भावे चतुर्धा प्रतिपत्तिः प्रसरति। असतः सज्जायत इति सौगताः संगिरन्ते। नयायिकादयः सतोऽसज्जायत इति। वेदान्तिनः कार्य्यं जातं न वस्तु सदिति। सांख्या पुनः सतः सज्जायत इति।

अर्थात् बौद्ध लोग असत् से सत् की उत्पत्ति बतलाते हैं। नैयायिक लोग सत् से असत् की उत्पत्ति मानते हैं। वेदान्ती लोग कार्य्य को सत् नहीं कहते; सांख्यवाले सत् से सत् को उत्पत्ति मानते है। चारवाक लोग कार्य्य कारण सम्बन्ध का निषेध करते हैं। बौद्ध लोग वास्तव में कार्य्य को भी असत् मानते हैं, क्योंकि कार्य्य कारण श्रंखला आभास मात्र है। जो कुछ है सो इस आभास के भीतर है। नीचे का चक्र इस मतभेद को स्पष्ट कर देगा।

	कारण	कार्य्य
बौद्ध	असत्	सत् (असत्)
नैयायिक	सत्	असत्
वेदान्ती	सत्	असत्
सांख्य	सत्	सत्

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, बौद्धों * में विशेषतः माध्यमिकों में शून्यवाद माना गया है। सारे संसार का क्रम एक प्रकार से अविद्या का क्रम है; और इसका नाश करना ही परम कर्तव्य और श्रेय है। जो कुछ कार्य कारण सम्बन्ध हैं, वह इसी आभास रूप ज्ञान के भीतर हैं। ऊपर के चक्र में जो बौद्ध मत के अनुसार कार्य्य को सत् बतलाया है, वह सत् आभास का ही सत् है; वास्तव में असत् है।

बौद्ध लोग कार्य का उदय अभाव से मानते हैं। इसका कारण यह है कि वह सत्ता को क्षणिक मानते हैं। एक वस्तु का अभाव हो जाने पर दूसरी का भाव होता है। ऐसा प्रतिक्षण होता रहता है। हम पहले बतला चुके है कि यह भूल अपने संज्ञा क्षेत्र (Field of cousciousness) का अकारण विच्छेद करने से होती है। हमारे विचार का प्रवाह स्फुट कणों का योग नहीं है, वह अविच्छिन्न प्रवाह है। उसमें हम यह नहीं कह सकते कि कहाँ पर एक स्थिति का

---

* बौद्धों का कारणवाद प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धान्त के नाम से प्रख्यात है। प्रतीत्य हेतु प्रत्ययों द्वारा उत्पादन को प्रतीपत्य समुत्पाद कहते हैं। इसके अनुसार एक की उत्पत्ति दूसरे के ऊपर निर्भर रहती है। जहाँ एक की उत्पत्ति एक ही पर निर्भर होती है, वहाँ पर यह सम्बन्ध हेतु निबन्ध कहलाता है, और जहाँ पर एक वस्तु की उत्पत्ति किसी कारण समुदाय पर निर्भर होती है, वहाँ पर यह सम्बन्ध प्रत्ययोग्य निबन्ध कहलाता है।

अन्त हुआ और दूसरी का उदय। दो स्थितियों के भेद तभी मालूम होते है, जब कि हम बीच की स्थितियों को छोड़ देते है। जीवित विचार शृंखला में हम स्थितियों के आदि और अन्त को नही पा सकते। अद्वैत वेदान्तियों के मत में सत् से असत् की उत्पत्ति मानी जाती है। वास्तव में कारण और कार्य एक ही सत् रूप रहता है। किन्तु जो कारण से पृथक् कार्य रूप जगत आभासित होता है, वह असत् है। उनका सिद्धान्त है कि "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मवैनापरः"। ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या; जीव ब्रह्म ही है, और कुछ नही है। जगत को यदि कारण रूप वृत्त करके देखें तो मिथ्या नही है। अर्थात् जब हम कार्य और कारण को एक रूप करके देखते हैं, तब दोनों सत् हैं। और यदि हम कार्य को कारण से पृथक् करके देखते है, तब केवल कारण सत् रहता है और कार्य असत्। इसी से उक्त वेदान्तियों के यहाँ सत् से असत् की उत्पत्ति मानते हैं। इस मत को विवर्तवाद कहते हैं। इसको सत् कारणवाद भी कह सकते हैं। इस मत के विषय में हम केवल इतना ही कहेंगे कि जब कार्य कारण से ही उत्पन्न होता है, तब चाहे वह आभास मात्र ही क्यों न हो, असत् नही हो सकता। यदि ब्रह्म सत् है तो उसका विवर्त भी सत् होना चाहिए।

नैयायिकों के मत में भी एक प्रकार से सत् कारण से असत् कार्य की उत्पत्ति होती है। भेद इतना ही है कि वेदान्ती लोग

कार्य को उत्पत्ति के बाद भी असत् मानते हैं और नैयायिक कार्य को उत्पत्ति से पूर्व असत् मानते हैं। नैयायिकों के मत से जो कारण में नहीं था, वह कार्य में आ जाता है। घड़ा बनने से पूर्व असत् था; बनने पर सत् हो गया। इसको आरम्भवाद कहते हैं। वैशेषिक दर्शन का भी इस विषय में ऐसा ही मत है। न्याय और वैशेषिक का मत असत् कार्य-वाद कहलाता है। यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि न्याय वैशेषिक मत में कारण को शक्ति कर के नहीं माना है। मीमांसक कारण मे कार्य के उत्पादन की एक विशेष शक्ति मानते हैं। वह केवल आनुपूर्वी को पर्याप्त नहीं समझते। सांख्य दर्शन ने सत् कार्यवाद माना है। सत् कार्य का यह अर्थ है कि उत्पत्ति के पूर्व भी कारण रूप से कार्य सत् था; और उत्पत्ति के पश्चात् भी वह निज रूप से सत् है। सांख्य में सत् को उत्पत्ति सत् से ही मानी है। "नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः"। सांख्य सूत्रों में भी इसी बात को नीचे लिखे शब्दों में कहा है:—"नासदुत्पद्यते ना सद्वि-नश्यति।" सांख्य के मत से जो बात कारण में है, वही बात कार्य में है। भेद इतना ही है कि कारण में वही बात अव्यक्त रूप से रहती है और कार्य में व्यक्त रूप से। सत् कार्यवाद की पुष्टि में निम्नलिखित कारिका दी जाती है—

असद करणादुपादान ग्रहणात् सर्व संभवा भावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारण भावाच्च सत् कार्यम्॥

इस कारिका द्वारा सत् कार्यवाद के समर्थन में पाँच युक्तियाँ दी गई हैं—

(१) असदकरणात्—अर्थात् जो असत् है, उसका कोई कारण नहीं। असत् की किसी कारण से उत्पत्ति नहीं हो सकती। गगनारविन्द और शशशृंग की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि कार्य उत्पत्ति से पूर्व वास्तव में असत् था तो उसका सत् होना असम्भव है।

(२) उपादानग्रहणात—अर्थात् मनुष्यों को किसी वस्तु की उत्पत्ति के लिये उपादान अथवा सामग्री की आवश्यकता होती है। यदि असत् की ही उत्पत्ति हो सकती अथवा कार्य उत्पत्ति से पूर्व असत् होकर उत्पत्ति के पश्चात् सत् हो सकता, तो मनुष्यों को उपादान वा सामग्री की आवश्यकता नियत रूप से न होती।

(३) सर्व संभवा भावात्—अर्थात् सब चीजों की उत्पत्ति सब (चाहे जिस चीज़ से) से नही हो सकती। स्वर्ण से चाँदी की उत्पत्ति नही होती और चाँदी से स्वर्ण की नही।

(४) शक्तस्य शक्य करणात्—जिसमें जिसके उत्पादन की शक्ति होती है, उसी से वह उत्पन्न होता है। बीज में वृक्ष के उत्पादन करने की शक्ति है, इसलिये वृक्ष बीज ही से उत्पन्न हो सकता है, बालू के कण से नही।

(५) कारण भावात्—जो कारण की प्रकृति होती है, वही कार्य की भी प्रकृति होती है।

यह सब युक्तियाँ इस बात को बतलाती हैं कि एक विशेष कार्य के लिये एक विशेष कारण की आवश्यकता होती है; और कार्य जब तक कारण में वर्तमान न हो, तब तक उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। (यदि इस कारिका के साथ पूर्व में बतलाए हुए कारण सम्बन्धी स्वयं सिद्ध सिद्धान्त पढ़े जायँ तो वह इस कारिका के पर्याय रूप प्रतीत होंगे।) सांख्य का मत परिणाम वाद कहा जाता है। परिणाम में कार्य कारण की सत्ता एक सी होती है; विवर्त में विपरीत लक्षण वाली होती है। कारण स्वलक्षणानन्यथा भावः परिणामः तद्भिन्नलक्षणो विवर्तः। हम यह अवश्य मानते हैं कि कार्य अव्यक्त रूप से कारण में रहता है। यदि ऐसा न हो तो असत् से सत् की उत्पति हो जाय; और यह बात असम्भव है। किन्तु प्रश्न यह होता है कि व्यक्त और अव्यक्त में कुछ अन्तर होता है या नहीं। यदि नहीं तो नाम का भी भेद क्यों, और वह भेद किस कारण है? व्यक्त और अव्यक्त में जितना भेद है, उतनी ही कार्य में नवीनता है। इस अंश में न्याय का मत युक्ति-सम्मत है। किन्तु यदि हम यह मानने लग जायँ कि वास्तव में असत् से ही सत् की उत्पत्ति होती है, तो हम असम्भव बात मानने के दोषी ठहरेंगे। न्याय के मत से आज-कल के उन दार्शनिकों की, जो संसार को अपूर्ण मान कर उसमें वास्तविक उन्नति के लिये स्थान मानते हैं, किसी अंश में राय मिलती है। जो लोग जीव, ब्रह्म और संसार का ऐक्य और ब्रह्म को पूर्ण

मानते हैं, उनके मत से वास्तविक उन्नति नहीं होती। उनके सिद्धान्त के अनुसार कार्य में कोई नवीनता न होगी। इसी लिये अद्वैत वेदान्ती कार्य में नवीनता क्या, कार्य ही को नहीं मानते।

कारण के प्रकार

कारण तीन प्रकार का माना गया है—समवायी, असमवायी और निमित्त। (१) समवायी कारण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

'यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्।
यथा तन्तवः पटस्य पटश्च स्वगतरूपादेः॥ [तर्क संग्रह]

यस्मिन् समवेत सत् समवायेन सम्बद्धं सत् कार्यम् उत्पद्यते तत्समवायि कारणम्। [न्यायबोधिनी]

स्वसमवेतकार्योत्पादकत्वं समवायिकारणत्वं।
[सप्तपदार्थी]

(१)—जो कार्य को समवायी सम्बन्ध से उत्पन्न करे, वह समवायी कारण है; अर्थात् ऐसा कारण जो कार्य को उत्पन्न करके उससे अलग न हो सके। समवाय सम्बन्ध की व्याख्या कर देना आवश्यक है। सम्बन्ध मुख्यतया दो प्रकार का होता है—एक संयोग और दूसरा समवाय। संयोग सम्बन्ध प्रायः टूट सकता है, किन्तु समवायी नहीं। यदि कपड़े पर पुष्प रक्खे हों तो कपड़े और पुष्प का संयोग सम्बन्ध है, किन्तु कपड़े और उसके तन्तुओं का समवायी सम्बन्ध कहा जावेगा। जिस कारण का अपने कार्य के साथ समवायी सम्बन्ध होता है, उसको समवायी कारण कहते हैं। समवायी सम्बन्ध अयुत-

सिद्ध पदार्थों मेंरहता है। अयुत-सिद्ध उसे कहते हैं जिसमें 'युत' मिलाए हुए (अर्थात् दो बाहरी पदार्थों का योग) का सम्बन्ध सिद्ध न हो।

ययोर्द्वयोर्मध्ये एकम विनश्यद् अपराश्रितमेववतिष्ठते, तौ एव द्वौ अयुतसिद्धौ विज्ञातवौ।

जिन दो में से जब तक एक का नाश न हो, तब तक दूसरा आश्रित होकर बना रहता है; अर्थात् एक के रहते हुए दूसरा रहे, और एक का नाश होते हुए दूसरे का नाश हो, तो वह दोनों अयुत-सिद्ध कहलावेंगे।

समवायी कारण को उपादान कारण भी कहते हैं। उपादान सामग्री को कहते हैं—

(२) असमवायी कारण– असमवायी कारण की इस प्रकार से परिभाषा दी गई है।

"कार्य्येण कारणेनवा सहैकस्मिन्नर्थे सम्बद्धत्वे सति कारणम् असवायि कारणम् यथा तन्तुसंयोगः पटस्य तन्तुरूपं पटगतरूपस्य।"

जो कार्य वा कारण के साथ एक वस्तु में समवाय सम्बन्ध से रहता हुआ कारण होता है, वह असमवायि कारण है। जैसे कपड़े का तन्तु संयोग असम्वायी कारण है। यहाँ पर तन्तु संयोग पट नामवाले कार्य के साथ तन्तु नामवाले अर्थ वा पदार्थ में समवाय सम्बन्ध से रहता है। इसलिये तन्तु संयोग अर्थात् तन्तुओं का मिलना पट का असमवायि कारण है।

दूसरा उदाहरण तन्तु रूप पट के रूप का असम्वायी कारण माना जाता है। यहाँ पर पट के रूप का कारण पट है। उसके साथ तन्तु नामवाले अर्थ में तन्तु रूप समवायि सम्बन्ध से रहता है। इसलिये तन्तु का रूप पट के रूप का असमवायी कारण है। कारण वा कार्य के साथ रहने के आधार पर कारणैकार्थ प्रत्यासत्तिवाला और कार्यैकाथ प्रत्यासत्तिवाला ये दो प्रकार के असमवायि कारण माने गए हैं।

इन दोनों प्रकारों से जो भिन्न कारण हो, वह सब निमित्त कारण कहलावेंगे। "तदुभय भिन्नं कारणं निमित्त कारणम्। यथा तुरीवेमादिकं पटस्य"। करघा जुलाहा यह सब पट के निमित्त कारण है। निमित्त कारण बहुत प्रकार के हो सकते हैं।

निमित्त कारण

न्याय में कारण और करण में भेद किया गया है। कारण की इस प्रकार परिभाषा की गई है-व्यापारवदसाधारण कारणं करण अर्थात् व्यापारवाला असाधारण कारण करण कहलाता है। व्यापार की इस प्रकार परिभाषा दी गई है—"तज्जन्यत्वे सति तज्जन्य जनक" उससे अर्थात् कारण से उत्पन्न हो कर उससे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् कार्य को उत्पन्न करे। वृक्ष के कटने में कुठार कारण माना गया है, और कुठार और तरु-संयोग बीच में व्यापार माना गया है। कुठार तरु संयोग कुठार से उत्पन्न होकर वृक्ष के कटने को, जो कुठार से उत्पन्न होता है, उत्पन्न करता है। दूसरे शब्दों में करण और कार्य के बीच

में सिवा व्यापार के और कुछ नहीं रहता है। बहुत से आचार्यों ने बीच के व्यापार को नहीं माना है। उनके मत से करण निकटतम कारण है। कहीं कहीं करण को केवल असाधारण कारण कहा है। फलयोग व्यवच्छिन्न कारणं करणम्। जो कारण फल अर्थात् कार्य से कभी अलग नहीं होता, अर्थात् कार्य फल उसके बाद ही आता है। कारण बहुत से हों, करण एक ही होगा।

अरस्तू के माने हुए कारण

अरस्तू ने चार प्रकार के कारण माने हैं। (१) उपादान कारण (Material Cause) जैसे घड़े का मिट्टी। (२) उत्पादक कारण (Efficient cause) जैसे घड़े का कुम्हार। (३) निमित्त (Instrumental) जैसे चक्र और दण्ड। (४) प्रयोजन सम्बन्धी कारण (Formal cause) जैसे पानी भरना घड़े का प्रयोजन। घड़ा पानी भरने के लिये है।

सातवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

कारणवाद

(१) कारण शब्द के व्यावहारिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अर्थ बतलाइए।

(२) नीचे लिखे वाक्यों में 'कारण' शब्द किस किस अर्थ में आया है

(क) अज्ञान के कारण उससे भूल हुई।

(ख) अवकाश-बाहुल्य के कारण वह लेखक बन गया।

(ग) जल वृष्टि होने के कारण नदी में बाढ़ आ गई।

(घ) ग्राम की रक्षा के कारण वहाँ पर फौज बुलाई गई।

(ङ) गुरुत्वाकर्षण के कारण पत्थर जमीन पर गिरता है।

(३) "एक कार्य्य के अनेक कारण हो सकते हैं" इस पर विवेचना कीजिए। इस विषय में प्राचीन नैयायिकों का मत बतलाइए।

(४) न्यायशास्त्र के अनुसार कारण की परिभाषा बतलाइए।

(५) अन्यथा-सिद्ध किसको कहते हैं और कै प्रकार के होते हैं ?

(६) नियत पूर्ववर्त्तिता का क्या अर्थ है ? क्या कारण की परिभाषा में नियत पूर्ववर्त्तिता मात्र कह देना पर्य्याप्त है ?

(७) कारण के संबंध में जो भिन्न भिन्न दर्शनों का मतभेद है, उसे स्पष्टतया बतलाइए।

(८) न्याय का मत बौद्ध और सांख्य के बीच का मत है, यह बात कहाँ तक ठीक है ?

(९) न्याय मत से कारण कई प्रकार के माने गए हैं। नीचे लिखे उदाहरणों से बतलाइए कि यह कारण किस किस प्रकार के हैं—

(क) दही का कारण दूध।

(ख) तंतु का रंग कपड़े के रंग का कारण।

(ग) शब्द का कारण आकाश।

(घ) कपड़े का कारण करघा ।

(ङ) कुम्भ का कारण कुम्भकार ।

(१०) असमवाय कारण कितने प्रकार के होते हैं ? नीचे लिखे पदार्थों के समवाय, असमवाय और निमित्त कारण बतलाइए ।

पुस्तक, पीताम्बर, शक्कर, कमीज ।

(११) अरस्तू ने कितने प्रकार के कारण माने हैं ? उनके उदाहरण दीजिए ।

(१२) सांख्य दर्शन में सत्कार्य्यवाद की पुष्टि में क्या क्या युक्तियाँ दी गई हैं ?

(१३) कारण किसे कहते हैं ?

(१४) वैज्ञानिक दृष्टि से बतलाइए कि नीचे लिखी हुई बातों में से पत्थर के ऊपर से गिरने में कौन सी बात कारण मानी जायगी ?

(क) पृथ्वी (ख) गुरुत्वाकर्षण (ग) पत्थर को ऊपर उठा ले जाना ।

(१५) नीचे लिखे हुए उदाहरणों में बतलाइए कि बतलाया हुआ कारण कहाँ तक ठीक है । सतर्क उत्तर दीजिए । यह भी बतलाइए कि वह किस प्रकार के कारण हैं ।

(क) सब पदार्थों की भाँति यह फूल देश काल में स्थित है, अतः देश काल इस फूल की सत्ता का कारण है ।

(ख) जीवन मरण का कारण है, क्योंकि सब मनुष्य जो मरते हैं; मरने से पूर्व जीवित अवस्था में होते हैं ।

(ग) एक पिता ने अपने लड़के से कहा—"मुझे अपना मुँह मत दिखलाना" । लड़के ने जहर खा लिया और मर गया । बाप का वचन लड़के की मृत्यु का कारण हुआ ।

(घ) जूआ खेलना बहुत बुरा है, क्योंकि महाभारत का मूल कारण जुआ है । न महाराज युधिष्ठिर जुआ खेलते, न अज्ञातवास होता, न पीछे से युद्ध होता ।

(ङ) गीता नहीं पढ़नी चाहिए क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण न गीता का उपदेश देते और न अर्जुन लड़ाई के लिये तैयार होता।

(च) उसका लड़का पतंग उड़ाते समय छत से गिर गया। वह आदमी निर्धन था; अपने लड़के की रक्षा के लिये नौकर नहीं रख सकता था। "अहो निर्धनता सर्वापदामास्पदम्'

(छ) अपना घर छोड़ने से पूर्व महात्मा बुद्ध के पुत्र जन्म हुआ था; अत पुत्र-जन्म उनके विराग का कारण हुआ।

(ज) मुर्दे का देखना मनुष्य के महत्व का कारण होता है; क्योंकि उसके देखने से महात्मा बुद्ध को वैराग्य हुआ था और फिर वह महान् पुरुष हो गए।

(झ) परीक्षा को जाते समय छींक हुई थी और मैं उस साल फेल हो गया। छींक ही मेरे फेल होने का कारण है। छींक होने पर कोई शुभ कार्य्य नहीं करना चाहिए।

(ञ) धोबी का गधा कपड़े धुलने का कारण है, क्योंकि धुलने के पूर्व कपड़े गधे पर लद कर जाते हैं।

(ट) शेक्सपीयर ने चोरी से हिरन का शिकार किया। पकड़े जाने के भय से वह गाँव छोड़ कर भाग गया और शहर में रहने लग गया। वहाँ पर नाटक में रह कर उसने इतनी ख्याति प्राप्त की।

आठवाँ अध्याय

कार्य्य कारण तथा अन्य नियत सम्बन्धों के निश्चय करने की पद्धति

जैसा कि पिछले अध्यायों में वताया गया है. यह संसार परिवर्तनशील है, इसमें सदा परिवर्त्तन होते रहते हैं। इन परिवर्त्तनों में कुछ ऐसे हैं जिनका एक दूसरे से नियत सम्बन्ध है और कुछ ऐसे हैं। जिनका सम्वन्ध नियत नहीं है। नियत सम्वन्धों में कुछ ऐसे हैं जिनमें परस्पर सहचार सम्बन्ध (Co-existence) है और कुछ ऐसे हैं जिनका एक का दूसरे के साथ आनुपूर्वी (Succession) सम्वन्ध है। हम नियत सम्वन्धों के ही आधार पर अपना काम चलाते हैं। जब तक अनियत सम्वन्ध नियत नहीं सावित हो जाय, तव तक विज्ञान का विषय नहीं वन सकते· और न उनके आधार पर कोई अनुमान ही किया जा सकता है। इन नियत सम्वन्धों में कार्य कारण सम्वन्ध मुख्य है । अन्य नियत सम्वन्ध अर्थात् नियत सहचार भी कार्य-कारण सम्वन्ध से ही सम्वन्ध रखते हैं। वैज्ञानिक नियम इन्हीं सम्वन्धों के संक्षिप्त विवरण हैं। इनमें यह वतलाया जाता है कि कौन से परिवर्तन किन किन परिवर्त्तनों के नियमित रूप से सहचारी वा अनुगामी होते हैं। इस नियमितता को, जो कार्य कारण सम्बन्ध में मुख्य है, किस प्रकार पहिचान

हो सकती है ? निरीक्षण, गणना और उपमान द्वारा कार्य कारण सम्बन्ध का इशारा मिल जाता है, किन्तु जब तक यह न साबित हो जाय कि यह सम्बन्ध नियत है वैज्ञानिक लोग उससे कोई लाभ नहीं उठा सकते। नियमितता या कार्य कारण निश्चय करने की जो पद्धतियाँ है, वे निम्नलिखित नियमों के आधार पर हैं—

१—जिसके अभाव में किसी का भाव हो, वह पहला दूसरे का कारण नहीं हो सकता।

२—जिसके भाव में दूसरे का अभाव हो, वह दूसरा पहले का कारण नहीं हो सकता।

३—जिसके स्थिर रहने में दूसरा अस्थिर रहे और जिसके अस्थिर रहने में दूसरा स्थिर रहे, वह पहला दूसरे का कारण नहीं हो सकता।

४—जो एक घटना का कारण है, वह दूसरी घटना का कारण नहीं हो सकता।

यह सब व्यभिचार के उदाहरण हैं। पहला नियम व्यति-रेक-व्यभिचार का रूपान्तर है। "कारणभावे कार्य सत्वं व्यतिरेकव्यभिचारः" दूसरा नियम अन्वय व्यभिचार का रूपान्तर है। कारणसत्वे कार्याभावः अन्वयव्यभिचारः। शेष दो नियय भी इन्हीं नियमों से निकाले जा सकते हैं।

यह चारों बातें कारण की परिभाषा से भी घट सकती है। कारण की परिभाषा में मुख्य तीन बातें बतलाई गई थी। पूर्व-वर्तिता, नियतता और अनन्यथासिद्धता। पूर्ववर्तिता यह बत-

लाती है कि कारण के भाव में ही कार्य भाव हो सकता है। नियतता से यह बतलाया जाता है कि यह सम्बन्ध ऐसा न हो कि कभी हो और कभी न हो।

अन्यथासिद्धशून्यता पद से यह बतलाया जाता है कि वह सम्बन्ध नितान्त आवश्यक है, अर्थात् वह ऐसा नहीं है कि उसके होने न होने वा रूपान्तर होने से कार्य सिद्धि में अन्तर पड़े। इन बातों का सीधे तौर से ज्ञान नहीं हो सकता। नियतता का पूरा पूरा सबूत केवल निरीक्षण से मिल सकता है। नियत से अनियत की पहचान सहज है। ऊपर दिए हुए तीन नियम अभावात्मक है। उनसे अनियत की पहिचान हो सकती है। यह तीनों नियम अनियतता की पहिचान के अर्थ है। अनियत सम्बन्धों को निकाल कर नियत सम्बन्ध निश्चित किए जाते हैं। आगमन पद्धति का मूल अनियमित सम्बन्धों के निराकरण में ही है। ये पहले तीन नियम वैशेषिक दर्शन के एक सूत्र से घटाए जा सकते हैं—'कारणाभावात् कार्यस्याभावः'। कारण के अभाव से कार्य का अभाव होता है; अर्थात् जहाँ कारण का अभाव है, वहाँ कार्य का भाव नही हो सकता। यदि कार्य का भाव हो और जो उसका कारण बतलाया जाता हो उसका अभाव हो तो वह कारण नही हो सकता। कारणाभावात् कार्यस्याभावः से "कार्यस्या भावात् कारणाभावः" निकल सकता है और यह भी निकल सकता है कि 'न कार्यस्या भावात् कारणभावः। यही पहले और दूसरे नियम का मूल

है। तीसरे नियम में पहले और दूसरे नियमों का रूपान्तर है; क्योंकि अस्थिरता एक प्रकार का अभाव है। अभाव नहीं तो अभाव की एक श्रेणी अवश्य है।

चौथा नियम अनन्यथासिद्धि की पहचान में काम आता है। अन्यथासिद्ध पाँच प्रकार का बतलाया गया है। उसमें से तीसरा और चौथा अन्यथासिद्ध इसी नियम के सादृश्य पर है। मिल साहब ने चारों नियमों को एक विशेष रूप दिया है। इनकी रीतियाँ बहुत विख्यात है और वैज्ञानिक लोग इन से काम लेते हैं। इनके द्वारा भी अनियमित सम्बन्धों का निराकरण किया जाता है। मिल साहब ने कार्य्य कारण संबन्ध के निश्चित करने की पाँच रीतियाँ बताई हैं। इन रीतियों द्वारा कार्य्य कारण सम्बन्धी कल्पनाओं का उदय और उनकी पुष्टि होती है। इनमें से कुछ निरीक्षणात्मक और कुछ प्रयोगात्मक हैं। जहाँ प्रयोग और निरीक्षण दोनों की गुंजाइश होती है, वहाँ दोनों से काम लिया जाता है; और जहाँ केवल निरीक्षण ही हो सकता है, वहाँ उसी से संतुष्ट रहना पड़ता है। न्याय ग्रन्थों में अन्वय व्यतिरेक ही व्याप्ति का सूचक होता है। जहाँ अन्वय व्यतिरेक नहीं लग सकता, वहाँ व्याप्ति निश्चित नहीं हो सकती। कुछ स्थानों में विपक्ष के अभाव से और कुछ में सपक्ष के अभाव से केवल अन्वय और केवल व्यतिरेक से काम लिया जाता है। जहाँ सपक्ष और विपक्ष दोनों की ही गुंजाइश हो,

वहाँ दोनों का देखा जाना आवश्यक है। यदि अन्वय के होते हुए व्यतिरेक ठीक न हो तो व्यभिचार दोष आ जायगा। व्याप्तिग्रह तभी ठीक हो सकता है जब कि सह-चार के साथ व्यभिचार दोष न पाया जाय। भाषा परि-च्छेद के अनुसार व्याप्ति ग्रहण का उपाय नीचे की कारिका में दिया है—

व्यभिचारस्याग्रहोऽपि सहचारग्रहस्तथा।
हेतुर्व्याप्ति ग्रहे, तर्कः क्वचिच्छङ्का निवर्तकः॥

अर्थात् व्यभिचार का अग्रहण और सहचार का ग्रहण व्या-प्तिग्रह में हेतु है और कभी कभी तर्कशंका का निवर्तक होता है। व्यभिचार की जाँच व्यतिरेक से ही हो सकती है। जहाँ केवल सपक्ष ही सपक्ष है, वहाँ व्यभिचार की सभावना नहीं। कारण की सिद्धि में अन्वय व्यतिरेक का ही काम पड़ता है। मिल साहब की भी पद्धति अन्वय व्यतिरेक की ही परीक्षा है। मिल साहब की रीतियाँ इस प्रकार हैं।

अन्वय रीति (Method of Agreement)

यदि किसी जाँच की जानेवाली घटना के बहुत से उदा-हरणों की परिस्थितियाँ देखी जायँ और उनमें की कोई बात सब उदाहरणों में मिले, तो वह बात जो सब उदाहरणों में मिलती है, उस घटना के साथ कार्य कारण सम्बन्ध रखती है।

एक घटना के बहुत से उदाहरण लिए जाते हैं और उन सब की पूर्वगामिनी बातों को मिला कर देखते हैं कि किन

बातों में बहुत से उदाहरण मिलते हैं। जो बातें किसी घटना की उपस्थिति में कही पाई जाती है और कहीं नहीं पाई जाती, वह कारण नहीं हो सकती है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो उसके अभाव से कार्य का भी अभाव हो जाता। इसी को व्यभिचार दोष कहते हैं। "कारणस्य अभावात् कार्यस्य अभावः"। कारण का अभाव है, किन्तु कार्य का तो अभाव नहीं हुआ इससे मालूम होता है कि जो बातें कारण कही जाती है, वह कार्य्य के लिये आवश्यक नहीं हैं कारण वही होगा जो कार्य के सब उदाहरणों में पाया जाय। उदाहरण की जितनी और बातों में भेद हो, उतना ही अच्छा है। इसका सांकेतिक निरूपण इस प्रकार है—

पूर्व				पश्चात्	
अ	क	स	ब	घ	१
प	र	क	ज	घ	२
य	च	द	क	घ	३
द	र	क	द	घ	४

इस उदाहरण में यदि और सब अक्षर बदलते रहें, किन्तु क सब में वर्त्तमान रहे तो 'क' को ही 'घ' का कारण माना जायगा। जितने ही अधिक उदाहरण हों, उतना ही अच्छा है। धातु का रंग चाहे जो कुछ हो, चाहे जिस देश की प्रयोगशाला में रक्खी हो, चाहे जिसने खोदी हो, चाहे जिस मूल्य की हो, गरम किए जाने से वह बढ़ जाती है। धातुओं के बढ़ने की जो घटना है, उसकी और सब बातें भिन्न होते हुए भी एक बात उस

घटना ऐं सब उदाहरणों में पाई जाती है, इसलिये गरम करना धातुओं के बढ़ने का कारण माना जायगा *।

बहुत से लोगों का विचार था कि सीप में जो रंग दिखाई पड़ते हैं, वह उसकी सामग्री विशेष का फल हैं। बुस्टर ने एक बार सीप की छाप मोम और राल पर ली। मोम और राल दोनों मे ही वैसे ही रंग दिखाई पड़े। फिर उसने सीप की छाप अन्य भिन्न पदार्थों पर उठाई। रंग वैसे ही दिखाई पड़े। पदार्थ बदलते रहे; पर उनके बदलने से रंगों में फर्क न पड़ा। यदि रंग सामग्री-विशेष का फल होते, तो सामग्री के बदलने से रंगों का अभाव हो जाता, सो नही हुआ। जिन पदार्थों पर छाप उठाई गई थीं, वे भिन्न भिन्न जाति के थे। यदि एक ही जाति के होते तो संभव था कि उनमे वह सामग्री-विशेष बनी रहती; सो भी नही। आकार सब भिन्न पदार्थों का एक सा रहा। इससे यह अनुमान हुआ कि विशेष सम्भावना इसी बात की है कि उस आकार में प्रकाश पड़ना ही रंग का कारण है।

---

* यह रीति अन्वय सहचार की विशेष व्याख्या समझी जानी चाहिए। अन्वय सहचार की इस प्रकार परिभाषा की गई है। कारणसत्वे कार्य्यसत्व अन्वयसहचार इस परिभाषा में केवल यह बतलाया जाता है कि अन्वय सहचार क्या है। मिल साहब की रीति में यह बतलाया गया है कि अन्वय सहचार किस प्रकार जाना जा सकता है। यद्यपि आगमन पद्धति के मूल सूत्र न्याय ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से वर्तमान हैं, तथापि उनको पूर्णतया व्यवहार मे लाने के लिये हमको युरोपीय तर्क से विशेष सहायता मिलेगी।

इस रीति से जो कार्य कारण संबन्ध निकाले जाते हैं, वह संभावना ही की कोटि में रहते हैं।

इस रीति के दोष

(१) सहचार आकस्मिक ही हो; अर्थात् सम्भव है कि कोई गौण बात भी सदा पूर्ववर्त्तिनी हो जाय। इस दोष के परिहार की दो रीतियाँ हैं। एक तो यह कि उदाहरण जितने अधिक संख्या में लिये जायँ, उतना ही अच्छा है, और ऐसे उदाहरणों की पूर्व स्थितियाँ जहाँ तक भिन्न हों, वहाँ तक अच्छा है। इस दोष की पूर्ण शुद्धि तो अगली रीति से ही होती है, जहाँ यह दिखाया जाता है कि कारण के अभाव से कार्य का भी अभाव हो जाता है।

(२) कभी कभी ऐसा होता है कि सहायक कारणों को मुख्य कारण समझ लिया जाता है। यदि कोई वैद्य बुखार के लिये कई प्रकार की औषधयों को जल के साथ खाने को दे, तो उससे कोई यह अनुमान करे कि औषधियाँ बदलती रही हैं, जल सब औषधियों के साथ लगा रहा है; इस प्रकार जल ही अन्वय रीति के अनुसार बुखार की शान्ति का कारण है। यह भी अन्यथासिद्ध का एक उदाहरण है। और यह दोष भी दूसरी रीति के प्रयोग से ही दूर होता है; औषध के अभाव से भी यदि रोगी अच्छा हो जाय और उसमें आकस्मिक संयोग का भय न हो, तो जल को रोग-निवृत्ति का कारण समझना चाहिए।

(३) कभी कभी ऐसा भी होता है कि कारण और बातों

के साथ ऐसा मिला हुआ होता है कि उसको अलग करना कठिन हो जाता है। ऐसे भी उदाहरण होते है कि एक कारण दूसरे कारण को उत्पन्न कर देता है। कभी कभी बीच के कारण को लोग असली कारण मान लेते हैं। प्रकृति में सब बातें ऐसी सुगम नहीं है, जैसी कि तर्क शास्त्र की पुस्तकों में। सांकेतिक निरूपण में अ, ब, स, क, ख, ग रख देना सहज है, किन्तु वास्तविक अवस्था में से घटना की एक एक बात का अलग कर दिखाना बड़ा ही कठिन है।

(४) सहचार और पूर्वापर भाव। कभी कभी ऐसा भी होता है कि सहचार को आनुपूर्वी समझ लेते है। वास्तव में ऐसा होता है कि वह दोनों ही किसी तीसरी बात का कार्य होती है। बैंगनी फूल में खुशबू नहीं होती। मालूम नहीं, बैंगनी रंग और खुशबू का क्या सम्बन्ध है।

क्षते प्रहारा नियतन्तिभीक्षणः। धनक्षये दीव्यति जाठराग्निः। यह सब बातें ठीक है, किन्तु इन बातों का संबन्ध नहीं दिखाई पड़ता। ऐसे और भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें अन्वय रीति के आधार पर यह नहीं मालूम पड़ता कि कौन किस का कार्य है। दोनों ही एक दूसरे के कार्य कारण बतलाए जा सकते हैं।

गरीबी और निरुद्योगिता प्रायः साथ साथ बढ़ती हैं; किन्तु यह कहना कठिन है कि ग़रीबी निरुद्योगिता का कारण है अथवा निरुद्योगिता गरीबी का कारण है। इसमें बीजांकुर न्याय ही लगाना पड़ेगा।

जैसा स्वभाव होता है, वैसे ही कर्म बनते हैं; किन्तु जैसे कर्म होते हैं वैसा स्वभाव बनता है। ऐसी हालतों में कौन किसका कारण है, यह कहना कठिन है और दोनों ही को एक दूसरे का कारण कहना पड़ता है।

कार्य का पूरा पूरा विश्लेषण न होने के कारण बहुत से भिन्न कार्य एक से लगते हैं। साधारण मनुष्य के लिये सब प्रकार की मृत्युएँ एक सी ही होती हैं और उनके कारण भिन्न भिन्न मालूम पडते है। ऐसी अवस्था में यह बतलाना कि अमुक कार्य का वही कारण है और कोई कारण नहीं, कठिन हो जाता है, और जब तक यह न मालूम हो तब तक कार्य से कारण का अनुमान होना कठिन होगा और इस सम्बन्ध के ज्ञान से बहुत कम लाभ होगा। जब तक कार्य्य का विश्लेषण न हो, तब तक बहु कारणवाद मानना पड़ेगा, अर्थात् एक कार्य्य के बहुत से कारण हो सकते है। ऐसी अवस्था मे कारण से कार्य का अनुमान हो सकता है। कार्य से कारण का अनुमान सन्दिग्ध रहेगा। गर्मी जलने से, बिजली से, विद्युत् से और रासायनिक क्रिया से उत्पन्न होती है। ऐसी अवस्था में निरीक्षक को यह भ्रम होना सम्भव है कि गर्मी बिजली से उत्पन्न हुई या रासायनिक क्रिया से। इसको निरीक्षक व्यभिचार समझ दोनों में से किसी को कारण न मानेगा। और यदि एक ही कारण देखा जाय तो यह नहीं निश्चय होता कि इसके अतिरिक्त और कोई कारण नही है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि वहुत से कार्य एक साथ मिल जाते है। बुखार, खाँसी, जुकाम, कमर में दर्द, जी मिचलाना, सब एक साथ होते हैं। तब यह वतलाना कि कौन किसका कार्य है, वहुत कठिन है। ऐसी अवस्था में वहुत अनुभव की आवश्यकता है।

इस रीति में इतने दोष होने पर भी यह गणना और उपमान से वहुत ऊँचे दर्जे की है और इसके फल में संभावना बढ़ी हुई होती है। गणना में केवल सख्या ही संख्या होती है। उपमान मे विशेष कर अटकल ही से काम लिया जाताहै। इसमें वहुत से उदाहरणों के कारण मुख्य और गौण में भेद सहज ही में दिखाई पडता है। इसमें हर प्रकार के भेदवाले उदाहरण चुन चुन कर लिए जाते हैं जिसमें आकस्मिकता के लिये स्थान कम रहे।

व्यतिरेक रीति (Method of difference)

भावात्मक उदाहरणों से हमको कार्य कारण संवन्ध का ज्ञान तो हो गया, लेकिन, जैसा कि ऊपर देखा गया, यह ज्ञान निश्चयात्मक नहीं। निषेधात्मक उदाहरण से भावात्मक उदाहरणों की अपेक्षा अधिक पुष्टि हो जाती है। कारण के लिये तीन वातें चाहिएँ। वह पूर्वभावी हो, नियत हो और अन्यथासिद्ध न हो। "यस्य कार्यात्पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च।" निषेधात्मक उदाहरणों से यह भी ज्ञात हो जाता है कि जिसको

हम कारण कह रहे हैं वह अनियत नहीं; अर्थात् ऐसा नहीं है जो कभी हो और कभी नहीं। पहली रीति के भावात्मक उदाहरणों से यह सिद्ध होगा कि अमुक कारण पूर्वभावी है। बहुत से भेद-वाले उदाहरणों को लेकर यह भी देख लिया जाता है कि अनियत नहीं क्योंकि यदि अनियत होता तो सब जगह न होता, किन्तु इससे भी शंका के लिये स्थान रह जाता है। शायद जितने उदाहरण हमने लिये हैं, उनमें उस पूर्वभावी गुण का आकस्मिक संयोग हो; और हमको यह भी देखना होता है कि नियतता अन्यथा-सिद्ध तो नहीं अर्थात् व्यर्थ तो नहीं। इन सब बातों को देखने के लिये निषेधात्मक उदाहरण अधिक उपयोगी है। जिसके अभाव से कार्य का अभाव नहीं होता, वह नियत भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कारण के अभाव से कार्य का अभाव अवश्य हो जाता है। 'कारणाभावात् कार्याभावः'*। यह नियम पहली रीति में भी लगाया गया है, किन्तु इतने सीधे तौर से नहीं जितना कि इस रीति में। कौन सी बात किस किस दूसरी बात के उत्पन्न करने में आवश्यक है, इस बात के जानने के लिये एक एक बात का अभाव करके देखते हैं। जिसके अभाव से अभीष्ट गुण वा वस्तु का अभाव हो जाता है, वही कारण समझ लिया जाता है। व्यतिरेक रीति इसी सिद्धान्त पर बनी है और

* व्यतिरेक रीति उस सिद्धान्त का प्रयोगात्मक रूप है। इसको व्यतिरेक सह-चार भी कहते हैं। व्यतिरेक सहचार की इस प्रकार परिभाषा दी गई है—"कारणा-भावे कार्य्याभाव व्यतिरेक सहचार"।

इसको इन शब्दों में लिख सकते हैं—'यदि दो ऐसे उदाहरण लिए जायँ कि एक में किसी घटना का भाव हो और दूसरे में उसी घटना का अभाव हो और भाव और अभाववाले उदाहरणों की प्राग्भाविनी बातों को मिला कर देखा जाय तो उन बातों में यदि एक ही भेद पाया जाय अर्थात् घटना के भाववाले उदाहरण की पूर्व स्थितियों में किसी एक बात का भाव हो और अभाव वाले उदाहरण की पूर्व स्थितियों मे उसी एक बात का अभाव हो, तो वह बात उस घटना से कार्य कारण सम्बन्ध रखनेवाली समझी जावेगी।

सांकेतिक निरूपण

भावात्मक उदाहरण	अभावात्मक उदाहरण
क ख ग, अ घ ब के साथ हो।	ख ग, अ ब के साथ हो।

अतः क घ का कारण है। अन्वय रीति में समानता से काम लिया जाता है। इसमें यह है कि अन्वय रीति में बहुत से उदाहरण दिये जाते हैं। अन्वय रीति के उदाहरणों मे एक बात की समानता है; और अन्य बातों में भेद होता है। इसमें और सब बातों की समानता और एक बात का भेद होता है। इस रीति की विशेष बात यही है कि इसमें दो ही उदाहरण लिए जाते हैं। ऐसा प्रकृति में कम होता है कि एक ही बात का अभाव हो; इसलिये हमें प्रयोग से भी काम लेना पड़ता है। कभी कभी ऐसा होता है कि कई बार के

अन्वय और व्यतिरेक रीति में अन्तर

विफल परिश्रम के बाद ऐसी एक बात मिलती है जिसका अभाव करने से घटना का अभाव हो जाता है। यदि किसी बात का पहले से अभाव हो और उसका भाव हो जाने से घटना का भाव हो जाय तो उस को इस रीति के अनुसार घटना का कारण समझना चाहिए।

उदाहरण—यदि कोई मनुष्य रात भर सोया न हो और सुबह को उसके सिर में दर्द हो, फिर दुपहर में सो ले और उसका सिर का दर्द बंद हो जाय तो इस रीति से निद्रा का अभाव सिर दर्द का कारण है। यदि किसी पात्र के भीतर घंटी बजाई जाय तो उसका शब्द सुनाई पड़ता है। परंतु यदि उस पात्र की हवा किसी वायुनिष्कासन यंत्र द्वारा निकाल ली जाये तो घंटी की आवाज फिर न सुनाई पड़ेगी। इस प्रयोग में विद्युत्सञ्चालित घंटी को काम में लाने से सुविधा पडती है। इस प्रयोग से यह सिद्ध किया जाता है कि वायु ही शब्द के सञ्चार का कारण है।

सब से पहली विचारणीय बात यह है कि ऐसे दो उदाहरणों का मिलना कठिन है जिनमें सिवा एक बात के सब बातें एक सी हों। प्रकृति में ऐसे बने हुए उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। कल से आज का दिन ठंढा है। कल और आज में जाहिरा फर्क इतना है कि आज सुबह के वक्त मेह बरस गया है। किन्तु वास्तव में और कई परिवर्त्तन हो सकते हैं जो हमारे ध्यान में ही न आए हों। हवा बदल कर चलने लगी हो। देखने में तो एक ही बात

इस रीति की कठिनाइयाँ

का भेद था, किन्तु वास्तव में दो बातों का भेद था। इसलिये प्रायः इस रीति का व्यवहार वहाँ नहीं किया जाता जहाँ केवल निरीक्षण से काम लिया जाता है। जिन विषयों पर प्रयोग चल सकता है, उन पर यह रीति सुविधा से काम में लाई जा सकती है। प्रयोग करते समय इस बात का पूरा पूरा ध्यान रहना चाहिए कि एक ही स्थिति नई बढ़ाई जाय या घटाई जाय। बहुत से ऐसे अज्ञात कारण काम करते रहते हैं जिनका प्रभाव हमारे प्रयोगों पर पडता है। हवा प्रायः सभी स्थानों में होती है, उसका प्रभाव पडता रहता है। गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव को भी हम नहीं रोक सकते। चुम्बक सम्बन्धी प्रयोगों में इधर उधर लोहे की स्थिति बहुत फर्क डाल देती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक सम्भावित कारण को हम अलग नहीं कर सकते। जैसे, किसी पदार्थ से गुरुत्वाकर्षण को हम हटा नहीं सकते। ऐसी अवस्था में उसका प्रभाव दूर करने के लिये किसी प्रतिबंधक कारण उपस्थित करना होता है; अथवा उसके अनुसार हिसाब में कमी बेशी कर देते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक बात के अलग करने में बहुत सी बातें अलग हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में यह जानना कठिन हो जाता है कि कौन सी बात मुख्य है और कौन सी गौण।

प्रयोग में इसका भी ध्यान रखना पड़ता है कि और ही किसी कारण से जो फल हम चाहते थे, सो न हो गया हो। बुखार स्वयं ही उतर रहा हो और औषध का नाम हो जाय।

"गंगा तो आने को ही थी, भगीरथ के सिर पड़ी" ऐसी अवस्था में यह मालूम करना कठिन हो जाता है कि हमारे विचारे हुए कारण ने कहाँ तक काम किया। यद्यपि इस रीति में बहुत सी कठिनाइयाँ है और इसके सफलतापूर्वक प्रयोग करने में बड़ी सावधानी और बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है, तथापि इसके फल में अन्वय रीति के फल की अपेक्षा अधिक निश्चयता है।

अन्वय व्यतिरेक रीति

व्यतिरेक रीति की कठिनाइयाँ बतलाते हुए यह बात दिखलाई गई थी कि इस रीति को काम में लाने के लिये दो उदाहरण ऐसे ढूँढ़े जायँ जिनमें सिवा एक बात के और किसी बात का अन्तर न हो; अथवा प्रयोग द्वारा एक बात के घटाने या बढ़ाने से ऐसी स्थिति बनाई जाय कि दो उदाहरणों में एक ही बात का भेद हो। प्रकृति में ऐसे उदाहरण मिलना कठिन हो जाता है और सब घटनाएँ हमारे ऐसे वश में नहीं हैं कि उनमें हम स्वेच्छानुसार रद्द बदल कर सकें। समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र सम्बन्धी बहुत सी ऐसी घटनाएँ हैं जिनको हम केवल सावधानी के साथ देख सकते हैं। उनमें कुछ रद्द बदल नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में हम एक घटना के भावात्मक और अभावात्मक दोनों ही प्रकार के उदाहरण ढूँढ़ते हैं और दोनों की तुलना करके देखते है कि भावात्मक उदाहरणों में क्या बात एक सी है और अभावात्मक उदाहरणों में क्या बात समान है। यदि भावात्मक उदाहरणों में एक बात का भाव सब उदा-

हरणों मे पाया जाय और अभावात्मक उदाहरणों में उसी बात का अभाव पाया जाय, तो वह बात उस घटना के साथ कार्य कारण सम्बन्ध रखती हुई समझी जायगी। इसी बात को थोड़े बहुत फर्क के साथ नीचे लिखे हुए शब्दों में लिख कर इस रीति का रूप बतलाया जाता है।

हम कई ऐसे उदाहरण लें जिनमें से कुछ में तो किसी घटना-विशेष का भाव हो और कुछ में अभाव हो। फिर हम इन उदाहरणों की सब बातों का निरीक्षण करे, और यदि निरीक्षण करने पर यह ज्ञान हो कि जिन उदाहरणों में घटना का भाव है, उसमें और सब बातों का भेद होने पर भी एक बात की समानता पाई जाती है और अभाववाले उदाहरणों में और बातों का भेद होने पर भी एक बात की समानता पाई जाय, अर्थात् जिस बात का कि भाववाले उदाहरणों में भाव था, उसी बात का अभाववाले उदाहरणों में अभाव पाया जाय तो वह बात उस घटना-विशेष के साथ कार्य कारण सम्बन्ध रखती हुई समझी जायगी।

सांकेतिक निरूपण

भावात्मक उदाहरण		अभावात्मक उदाहरण	
प्राग्भाविनी	पश्चाद्भाविनी	प्राग्भाविनी	पश्चाद्भाविनी
क ख ग	च छ घ	ख ग स	च छ व
र क स	प घ च	प घ च	च प छ
स ख क	च प घ	स ख भ	र द ध
द ध क	स छ घ	ख प ग	ह स द

'घ' के भावात्मक उदाहरणों में 'क' हमेशा पूर्वभावी हुआ है और घ के अभाववाली घटनाओं में 'क' का अभाव है। भाव वाले उदाहरणों में और बातों का भेद होते-हुए भी 'क' का पूर्वभावी होना सब में एक सा है और अभाववाली घटनाओं में और बातों का भेद होते हुए 'क' का पूर्वभावी न होना एक सा है। ऐसी अवस्था मे 'क' 'घ' से कार्य कारण सम्बन्ध रखता हुआ समझा जायगा।

उदाहरण—हम कुछ ऐसे देश लें जो धनवान् है और कुछ ऐसे देश लें जो धनहीन है। उन देशों की मुख्य बातों को देखें। विचार करने पर यदि मालूम पड़े कि धनवान् देशों में और सब बातों का भेद होते हुए भी एक बात समान है, और वह यह कि वहाँ शिक्षित लोगों की अधिकता है, और धनहीन देशों में और बातों का भेद होते हुए भी एक बात की समानता हो अर्थात् शिक्षित लोगों की अधिकता का अभाव हो तो हमारा यह अनुमान होगा कि शिक्षित लोगों की अधिकता देश को धनवान् बनाती है। भौतिक विज्ञान से दूसरा उदाहरण लीजिए। जिन जिन पदार्थों में से ताप का शीघ्र विसर्जन (Quick Radiation of heat)होता है उन पदार्थों पर ओस जल्द जमा हो जाती है; और जिन पदार्थों के ताप का शीघ्र विसर्जन नहीं होता, उन पर ओस जल्दी जमा नहीं होती। फूस, पत्ते, काँच की चीजें, घास इन सब पदार्थों में एक ही बात एक सी है कि इनमे से ताप का शीघ्र विसर्जन हो जाता है

अर्थात् ये बहुत देर तक गरम नही रहती, गर्मी इनमें से जल्द निकल जाती है। और पत्थर लोहे की चीजों में ओस जल्द जमने का अभाव है। इसके साथ उस गुण का, जो सब भावात्मक उदाहरणों में वर्तमान था, अभाव है। इस रीति के अनुसार ओस के जमा होने का कारण ताप का शीघ्र विसर्जन है।

इसी प्रकार मच्छर और मलेरिया बुखार का कार्य्य कारण सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जहाँ लोग मच्छरों से बचे हुए नहीं रहते, वहॉ पर मलेरिया का आधिपत्य होता है; और जहॉ लोग मच्छरों से बचे हुए रहते हैं, वहाँ मलेरिया का कम प्राधान्य होता है। इसी प्रकार और कार्य्य कारण सम्बन्ध भी स्थापित किए जाते हैं। जैसे, कोई अपने निद्रा न आने के कारणों की खोज करना चाहे तो वह निद्रा न आनेवाली रात्रियों की परिस्थितियों का खूब निद्रा आनेवाली रात्रियों की परिस्थितियों से मिलान करे और देखे कि दिन में सोना, रात को देर तक पढ़ना, कम खाना, थकावट यह सब बातें न्यूनाधिक दोनों अवस्थाओं में मौजूद रही। किन्तु दोनों प्रकार की रात्रियों की परिस्थितियो में एक बात का अन्तर रहा। वह यह कि जिन रात्रियों में उसे निद्रा नहीं आई, उन रात्रियों को उसने चाय पी थी और जिन रात्रियों में उसे नींद खूब आई थी, उन रात्रियों में उसने चाय नहीं पी थी; इसलिये उसे निद्रा न आने का कारण रात्रि का चाय पीना समझा जायगा।

यह रीति एक प्रकार से दो रीतियों का योग है। वास्तव में यह अन्वय रीति का ही रूपान्तर है। इस रीति में अन्वय रीति के फल को अभावात्मक उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया जाता है और अभावात्मक उदाहरण में व्यतिरेक रीति की भाँति और सब बातों की समानता और एक बात का भेद नहीं देखा जाता, वरन् और सब बातों का भेद और एक बात की समानता देखी जाती है। फल यह होता है कि इस रीति में अन्वय रीति के फल की पुष्टि अन्वय रीति के आधार पर (अर्थात् समानता देख कर) और निषेधात्मक उदाहरणों से व्यतिरेक रीति के आधार पर की जाती है। इससे भी अन्वय रीति के दोष का पूर्णतया निवारण नहीं होता। व्यतिरेक रीति के एक दोष का तो निवारण हो जाता है, क्योंकि उसके उदाहरण मिलना बहुत कठिन नहीं है; किन्तु इसका फल इतना निश्चित नहीं होता जितना कि व्यतिरेक रीति का। अन्वय रीति की भाँति इसमें जितने उदाहरण अधिक लिए जायँ, उतना ही अच्छा है। अधिक उदाहरणों के लेने से आकस्मिक संयोग की संभावना घट जाती है।

विशेष व्याख्या और गुण दोष

भावात्मक और अभावात्मक दोनों उदाहरणों के मिला लेने से भूयोदर्शन का जो असली तात्पर्य है, वह सिद्ध हो जाता है। न्यायमञ्जरी में कहा है—"यस्मिन् सति भवनम् यतो विना न भवनम् इति भूयोदर्शनम्"। अर्थात् जिसके होने से होता है और जिसके बिना नहीं होता। यही भूयोदर्शन है।

सहचारी वैभिद्य रीति

(Method of concommitant variations)

ऊपर बतलाया जा चुका है कि प्रकृति में ऐसा बहुत कम होता है कि किसी चीज का बिल्कुल अभाव हो सके। हम बर्तन की हवा निकालते हैं, किन्तु बिलकुल हवा निकलना असभव है। गर्मी सर्दी सापेक्ष शब्द है। गर्मी के अभाव को सर्दी कहते हैं। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कहाँ गर्मी का अभाव हुआ और कहाँ सर्दी का उदय हुआ। हम चाहे जितना यत्न करें, संघर्षण का नितान्त निराकरण संभव नहीं। ऐसी अवस्था में किसी चीज के दूसरी चीज के साथ घटने बढ़ने पर अनुमान लगाना पड़ता है। इसके लिये वैभिद्य सहचार की रीति काम में लानी पड़ती है जो इस प्रकार से है।

जब एक घटना किसी दूसरी घटना के साथ किसी विशेष नियम से घटती या बढ़ती है तो उन दोनों घटनाओं में कार्य कारण सम्बन्ध माना जाता है।

इसका सांकेतिक निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

क'	घ'	क'	घ'''	क'''	घ'	क'''	क'''
क''	घ''	क''	घ''	क''	घ''	क''	क''
क'''	घ'''	क'''	घ'	क'	घ'''	क'	क'

इसकी उपयोगिता में ऊपर जो बातें बतलाई जा चुकी हैं,

उनके अतिरिक्त इसमें यह लाभ है कि हमको वस्तुओं के व्यवहार में परिमाण का भी ज्ञान होता है। विज्ञान में परिमाण सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। यही उसको निश्चयात्मकता की ओर ले जाता है।

उदाहरण—यदि हम गति के पहले नियम को सिद्ध करना चाहें तो हम संघर्षण का नितान्त अभाव करके नहीं सिद्ध कर सकते। गतिसातत्य असम्भव है। लेकिन हम यह दिखा सकते हैं कि जितना जितना संघर्षण घटता जाता है, उसी अंश में गति में सातत्य आता जाता है। एक वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों द्वारा दिखलाया कि एक लटका हुआ पदार्थ (Pendulum) जो कि साधारण रीति से ५ या ६ बार चल कर रुक जाता है, संघर्षण के न्यूनातिन्यून करने पर बराबर २० घंटे तक हिलता रहा। इसी प्रकार संघर्षण और उष्णता का कार्य कारण सम्बन्ध दिखाया जाता है। संघर्षण बढ़ाने से उष्णता बढ़ती है, संघर्षण घटाने से घटती है। इन कारणों से यह रीति विज्ञान के लिये विशेष उपयोगी है। किंतु यह भी दोष से खाली नहीं है और इसमें भी बड़ी सावधानी और अनुभव की आवश्यकता है। परिमाण से इस रीति का विशेष सम्बन्ध है। कभी कभी ऐसा होता है कि परिमाण-भेद के कारण गुण-भेद हो जाता है। एक रंग ज्यादा तेज करने से दूसरे रंग में बदल जाता है। ऐसी अवस्था में यह रीति काम न देगी। इस रीति से यह भी अनुमान न कर लिया जाय कि यह घटा बढ़ी

चाहे जिस दर्जे तक होती चली जा सकती है। वेवर साहब ने उत्तेजक (Stimulous) और संवेदन का सम्बन्ध सीमाबद्ध बतलाया है । एक नीचे की सीमा है जिसके नीचे कोई उत्तेजक काम नहीं कर सकता अर्थात् उसका कोई संवेदन नहीं होता । जो धूल हमारी टोपी पर जम जाती है, उसका कोई बोझ नहीं मालूम होता। इसी प्रकार ऊपर की एक सीमा है आगे और कोई संवेदन नहीं होता। तेज की भी एक सीमा है जिसका उल्लंघन होने से वह नहीं दिखाई पड़ता। कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें बढ़ती के स्थान में एक साथ घटती शुरू हो जाती है अथवा घटती के बाद बढ़ती होने लगती है । पानी तीसरे दर्जे तक तो सर्दी के कारण घटता रहता है; उसके बाद सर्दी के बढ़ने से उसका घन फल बढ़ता जाता है । अर्थशास्त्र में क्षीयमान उपज (Law of diminishing return) का सिद्धान्त माना जाता है। किसी दर्जे तक तो अधिक धन और मज़दूरी लगाने से जमीन की पैदावार बढ़ती जाती है और फिर घटने लग जाती है। ऐसी अवस्था में स्थापित किए हुए नियम की सीमा को अनुभव करके निश्चित कर लेना ही ठीक है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दो बातों में एक साथ घटती और बढ़ती रहती है, किन्तु उन दोनों में कार्य-कारण-सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरणतः—"अह ! बड़ी ठंढ पड़ने लगी; क्रमशः रजनी भी बढ़ने लगी।" इससे यदि कोई यह अनुमान करने लगे कि जाड़ा रात के बढ़ने का कारण

है तो ठीक नहीं। वास्तव में जाड़ा और रात का बढ़ना दोनों ही सूर्य और पृथ्वी की दूरी के न्यूनाधिक्य पर निर्भर हैं।

परिशिष्ट रीति

Method of Residues

यह संसार कार्य-कारण की बड़ी भारी शृंखला है; एक एक जगह कई कार्य-कारणों का संघटन हो जाता है। जब हम ऐसी घटनाओं पर विचार करते है, तब बहुत सी बातों का कार्य्य-कारण-सम्बन्ध पूर्व वर्णित चार रीतियों से स्थापित कर लिया जाता है। कभी कभी बहुत खोज करने पर भी बहुत सी बातों का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। इन बातों का सम्बन्ध स्थापित करने में यह रीति काम में लाई जाती है। इस रीति को नीचे लिखे शब्दों में कह सकते हैं।

यदि किसी घटना की कुछ बातों की व्याख्या उसकी पूर्व-भाविनी बातों से हो जाती है तो उस घटना की बाकी दो एक बातों की व्याख्या शेष पूर्वभाविनी बातों से होने की सम्भावना मानी जाती है। मसलन एक घटना में प, फ, ब, तीन बातें शामिल है और उसकी पूर्वभाविनी च, छ, ज तीन मुख्य बातें है। हमको मालूम है कि प का कारण च है और फ का कारण छ, तो संभवतः ब का कारण ज है। किसी बड़े कमरे में शाम के वक्त ८० दर्जे की गर्मी थी। फिर उसमें एक बड़ा भारी किटसन लैम्प जलाया गया और २० आदमियों की एक सभा हुई। घण्टे

भर के बाद उस कमरे की गर्मी नापी गई तो देखा गया कि ८०° से ८५° हो गई। उसके पहले दिन भी उस कमरे में घण्टे भर किरासन लैम्प जला था, लेकिन उस दिन आदमी एक भी न था। उस दिन घण्टे भर में कमरे की गर्मी सिर्फ ४ दर्जे बढ़ी थी। एक दर्जा गर्मी का कारण और कुछ नहीं मालूम पड़ता। उस कमरे में २० आदमियों की उपस्थिति ही उसका कारण मालूम पड़ती है। यह बात परिशिष्ट रीति से ज्ञात हुई। इसका एक अच्छा उदाहरण ज्योतिष से मिलता है। सन् १८२१ में यूरेनस नामक ग्रह शनैश्चर ग्रह के बाहर पाया गया। फिर देखा गया कि वह आकर्षण सम्बन्धी नियमों का पूर्णतया पालन नहीं करता है; अर्थात् जिस कक्षा में उसको चलना चाहिए, उससे थोड़ा हट कर चलता है। और सब ग्रहों के हिसाब से उसकी जो कक्षा निर्धारित की गई थी, उससे उस की यह कक्षा भिन्न थी। फिर सोचा गया कि शायद यूरेनस के बाहर कोई ऐसा ग्रह हो जो उसको खींचता हो। फिर हिसाब लगाया गया कि अमुक स्थान में उस अज्ञात ग्रह की स्थिति होनी चाहिए। दूरबीन लगा कर देखा गया तो उसी स्थान में वह ग्रह पाया गया। वह ग्रह नेपट्यून (Neptune) के नाम से प्रसिद्ध है। यह परिशिष्ट रीति का तो उदाहरण है ही किन्तु इस बात का भी अच्छा उदाहरण है कि यदि हमारा अनुमान सर्वांश में शुद्ध हो तो वह अवश्य अनुभवसिद्ध पाया जायगा। हमारे देश के दूकानदार लोग परिशिष्ट रीति को बहुत काम में लाया करते हैं। पहले तो

वर्तन को तौल लिया; फिर वर्तन और घी अथवा कोई पदार्थ एक साथ तौल लिया। कुल बोझ में से बर्तन का बोझा घटा कर घी का बोझ मालूम कर लेते हैं। यह पद्धति हमको घटना के ऐसे भागों के, जिनकी कि जाने हुए कारण से व्याख्या नहीं हो सकती, कारण खोज करने में प्रवृत्त करती है। नेपट्यून का पाया जाना इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है। सच्चा कारण वही है जो पूरी घटना की व्याख्या कर सके। जब घटना की पूरी व्याख्या नहीं होती, तब और कारणों की खोज करनी पड़ती है। साधारण लोगों के लिये बहुत सी छोटी छोटी बातें कोई मूल्य नहीं रखतीं, किन्तु वैज्ञानिक लोगों की तीव्र दृष्टि से वे नहीं छूटतीं और उनकी खोज का विषय बन जाती हैं। ओज़ोन (Ozone) गैस इसका उदाहरण है। हवा में जब विद्युत् सञ्चार किया जाता है, तब उसमें एक प्रकार की विशेष गंध पैदा हो जाती है। बहुत काल तक लोग इसकी व्याख्या नहीं कर सके और इसको विद्युत् गंध कहते थे। फिर एक जर्मन प्रोफेसर ने इस बात की गवेषणा की और पाया कि यह ओषजन (Oxigen) में विशेष परिवर्तन होने का फल है।

गुण दोष—इस रीति द्वारा बहुत सी नई बातें विदित हो गई हैं। जो बातें बिलकुल गौण समझी जाती हैं, उनका भी कुछ न कुछ कारण ढूँढ़ने की कोशिश की जाती है। (आर्गन*

* वायुमण्डल में जो नत्रजन होता है, वह अन्य रासायनिक विश्लेषण द्वारा प्राप्त किए हुए नत्रजन की अपेक्षा अधिक भारी पाया जाता है, इसी अन्तर की व्याख्या करने में आर्गन की प्राप्ति हुई।

Argon इसी प्रकार पाया गया था) किन्तु इसमें भूल हो जाने की विशेष सम्भावना रहती है। इसमें कोई सम्बन्ध स्पष्ट तौर पर नहीं दिखाया जाता। पूर्वभाविनी और पश्चात्-भाविनी में एक ही बात बच रही हो, तब तो इसका ठीक प्रयोग हो सकता है; नहीं तो नहीं।

इन रीतियों से कपल्नाओं का उदय और उनकी पुष्टि भी होती है। किन्तु ये रीतियाँ सब प्रकार की घटनाओं की जाँच में नहीं लाई जा सकतीं। भूगर्भविद्या, इतिहास, रसायनशास्त्र और भौतिक विज्ञान के अन्तिम सिद्धान्त प्रायः इन रीतियों के अधिकार से बाहर रहते हैं। परमाणु, ईथर, विद्युत् आदि के सम्बन्ध में जो कल्पनाएँ की जाती हैं, उनकी पुष्टि सीधी रीति से नहीं हो सकती, क्योंकि ये सीधे निरीक्षण के विषय नहीं होते। इन बातों के सम्बन्ध में जो कल्पना की जायगी, उसकी पुष्टि उससे निकाले जानेवाले निगमनों की सत्यता के आधार पर होगी। उन कल्पनाओं से और फल निकाल कर देखते हैं कि ये वास्तव में ऐसे हुए या नहीं। यदि अकबर बादशाह के विषय में यह निर्णय करना हो कि उसमें धार्मिक पक्षपात था या नहीं, तो इसके लिये उसके आन्तरिक भावों को जानना तो कठिन है, और विशेष कर जब कि वह इस संसार में नहीं है। उसके विषय में कोई कल्पना करे कि यदि उसमें धार्मिक पक्षपात नहीं था तो उसके राज्य में

कल्पनाओं की निगमन पद्धति द्वारा स्थापना

हिन्दुओं को ऊँचे स्थान मिलते। कल्पना की पुष्टि के लिये इससे और निगमन निकालते है। जब अकबर के समय का इतिहास देखने से मालूम होता है कि यह बात सत्य थी, तब कल्पना की पुष्टि हो जाती है। इसी प्रकार साधारण जीवन में बहुत सी कल्पनाओं की परीक्षा की जाती है। मसलन्, कोई आदमी नदी के ऊपर के ग्राम से आया। उसके भीगे हुए कपड़े देख कर लोगों ने कल्पना की कि उस ग्राम मे मेह बरसा है। इस कल्पना की पुष्टि यदि बिना उस ग्राम मे गए हुए करें, तो किस प्रकार हो सकती है? नदी को जाकर देखो, अगर ऊपर के ग्राम में वर्षा हुई हो तो नदी में अवश्य बाढ़ आई होगी। यदि यह बात ठीक निकले तो कल्पना भी ठीक होगी। इसमें ऐसा भी सम्भव है कि पानी इतना थोड़ा बरसा हो कि बाढ़ न आई हो। अदालतों में भी बहुत सा काम इसी रीति से लिया जाता है। कोई आदमी दोषी ठहराया गया। फिर यह सोचा गया कि यदि दोषी न होता तो भागता नहीं। लेकिन वह भाग गया था, इससे वह निर्दोष नहीं है। सम्भव है कि वह किसी और कारण से ही स्थान छोड़ गया हो। हमारे प्रायः सभी अनुमान सम्भावना के आधार पर होते हैं और उनकी विपरीत सम्भावनाएँ भी रहती हैं। किन्तु जब एक ओर सभी सम्भावनाएँ इकट्ठी हो जाती हैं, तब वह सम्भावना निश्चय का रूप धारण कर लेती है। एक सम्भावना का कुछ अर्थ न हो, किन्तु बहुत सी सम्भावनाएँ इकट्ठी होकर

निश्चय उत्पन्न कर देती हैं। कल्पनाओं से निगमन निकाल कर उनकी सत्यता देखना केवल इतिहास और भूगर्भविद्या सम्बन्धी विषयों में ही प्रयुक्त नहीं होता, वरन् सभी प्रकार की कल्पनाएँ इस प्रकार अनुभव की कसौटी पर जँच जाती हैं।

अनुभव ही सत्य की अन्तिम कसौटी है। सफल प्रवृत्ति ही प्रमा अर्थात् सत् ज्ञान की जाँच है। इस प्रकार प्रत्यक्ष से चल कर प्रत्यक्ष पर ही आ जाते हैं; और फिर प्रत्यक्ष के आगे कोई प्रमाण नहीं। 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'!

यद्यपि यह रीति सभी आगमनात्मक अनुमानों के फल को संदेह-रहित कर देने की है, तथापि इसको मिल साहब ने निगमन रीति (Deductive method) नाम से एक स्वतन्त्र रीति माना है। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, इस रीति में तीन श्रेणियाँ हैं।

(१) आगमन (Induction)—निरीक्षण, प्रयोग, और विश्लेषण द्वारा कार्य्य-कारण-सम्बन्धिनी कल्पनाओं का स्थापन करना।

(२) निगमन (Deduction) निगमनात्मक तर्क से उन कल्पनाओं का फल निश्चित करना।

(३) अनुभव से मिलान करना (Verification)—कल्पनाओं के फल को देखना कि वह कहाँ तक हमारे अनुभव में सिद्ध होता है।

इस रीति के व्यवहार करने के मिल साहब ने दो प्रकार बतलाए हैं। पहले प्रकार की व्यवहार-पद्धति को उन्होंने गुण-सम्बन्धी कहा है। रेखागणित में जो रीति लगती है, वह पहली का उदाहरण है; और ज्योतिष शास्त्र में जो रीति लगती है, उसको वस्तु-सम्बन्धी कहा है। इन दोनों प्रकार की रीतियों में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। रेखागणित की रीति सरल है और ज्योतिषशास्त्र की पेचीदा है। रेखागणित में प्रायः एक ही कारण का प्रभाव देखा जाता है और ज्योतिषशास्त्र में कई कारणों का प्रभाव देखा जाता है।

दूसरी अर्थात् वस्तु रीति के भी दो प्रकार हैं—एक अव्यवहित (Direct) और दूसरी व्यवहित (Indirect)। अव्यवहित रीति के अनुसार हम कुछ नियमों को निरीक्षण द्वारा स्थिर करते हैं; उनसे हम निगमन निकालते हैं और निरीक्षित घटनाओं से उनका मिलान करते हैं कि कहाँ तक हमारे निगमन अनुभवसिद्ध ठहरते है। निगमन रीति का यही मुख्य रूप है। व्यवहित रीति इस प्रकार है। इसका उपयोग प्रायः समाज शास्त्र में होता है। हम सामाजिक घटनाओं का निरीक्षण करके उनसे नियम स्थापित करते हैं; और फिर उनकी अथवा उनसे घटाए हुए अन्य नियमों की मनुष्य स्वभाव से घटाए हुए नियमों के साथ अनुकूलता देख कर उनको प्रमाणित करते हैं। व्यवहित और अव्यवहित रीति में इतना ही अन्तर है कि अव्यवहित रीति में कल्पनाओं की सिद्धि

उनसे निकाले हुए अनुमानों के अनुभव सिद्ध होने पर होती है; और व्यवहित रीति में कल्पना से घटाए हुए नियमों का अनुभव से घटाए हुए नियमों के साथ मिलान करने से होता है। इस रीति का आधार यह है कि दो सत्य सिद्धान्तों से घटाए हुए नियम वा सिद्‌धान्त आपस में टक्कर खा जायँगे। प्रायः ऐसा होता है कि भाषा-विज्ञान वा समाज-शास्त्र में निरीक्षण द्वारा नियम स्थापित करते हैं; और फिर यह देखते हैं कि साधारण विकास के नियमों से उनकी कहाँ तक अनुकूलता होती है। यह प्रत्यक्ष और विचारसाम्य दोनों सत्य की कसौटी हैं। कहीं प्रत्यक्ष अर्थात् सफल प्रवृत्ति से काम लिया जाता है और कहीं विचार-साम्य से।

कल्पनात्मक पद्धति

निगमन-रीति को और भी छोटा रूप दे दिया गया है। आगमन पद्‌धति के अनुसार कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित न कर केवल गणना वा निरीक्षण द्वारा प्राप्त कल्पना के आधार पर निगमन निकाल कर अनुभव द्वारा उनकी परीक्षा की जाती है और देखा जाता है कि वे अनुभव सिद्‌ध ठहरते हैं या नहीं। यदि कोई कल्पना अन्त में अनुभव सिद्ध हो जाय, तो यह आवश्यक नहीं कि उस कल्पना की अन्वय-व्यतिरेक द्वारा परीक्षा की जाय। अनुभव-सिद्ध होना ही सत्यता की अंतिम कसौटी है। यदि अंत में आकर कोई कल्पना अनुभव-सिद्ध हो गई तो उसको ठीक ही मानना पड़ेगा। यदि उसकी

अन्वय-व्यतिरेक आदि आगमन-पद्धतियों द्वारा भी परीक्षा हो चुकी हो तो सोने में सुगन्ध है।

आठवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

कार्यकारण तथा अन्य नियत सम्बन्धों के निश्चित करने की पद्धति

(१) मिल साहब की पद्धतियों को काम में लाने के पूर्व हमको कारण सम्बन्धिनी किन किन बातों का मानना आवश्यक है? उन सिद्धान्तों का भारतीय तर्क में पर्य्याय बतलाइए।

(२) मिल साहब की पद्धतियों की उपयोगिता बतलाइए।

(३) अन्वय-रीति और व्यतिरेक-रीति में भेद बतलाइए। किसमें निरीक्षण से अधिक काम पड़ता है और किसमें प्रयोग से?

(४) गणनात्मक आगमन और अन्वय रीति में अन्तर बतलाइए।

(५) अन्वय रीति के दोष बतलाइए। उनके परिहार का क्या उपाय हो सकता है?

(६) "कारणाभावात् कार्य्यस्याभावः" यह वैशेषिक सूत्र मिल साहब की कौन सी रीति का आधार माना जा सकता है?

(७) अन्वय और व्यतिरेक-रीति को कारण की परिभाषा से घटाइए।

(८) न्याय में व्यभिचार किसे कहते हैं? व्यभिचार का अन्वय और व्यतिरेक-रीति के साथ सम्बन्ध बतलाइए।

(९) व्यतिरेक रीति के दोष बतलाइए और उसी के साथ यह बतलाइए कि इन दोषों का किस प्रकार परिहार हो सकता है।

(१०) अन्वय व्यतिरेक-रीति केवल व्यतिरेक-रीति से किन किन बातों में श्रेष्ठतर है?

(११) मिल साहब की आगमन-पद्धतियाँ अकारण का निराकरण (Elemenation) कर कारण को स्थापित करती हैं। इस वाक्य की व्याख्या कीजिए और इसकी सत्यता पर विचार कीजिए।

(१२) अन्वय-रीति की अपेक्षा व्यतिरेक-रीति द्वारा अधिक निश्चय की प्राप्ति होती है, इसको उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

(१३) नीचे लिखी हुई उक्तियों में किन किन रीतियों का व्यवहार किया गया है और क्या फल निकालने का यत्न किया गया है—

(क) जब से चाय पीना छोड़ा है, तब से अच्छी निद्रा आने लगी है।

(ख) ज्यों ज्यों ऋण सम्बन्धिनी चिन्ता घटती गई, मेरा स्वास्थ्य ठीक होता गया।

(ग) डाक्टर ब्रूस्टर ने यह सिद्ध किया है, कि सीप में जो रंग दिखाई पड़ते हैं, वह उसके आकार का फल है, उसके द्रव्य का नहीं; क्योंकि सीप के आकार के भिन्न पदार्थों में वैसे ही रंग दिखलाई पड़ते हैं।

(घ) इटली के बहुत से हिस्सों में मच्छर और मलेरिया साथ ही साथ कम हो गए हैं; क्योंकि वहाँ नालियों का अच्छा इन्तजाम हो गया है।

(ङ) यदि हवा निकाले हुए बर्तन में एक पर और एक रुपया साथ साथ गिराए जायँ, तो वह एक साथ साथ तह को पहुँचते हैं, और यदि हवा भरे हुए बरतन में पर और रुपया गिराए जायँ, तो रुपया पहले तह तक पहुँचता है, पर पीछे से।

(१४) नीचे लिखी हुई युक्तियों की परीक्षा कीजिए। यदि इनमें कोई दोष हो तो बतलाइए। इसके साथ ही यह भी बतलाइए कि इनमें कौन सी रीति का प्रयोग किया गया है।

(क) जब से बम्बई की शक्कर का प्रचार हुआ, तभी से प्लेग आया है।

(ख) मोहन ने इम्तहान पास करने के लिये टाइटन साहब की टीका की सहायता से शेक्सपीयर का टेम्पेस्ट पढ़ा था। सोहन ने उस टीका

को नहीं पढा। मोहन पास हो गया; सोहन फेल हो गया। अत परीक्षा पास करने के लिये डाइटन साहब की टीका परम आवश्यक है।

(ग) इस त्रिकोण के तीनों कोण नाप कर देखे गए तो दो समकोणों के बराबर है, अतः सभी त्रिकोणों के तीनों कोण दो समकोणों के बराबर होते हैं।

(घ) बहुत दिन नहीं हुए स्वत सृष्टि (Spontaneous generation) के माननेवाले लोग जीव से जीव की सृष्टि (Biogenesis) माननेवाले लोगों के विरुद्ध यह कहा करते थे कि यदि उनका पक्ष ठीक है, तो हवा में असख्य कीटाणु होने चाहिएँ। किन्तु यह बात असम्भव है। अब हाल में यह सिद्ध हो चुका है कि हवा में असंख्य कीटाणु हैं।

(ङ) 'सब भारतवासी झूठे हैं, क्योंकि मेरा अनुभव ऐसा ही है'।

(च) अमेरिका मे इङ्गलिस्तान की अपेक्षा मजदूरी तेज है, क्योंकि अमेरिका मे प्रजातन्त्र राज्य है और वहाँ संरक्षण कर (Protective Tariff) भी है।

(छ) युद्ध का होना श्रेय है। कोई ऐसी जाति नहीं है जो बिना रक्तपात के बढी हो।

(ज) दो विद्यार्थी परीक्षा-भवन मे साथ बैठे थे और उन्होंने एक से ही उत्तर दिए जो ठीक न थे। इसलिये उन्होंने आपस में नकल की।

(झ) मिलों द्वारा माल तैयार करनेवाले देश सदा धनी होते हैं; और जो देश केवल कच्चा बाना (Raw Material) पैदा करते हैं, वे निर्धन रहते है; अतः हम को मिलों की वृद्धि करनी चाहिए।

(ञ) जब से काउन्सिलों को अधिकार मिला है, तब से बजट में घाटा रहता है; इसलिये देश में काउन्सिलों का स्थापित करना ठीक नहीं है।

(ट) चन्द्रमा पृथ्वी की ओर आकर्षित होता है, अत वह पृथ्वी पर गिर पड़ेगा।

(ठ) तैरनेवालों को पानी की रुकावट का सामना करना पड़ता है। जहाँ पानी की रुकावट कम होती है वहाँ तैरना आसान होता है। यदि

वायुमण्डल में चिड़ियों के लिये हवा की रुकावट न रहे तो वह और भी शीघ्र उड़ सकती हैं।

(ङ) इस वर्ष एफ. ए. परीक्षा में बहुत से विद्यार्थी फेल हुए। इसी वर्ष बहुत से नए एफ० ए० तक शिक्षा देनेवाले महाविद्यालय स्थापित हुए। इस वर्ष से पूर्व विद्यार्थी लोग इतनी संख्या में नहीं फेल होते थे। अतः नए महाविद्यालयों का स्थापित होना विद्यार्थियों के लिये हानिकारक है।

(ढ) मुझे इस बात का पूर्ण सन्तोष हो गया है कि रंग बाह्य पदार्थों में नहीं रहता, वरन् वह रोशनी ही से संबंध रखता है; क्योंकि जैसे जैसे रोशनी घटती जाती है, वैसे ही वैसे रंग भी मद्धा पड़ता जाता, है और जब रोशनी का अभाव हो जाता है तभी रंगों का भी अभाव हो जाता है। (बर्क्ले)

(१५) बहु कारणवाद से आगमन-पद्धतियों की सफलता में कहाँ तक बाधा पड़ती है ?

(१६) नीचे की बातें किस प्रकार सिद्ध की जा सकती है—

(क) दो पदार्थों के संघर्षण से गर्मी उत्पन्न होती है।

(ख) अप्रतिबन्ध व्यापार (Free trade) भारतवर्ष के लिये हानिकारक है वा लाभकारक ?

(ग) रोशनी की किरणें जब एक माध्यम से उसकी अपेक्षा घने माध्यम में होकर जाती हैं, तब वह वर्त्तित वा टेढ़ी (Refracted) हो जाती हैं।

(घ) व्यायाम का अभाव अच्छी निद्रा के अभाव का कारण है।

(१७) कोई मनुष्य अपने मित्र के यहाँ भोजन करने गया। घर लौट कर आया और सो गया। सुबह को मरा हुआ मिला। उसकी मृत्यु के कारण पर विवेचना कीजिए।

(१८) सहचारी वैभिन्य रीति (Law of concommutant variation) कार्य्यकारण संबंध निश्चित करने में किस प्रकार सहायता देती है ? उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।

(१६) परिशिष्ट रीति (Method of Residues) किन दो प्रकारों में व्यवहृत होती है ?

(२०) निगमनात्मक पद्धति की आगमन में उपयोगिता बतलाइए।

(२१) एक स्कूल में २५० लड़के थे। एक रोज प्रातःकाल सिर्फ २५ लड़के आए। गैरहाजिरों का नंबर कभी ५० से अधिक नहीं हुआ। यह उस समय था जब कि बुखार का जोर था। साधारणतया गैरहाजिरों का नंबर २० या २५ से अधिक नहीं होता था। उन दिनों कोई विशेष बीमारी या व्याह बरात के दिन न थे। उस रात अलबत्ता एक बात नई थी। उसके एक दिन पूर्व लड़कों ने चंद्रग्रहण के कारण छुट्टी माँगी थी और हेड मास्टर साहब ने छुट्टी नहीं दी थी। जो लड़के गैरहाजिर थे, वे सब हिन्दू थे। स्कूल के मनेजर ने इससे यह अनुमान किया कि यह गैरमामूली गैरहाजिरी चंद्रग्रहण और हेडमास्टर के छुट्टी न देने से संबंध रखती है। ऊपर का निगमन कौन सी रीति के अनुसार निकाला गया? ऊपर के उदाहरण से उस रीति के विशेष दोष बतलाइए।

(२२) छोटी छोटी बातों को देखना और उन पर विवेचना करना विज्ञान की उन्नति में कितना आवश्यक है, इसका उदाहरण सहित उत्तर दीजिए।

नवाँ अध्याय

साक्षित्व (Testimony)

(शब्द-प्रमाण)

और सब कार्य्यों की भाँति ज्ञान के विस्तार में भी सहकारिता की आवश्यकता है। 'सर्वे सर्वं न जानन्ति'। श्रुत वा शब्द प्रमाण को किसी न किसी अंश में मानना पड़ता है। हमारा बहुत सा कार्य दूसरों की गवाही पर चलता है। बहुत से स्थलों में हम दूसरों के दिए हुए ज्ञान की स्वयं जाँच कर सकते हैं; किन्तु बहुत सी अवस्थाओं में हमें दूसरों के साक्षित्व की परीक्षा के साधन उपलब्ध नहीं होते। दुरूह पर्वत शृङ्गों (गौरीशंकर, एवरेस्ट इत्यादि) के विषय में जो कुछ यात्री लोग कहते हैं, उसको सत्य मानने के सिवा और कोई साधन नहीं। यदि मान भी लिया जाय कि हर एक आदमी किसी न किसी प्रकार से वहाँ जाकर अपना सन्तोष कर ले (क्योंकि पर्वत अचल है) किन्तु कालिक घटनाओं के विषय में यह नहीं हो सकता। समय किसी के लिये नहीं ठहरता। 'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।' इतिहास-सम्बन्धिनी घटनाओं के विषय में दूसरों का विश्वास ही करना पड़ता है। वैज्ञानिक निरीक्षणों में भी यही बात है। कभी हम दूसरों की बतलाई हुई

शब्द प्रमाण की आवश्यकता

बात की परीक्षा कर सकते हैं और कभी नही । जब कोई वैज्ञानिक अपने नए आविष्कार की घोषणा करता है, तब उसका लोग सहज ही में विश्वास नही कर लेते, किन्तु उसके कथन पर वह स्वयं प्रयोग करना आरम्भ कर देते हैं; और जब स्वयं उसमें सफलता प्राप्त कर लेते हैं, तब उसमें उनका विश्वास होता है। किन्तु अपनी विफलता के कारण उसमे साधारण तौर से अविश्वास भी नहीं करते । जब बेतार का तार चला ही था, तब बहुत से वैज्ञानिकों ने उसका प्रयोग करना आरम्भ किया। कुछ लोगों को सफलता हुई और कुछ को नहीं । किन्तु जिनको सफलता नहीं हुई, उन्होंने उसका अविश्वास नही किया। हाँ, यदि सभी लोगों को विफलता होती तो सन्देह के लिये स्थान हो जाता । हमको दूसरों का साक्षित्व मानना ही पड़ता है: किन्तु विश्वास की भी सीमा है। यदि सभी का विश्वास करने लग जायँ तो पद पद पर धोखा खाना पड़े । ईश्वर ने हमें बुद्धि दी है। हमें सब बातों को छानबीन करके स्वीकार करना चाहिए। हमको उस आदमी की भाँति नहीं होना चाहिए जिसने कि घर के मातबर नाई के कहने पर अपनी स्त्री के वैधव्य में विश्वास कर लिया था ।

वैज्ञानिक विषयों में यद्यपि विश्वास बिना काम नही चलता, तथापि अविश्वास कोई पाप नहीं है । यदि किसी वैज्ञानिक की बात पर अविश्वास किया जाय तो उसमें उसकी मानहानि नही होती; क्योंकि वैज्ञानिक को यह विश्वास रहता है कि, जो कुछ

यह कहता है, करके भी दिखला सकता है। वैज्ञानिक चमत्कार देखने के लिये किसी विशेष अधिकार की आवश्यकता नहीं, केवल परिश्रम और सावधानी चाहिए। वैज्ञानिक लोग केवल नाम का आदर नहीं करते। बहुत से लोग बड़े बड़े विज्ञानाचार्यों के नाम एवं वैज्ञानिक शब्दों के व्यवहार से ही जनता पर धाक जमा कर अपनी बात का विश्वास करा लेते हैं। यह वैज्ञानिक रीति नहीं। विज्ञान के लिये वास्तविकता चाहिए। अविश्वास का अर्थ अनादर नहीं है। हम बड़े बड़े आचार्यों की बात का अविश्वास करते हुए उनका आदर कर सकते हैं। यह हम जानते हैं कि वे लोग जान बूझ कर धोखा नहीं देते, (कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपना प्रभाव दिखाने के लिये जान बूझ कर भी धोखा दे देते हैं) किन्तु अधिकतर इस बात की सम्भावना रहती है कि वे अपने उत्साहाधिक्य के वश और कभी अनवधानता के कारण धोखा खा गए हों। अनवधानता के अतिरिक्त बड़े आदमी स्मृति की भी भूल कर जाते है। बात को ज्यों का त्यों याद रखना बहुत कठिन है। हम प्रायः अपनी स्मृति के साथ अपने विचार भी मिला देते है। कभी किसी घटना का वर्णन करते हुए उस वर्णन के साथ अपनी राय भी प्रकाशित कर देते हैं और सुननेवाले यह नहीं जान सकते कि उसमें वास्तविक घटना का भाग कितना है और कितना वक्ता का वाक्-चातुर्य और व्यक्तिगत विचार शामिल है। हम बड़े आदमियों के सच्चे होने में संदेह नहीं करते

किन्तु उनकी योग्यता में संदेह कर सकते हैं। वैज्ञानिक के लिये व्यक्ति की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर है। आजकल भारतवर्ष एवं अन्य देशों में बहुत सी ऐसी विचारणीय बातों को वैज्ञानिक सत्य की पदवी दी जाती है। यह केवल नामोपासना का फल है। नामोपासना भी तो बड़ी अंध परम्परा के साथ होती है। बहुत से वैज्ञानिक लोक-प्रसिद्धि पा जाते हैं, फिर चाहे उनके सिद्धांतों का दस बार खण्डन हो जाय, तब भी उनका नाम पुजता ही रहता है। कारण यह है कि कुछ लेखक अपनी भाषाशैली के कारण लोकप्रियता प्राप्त कर लेते हैं। लोग उनकी विषय-प्रतिपादन शैली ही की प्रशंसा नहीं करते, वरन् उनकी बात को अक्षरशः सत्य मानने लगते है। क्लिष्ट लेखकों के ग्रन्थ जनता के लिये मुहर लगे हुए लिफाफों की भाँति दुर्भेद्य रहते है, और यदि ऐसे लेखक लोकप्रिय लेखकों के विषय में कुछ भी कहें तो उनका कथन नक्कारखाने में तूती के शब्द की भाँति लुप्त हो जाता है। रोचकता को सत्य की कसौटी मान लेना सर्वथा भूल है। स्पेन्सर, हक्सले इत्यादि की जो अभी तक धाक जमी हुई है, वह उनके ग्रन्थों के गाम्भीर्य के कारण नही वरन् उनकी लेखनशैली के कारण है।

वैज्ञानिक को अपना मन हर प्रकार के पक्षपात से शुद्ध रखना चाहिए। पक्षपात से शुद्ध रखने का अर्थ यह है कि प्रत्येक बात स्वतन्त्र रूप से जाँची जाय; उसकी जाँच में न रोचकता का, न नए पुराने का, न हित अहित का विचार आना चाहिए।

जिस प्रकार अन्धविश्वास होता है, उसी प्रकार अन्ध अविश्वास भी होता है। बहुत से लोग पहले ही से मन में निश्चय सा कर लेते हैं कि अमुक मनुष्य वा ग्रन्थ की बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। आजकल कुछ नई चाल के लोग बहुत सी पुरानी बातों को, केवल पुरानी होने के ही कारण, अविश्वास योग्य ठहरा देते हैं। केवल नाम के आधार पर अथवा नए वा पुराने के कारण किसी बात को ग्राह्य वा त्याज्य नहीं समझना चाहिए। इस विषय में महाकवि कालिदास का एक बहुत उत्तम श्लोक है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्
न चापि काव्यं नव मित्य वद्यम्।
सन्तः परीक्षान्य तरद्भजन्ते
मूढ़ः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः॥

हमको परीक्षा में बहुत सावधान रहना चाहिए; क्योंकि जब हम अपनी परीक्षा द्वारा किसी की गवाही को स्वीकार कर लेते हैं, तब हम भी उसके साथ गवाहों में शामिल हो जाते हैं। किसी की अविश्वसनीय बात में विश्वास कर हम न केवल अपने को ही धोखे में डालते हैं वरन् दूसरों को भी। जहाँ तक हो सके संदिग्ध बात में विश्वास नहीं करना चाहिए; किन्तु इसी के साथ सब बातों को संदिग्ध मान कर त्याज्य कर देने से भी काम नहीं चल सकता। बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जिनमें अत्युक्ति अवश्य होती है, किन्तु वे बिल्कुल

निस्सार नहीं होती। अत्युक्ति की मात्रा निकाल कर सार भाग अवश्य निकाला जा सकता है। बहुत से लोग पुराणों को अत्युक्ति के कारण बिलकुल त्याज्य समझ लेते हैं, किन्तु उनमें से भी ऐतिहासिक सार निकाला जा सकता है। जहाँ और कोई गवाही वर्त्तमान न हो, वहाँ ऐसी गवाही को ही उस का उचित मूल्य निर्धारित कर काम में लाना पड़ता है। गवाही प्रायः दो प्रकार की होती है—एक साक्षी की स्वयं अनुभूत बातों की और दूसरी परानुभूत बातों की। पहले प्रकार की गवाही को अव्यवहित साक्षित्व (Direct testimony) कहते हैं और दूसरे प्रकार की गवाही को व्यवहित साक्षित्व (Indirect testimony) कहते हैं। न्यायालयों में स्वयमनुभूत साक्षित्व ही स्वीकार किया जाता है। इसका कारण यह है कि न्यायाधीश का बड़ा भारी उत्तरदायित्व होता है। वह दूसरों से सुनी सुनाई बात पर किसी व्यक्ति का स्वातन्त्र्य नहीं छीन सकता। सब अव्यवहित गवाहियाँ भी विश्वास योग्य नहीं होतीं। उनमें वक्ता की सत्यता, उसके कथन की आन्तरिक संबद्धता एवं अन्य साक्षियों के कथन से साम्य, वक्ता की आर्थिक स्थिति, (वह प्रलोभन में तो नहीं आ सकता) एवं उसके घटनास्थल पर उपस्थित होने की सम्भावना, उसके झूठ न बोलने के हेतुओं की अनुपस्थिति आदि सभी बातों का विचार करना पड़ता है। पुस्तक, औषध वा मनुष्यों के सम्बन्ध में जो प्रमाणपत्र (सार्टीफिकट) दिए जाते हैं, उनमें सार्टीफिकट देनेवाले की योग्यता पर ध्यान देना पड़ता

है। औषध के विषय में डाक्टर की गवाही अन्य लोगों की अपेक्षा ग्राह्य मानी जायगी। पुस्तक के विषय में डाक्टर की अपेक्षा उस विषय के ज्ञाता का प्रमाणपत्र अधिक उपयोगी होगा। इन सब बातों के ऊपर भिन्न भिन्न साक्षियों के कथन का साम्य भी देखा जाता है। बिल्कुल झूठ बात के विषय में बनाए हुए साक्षियों के कथन में भेद पड़ जाता है। यद्यपि एक घटना की कई प्रकार से कल्पना हो सकती है, तथापि उसके वास्तविक घटने का एक ही प्रकार हो सकता है। इसी लिये न्यायालयों में जिरह की जाती है और जिरह में छोटी छोटी बातें पूछी जाती हैं जिससे यह मालूम हो सके कि साक्षियों के कथन में कहाँ तक भेद है। एक साक्षी को दूसरे साक्षी की बात सुनने भी नहीं दी जाती। इन सब बातों के होते हुए भी अदालतें धोखा खा जाती हैं। बहुत से वकील लोग इतने चतुर होते हैं कि पहले से ही जिरह की सब सम्भावनाओं को सोच लेते हैं। खैर, तब भी जिरह में बहुत कुछ सच झूठ की परीक्षा हो जाती है। सब स्थानों में कथनभेद को मिथ्यात्व का द्योतक न मान लेना चाहिए। इसमें थोड़ी बहुत वक्ता की निरीक्षणशक्ति, स्मृति, वर्णनशक्ति, विषयज्ञान के न्यूनाधिक्य के कारण भेद की गुंजाइश रहती है। वैज्ञानिक लोगों की जो गवाही होती है, उसमें अविश्वास की कम गुंजाइश होती है, क्योंकि वह प्रायः ऐसे विषय की ही होती है जिसकी चाहे जो कोई जाँच कर ले। कुछ बातें ऐसी

अवश्य है जो वार वार नहीं देखने में आती या बहुत काल पश्चात् होती है। जैसे, किसी तारे का दूसरे तारे पर हो कर गुजरना अथवा पुच्छल तारे का निकलना (हेलीज़ कॉमेट पचहत्तर वर्ष बाद निकलता है) अथवा सर्वग्रास सूर्य्य ग्रहण का पड़ना। ऐसी बातों में दूसरों की गवाही माननी ही पड़ती है। जहाँ दो चार लोगों की गवाही मिल जाती है, वहाँ उस में सन्देह नहीं रहता। साक्षी की योग्यता अवश्य देखनी पड़ती है अर्थात वह उस विषय को पूरे तौर से जानता है या नहीं अथवा उसके पास निरीक्षण का पूरा साधन मौजूद था या नहीं; उसके यन्त्र दूषित तो नहीं थे। कुछ बातें ऐसी हैं जिन में वैज्ञानिकों का मत-साम्य नहीं है। प्लेन्शेट द्वारा भूत प्रेतों की बातचीत, मेज का घूमना, भूतों का फोटो लेना आदि बातों मे बड़े आदमियों के भी साक्षित्व को ग्रहण करने में सावधानी की आवश्यकता है। हमारा यह कहना नहीं कि यह बातें झूठी है। इनके सच्चे होने की बहुत संभावना है, किन्तु वह संभावना वैज्ञानिक सत्य की कोटि तक नहीं पहुँचती। यदि हम किसी बात में विश्वास करते है तो उसके अनुकूल सब गवाही को बिना परीक्षा के ग्रहण करना ठीक नहीं है। वही मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है जो अपने पक्ष की गवाही में भी उतनी कठिन परीक्षा करता है जितनी कि विपक्ष की गवाही में।

विज्ञान और न्यायालयों में गवाहों की स्वानुभूत गवाही से

काम चल जाता है, किन्तु इतिहास में परानुभूत गवाही का ही सहारा लेना पड़ता है । इतिहास-लेखक घटनाओं का वर्णन करता है, किन्तु उसको प्रायः चश्मदीद गवाह नहीं मिलते। उसको परम्परा-प्राप्त प्रचलित कथाओं, चारणादि के कवित्त, शिला लेख, सिक्के, प्राचीन ऐतिहासकों के वर्णनादि से ही काम लेना पड़ता है। इनकी परीक्षा वड़ी छानबीन का काम है। थोड़े दिनों के ग्रन्थों की खोज में ही यह कहना कठिन हो जाता है कि कौन सी शताब्दी का कौन सा ग्रन्थ है। फिर वहुत प्राचीन ग्रन्थों के विषय मे उनका समय निर्धारित करना और उनके लेखक का ठीक पता लगाना, उन में से असल और क्षेपक का अलग करना वहुत ही कठिन हो जाता है। यह कहा जाता है कि जब वर्त्तमान अखबारवाला की बात सच्ची मानी जाती है, तो तत्कालीन लेखकों की बात क्यों न प्रामाणिक मानी जाय। पहले तो अखबारवालों की ही सब बातें सच्ची नहीं मानी जाती। फिर प्राचीन ग्रन्थों में जो लिखने पढने की भूल, (कुन्तीपुत्र का कुत्ती पुत्र हो जाना कोई असम्भव बात नहीं) अन्य लोगों के मिलाए हुए क्षेपक, अपनी जाति के लोगों के स्वाभाविक प्रशंसात्मक वर्णन में अत्युक्ति आदि दोषों को निकाले विना उन ग्रन्थों को किस प्रकार प्रमाण माना जा सकता है। जहाँ कुछ प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन कई पुस्तकों में मिल जाता है, वहाँ इन बातों की छानबीन अच्छी तरह हो जाना सम्भव है। बहुत से ग्रन्थकार अपने

समय का वर्णन करते है और बहुत से ग्रन्थकार परम्परागत बातों का संकलन करके लिखते हैं। दूसरे प्रकार के ग्रन्थकार की अपेक्षा पहले प्रकार के ग्रन्थकार अधिक विश्वास योग्य हैं। उन में भी आत्मश्लाघा, जाति गौरवादि कारणों से सत्य के परिवर्तन हो जाने का भय रहता है। शिलालेखों और सिक्कों की गवाही अधिक प्रामाणिक समझी जाती है, किन्तु वह भी सन्देह से खाली नही, क्योंकि वह प्रशंसात्मक भी हुआ करती है। उससे सन्, संवत का पता अवश्य ही ठीक चल जाता है। इतिहासलेखकों में अन्य जातियों के इतिहासकारो का लेख अधिक प्रामाणिक माना जाता है, किन्तु वे अन्य जातियाँ ऐसी न हों जिनका वर्णन की हुई जाति के साथ राजनीतिक सम्बन्ध रहा हो। इसी लिये भारतवर्ष के विषय मे चीनी लेखकों के वर्णन अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। किसी ग्रन्थ में वर्णित प्राचीन घटना के विषय में परीक्षा करते हुए सब से पहले लेखक के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहिए कि वह लेखक किस काल का था, किस जाति का था, वह उस घटना के कितने दिन बाद पैदा हुआ, उसके विषय में तत्कालीन अन्य लेखकों का क्या विचार है, उसकी अन्य पुस्तकों से उसके कैसे विचार प्रकट होते हैं। इन सब बातों के जान लेने से मालूम हो जाता है कि ग्रन्थकार का कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है। यद्यपि बहुत से गद्य भी पद्य के कान काटते हैं, तथापि पद्य की अपेक्षा गद्य में लिखे हुए ग्रन्थ अधिक प्रामाणिक समझे

जाने चाहिएँ। कभी कभी पद्य की कुछ ऐसी आवश्यकताएँ पड़ जाती हैं कि उनकी पूर्ति में वाक्य को थोड़ा बहुत घटाना बढ़ाना पड़ता है और वाक्य के घटाने बढ़ाने में सत्य का ह्रास हो जाने की आशंका रहती है। गद्य और पद्य दोनों में ही पाठान्तर हो जाना असम्भव नहीं है। इस शंका को दूर करने के लिये एक ग्रंथ की जितनी प्रतियाँ मिल सकें, उनका मिलान किया जाना चाहिए। जो पाठ पूर्वापर से संगति खाय और अधिक से अधिक प्रामाणिक प्रतियों में पाया जाय, वही विश्वसनीय समझना चाहिए। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, ग्रंथ को प्रामाणिक मानने के लिये उसका निर्माण काल निश्चय कर लेना आवश्यक होता है। प्रायः ग्रंथकार लोग अपने चरित्र-नायक के समय की सभ्यता का बहुत कुछ उलट फेर कर वर्णन करने लग जाते हैं। आज कल जो श्रीरामचंद्र जी वा श्रीकृष्णचंद्र जी की लीलाओं का वर्णन किया जाता है, उसमें वर्तमान सभ्यता संबंधी बहुत सी बातों का समावेश हो जाता है। यदि हजार वर्ष पश्चात् आज कल के लिखे हुए ग्रंथों के आधार पर उस समय की सभ्यता का अनुमान किया जाय तो भूल हो जायगी। जो ग्रंथ जिस काल में लिखा गया हो, वह उसी काल की सभ्यता का अच्छा द्योतक होता है। प्राचीन ग्रंथों का निर्माण काल निश्चय कर लेना सहज कार्य्य नहीं होता। हमारे यहाँ के कवियों ने अपनी ख्याति की विशेष परवा न कर अपने विषय में बहुत कम लिखा है। अन्य देशों में भी ऐसा ही

हाल है; किंतु भारतवर्ष में यह बात कुछ विशेषता से है। निर्माण काल के निश्चय करने में भाषा शैली के आधार पर भी अनुमान किया जाता है। किंतु यह मोटी जाँच है। भाषा शैली बहुत काल के पश्चात् बदलती है। भाषा शैली के अतिरिक्त ग्रंथ में ही बहुत सी ऐसी बातें मिल जाती हैं जिनका और माध्यम द्वारा काल निश्चित हो चुका है और उन्हीं बातों के आधार पर ग्रंथ के निर्माण काल का अनुमान कर लिया जाता है। यह अनुमान भाव और अभाव दोनों के ही आधार पर होता है। जैसे यदि किसी ग्रंथ में किसी विख्यात पुरुष का नाम आया तो उससे मान लिया जाता है कि वह ग्रंथ उस महा पुरुष के पश्चात् लिखा गया होगा। कभी कभी उचित स्थान पर किसी विशेष महानुभाव, अथवा किसी महती घटना वा धार्मिक संस्था का वर्णन न होने के आधार पर अनुमान कर लिया जाता है कि अमुक ग्रंथ उससे पूर्व का है। आज कल पाश्चात्य विद्वानों ने वाल्मीकीय रामायण का बौद्ध काल से पूर्व होना जो सिद्ध किया है, वह ऐसी ही अभावात्मक युक्तियों के आधार पर है। उनमें से कुछ मेकडोनल साहब की पुस्तक से पाठकों के लाभार्थ यहाँ पर दी जाती हैं।

(१) सिवाय एक स्थान के जो कि क्षेपक बतलाया जाता है, रामायण में बौद्धों का कोई वर्णन नहीं है।

(२) यद्यपि श्रीरामचंद्र जी पटना होकर गए थे और उस स्थान का भौगोलिक वर्णन रामायण में है, तथापि पा-

टलिपुत्र नाम का उल्लेख नहीं है। मेगेस्थेनीज के समय में पाट-लिपुत्र भारतवर्ष की राजधानी हो गई थी। जब कौशाम्बी और काम्पिल्य आदि स्थानों का वर्णन है, तो पाटलिपुत्र का यदि वह उस समय वर्त्तमान होता तो अवश्य नाम आता।

(२) आदि कांड मे मिथिला और वैशाली अलग अलग राज्य बतलाए गए है, किंतु बुद्ध के समय में यह दोनों राज्य मिल कर वैशाली नाम से पुकारे जाने लगे थे।

यद्यपि इस प्रकार की युक्तियों में संदेह के लिये गुंजाइश रहती है, तथापि जब यह एक दूसरे की पुष्टि करती हुई अपना प्रभाव इकट्ठा कर लेती हैं, तब यह करीब करीब निश्चयात्मक समझी जाने लगती हैं।

ग्रंथों के विषय में प्रायः दो प्रकार की गवाही होती है।

जो गवाही ग्रंथ के भीतर ही मिलती है, उसको भीतरी गवाही कहते हैं। जैसे रामायण के निर्माण काल के विषय में स्वयं उसी ग्रंथ में लेख वर्त्तमान है—

"संवत् सोलह सौ इकतीसा। करौं कथा हरि पद धरि सीसा" यह भीतरी गवाही है। केशवदास जी की रामचंद्रिका के विषय में भीतरी गवाही इस प्रकार है—

"सोरह सै अट्ठावनै, कातिक सुदि बुधवार।
रामचद्र की चंद्रिका, तबलीन्हीं अवतार॥"

इसी प्रकार बहुत से अन्य ग्रंथों में भी भीतरी गवाही मिल जाती हैं, किंतु सब को नहीं मिलती। वहाँ पर खोज और अनु-

मान से काम लिया जाता है। ऐसे स्थान में बहुत सा सहारा बाहरी गवाही से मिलता है। तुलसीदास जी के विषय में बाहरी गवाही रामगुलाम द्विवेदी की वर्त्तमान है। रामगुलाम द्विवेदी के लेखानुसार तुलसीदास जी का जन्म काल संवत् १५८८ में बैठता है। कभी कभी एक ग्रंथ का उल्लेख दूसरे ग्रंथ में आता है; और यदि इस दूसरे ग्रंथ का काल निश्चित हो तो उससे पहले ग्रंथ के काल का भी अंदाज लग जाता है। जैसे सूदन ने सुजानचरित्र में करीब डेढ़ सौ कवियों की वंदना की है। सुजानचरित्र का निर्माण-काल निश्चित है; इससे उस ग्रंथ में जिन जिन कवियों का वर्णन है, वह उस काल से पहले के माने जायँगे। यास्क का समय निर्णय करने में यह युक्ति दी जाती है कि पाणिनी ने करीब १५० पूर्व वैयाकरणों का उल्लेख किया है और यास्क ने २५ वा ३० वैयाकरणों का उल्लेख किया है। इससे यह मालूम होता है कि यास्क पाणिनि से पहले के हैं और इनके और पाणिनि के बीच में कम से कम २०० वर्ष बीत गए होंगे। पाणिनि छठी शताब्दी ईसा पूर्व के माने जाते हैं। ऐतिहासिक खोज में भीतरी और बाहरी गवाही दोनों ही काम में आती हैं और इन दोनों प्रकार की गवाहियों में विशेष अंतर भी नहीं है। भाषा शैली और भीतरी और बाहरी गवाही के आधार पर की हुई परीक्षा में थोड़ा बहुत संदेह तो अवश्य रहता है, किंतु साधारण काम चलाने के लिये यह गवाहियाँ बड़ी उपयोगी हैं।

संदेह के लिये स्थान सभी जगह रहता है; और यदि संदेह के कारण गवाही को बिल्कुल ही त्याज्य समझा जाय, तो संसार का काम न चले। संदेह के कारण आदमी भारी भूल करने से बच जाता है। अति सर्वत्र वर्जयेत् का नियम संदेह में भी लगाना चाहिए। बहुत से स्थानों में भीतरी और बाहरी गवाही बिलकुल सीधी नहीं होती। संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर। यह बिलकुल सीधी गवाही है; किन्तु सब स्थानों में ऐसी सीधी गवाही नहीं मिलती। वहाँ पर भीतरी गवाही एवं बाहरी गवाही से प्राप्त घटनाओं के आधार पर अनुमान करना पड़ता है। ऐसे अनुमान का एक उदाहरण मिश्र बंधुओं के नवरत्न से दिया जाता है। यह अनुमान चंद कवि के जन्म काल के विषय में है। "चंद के कथनानुसार पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ वि० में हुआ। अनुमान से जान पड़ता है कि यह पृथ्वीराज से अवस्था में कुछ बड़े थे। क्योंकि एक तो पृथ्वीराज इनकी सलाहों को आदर से सुनते थे, दूसरे एक स्थान पर उनके अपनी सलाह न मानने पर आप ने लिखा है कि राजा ने धन और वय से मत्त होकर मेरी सम्मति नहीं मानी। यदि यह राजा से बड़े न होते तो ऐसा लिखने का इन्हें साहस ही न होता। फिर यदि यह ऐसा लिखते भी तो राजा इन पर अवश्य रुष्ट हो जाते। पर पृथ्वीराज का इनसे रुष्ट होना पाया नहीं जाता। ऐसा लिखने के पीछे भी इनका पूर्ववत् मान बना रहा। इसके सिवा

पृथ्वीराज की भगिनी प्रथा कुँवरि के विवाह के समय इनका पुत्र जल्हण ऐसा गुणी हो चुका था कि रावल समरसिंह ने उसे हठ कर के दायज में माँग लिया। वह उस समय संभवतः २५ वर्ष का होगा और चंद शायद ४५ साल के हों। इसके पीछे संभवतः १२२८ में पृथ्वीराज ने एक ख़ज़ाना पृथ्वी के नीचे खुदवा कर पाया था, जिसका वर्णन रासो के ७३८वें पृष्ठ में है। पृथ्वीराज की मृत्यु संवत् १२४८ में ४३ वर्ष की अवस्था में हुई थी। उसी समय चंद की भी मृत्यु हुई; क्योंकि वह राजा के साथ ही मारे गए थे। १२४८ वि० में चंद की अवस्था संभवतः ६५ वर्ष की होगी। अतः उनका जन्म काल ११८३ वि० अथवा सन् ११२६ ई० के लगभग समझ पड़ता है। इनकी अवस्था इससे बहुत अधिक भी नहीं जान पड़ती; क्योंकि यदि अधिक बुड्ढे होते तो मृत्यु पर्यंत युद्धों में न सम्मिलित रह सकते। इस दूसरे हिसाब से भी उनकी अवस्था पृथ्वीराज से प्रायः २८ वर्ष अधिक निकलती है, जो कि प्रथम अनुमान से भी मिलती है। चंद की मृत्यु पृथ्वीराज के साथ ही हुई, यह बात प्रसिद्ध है। अतः चंद सन् ११९२ ई० में मरे। कहते हैं, जब शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को पकड़ ले गया, तब चंद राजा को छुड़ाने के विचार से गोर देश को गये और वहीं मारे गये।"

नवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

साहित्य

(१) शब्द प्रमाण की आवश्यकता बतलाइए। इतिहास और विज्ञान दोनों के ही सम्बन्ध में उत्तर दीजिए।

(२) साक्षी का मूल्य निर्धारित करने में किन किन बातों पर ध्यान रखने की आवश्यकता है?

(३) प्रायः लोग कहा करते हैं कि जब हम अखबारवालों की बातों पर विश्वास कर लेते हैं, तब हम अपने पूर्वजों की बातों में क्यों न विश्वास करें? हमारे पूर्वज झूठ नहीं बोल सकते। ऐसे लोगों का विचार कहाँ तक ठीक है?

(४) पद्य की अपेक्षा गद्य की पुस्तकों का क्यों अधिक विश्वास किया जाता है?

(५) भीतरी और बाहरी गवाही में अन्तर बतलाइए।

(६) यदि दस आदमियों की गवाही एक मनुष्य के खिलाफ और दो मनुष्यों की गवाही उसके पक्ष में हो, तो दस आदमियों की गवाही मानी जायगी या दो आदमियों की?

(७) "इतिहास के लिये समकालीन मनुष्यों का लेख उतना ही मूल्यवान् है जितना कि ३०० वर्ष पीछे लिखनेवाले का लेख" इस कथन की विवेचना कीजिए।

दसवाँ अध्याय

आगमन की भूलें

बहुत से लोग सोच विचार करने को आलसी लोगों का काम बताते हैं; किन्तु ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो सोचने का भी आलस्य करते हैं। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि दिन भर सोच विचार ही में पड़े रहें, किन्तु यह कि विचार करने से हमको डरना नहीं चाहिए। जो बात हमें प्रिय होती है, उसी पर तो हम विचार करते हैं। अप्रिय बात के श्रोता और वक्ता भी दुर्लभ है। "अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः"।

आगमन की भूलें

जिस प्रकार शारीरिक आलस्य होता है, उसी प्रकार मानसिक आलस्य भी होता है। संसार में जो भूलें होती है, उनका मूल प्रायः इसी मानसिक आलस्य में है। कभी कभी मानसिक आलस्य के साथ मानसिक कायरता भी लगी हुई होती है। लोग अप्रिय निगमनों से डर कर भागते हैं और उनका सामना न करके सत्य के विरोधी बन जाते हैं। हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः। अस्तु; सभी भूलें मानसिक भूलें हैं, किन्तु सुबिधा के लिये हम इनके चार विभाग करते है—

(१) भाषा सम्बन्धी भूलें,

(२) निरीक्षण सम्बन्धी भूलें,

(३) विचार सम्बन्धी भूलें और

(४) व्यक्तिगत पक्षपात।

भाषा हमारे विचारों की मुख्य व्यंजक है। इसके सहारे से हमको विचार में बड़ी सुलभता होती है। यदि भाषा के संकेत न होते तो हमारा सामाजिक व्यवहार कठिन हो जाता। अँग्रेजी भाषा के प्रख्यात लेखक Swift साहब ने अपने "गुलीवर का यात्राविवरण" (Gulliver's Travels) में एक भाषा-रहित स्थान की कल्पना की है। वहाँ लोग व्यवहार की सब चीजें अपने साथ एक गठरी में बाँधे रहते थे; और जब किसी पदार्थ के विषय में किसी दूसरे मनुष्य के साथ उनको वार्त्तालाप करने का अवसर पड़ता था, तब वह उन्हीं पदार्थों को उस मनुष्य के सामने रख देते थे। भाषा के अभाव में हमारी भी ऐसी अवस्था हो जायगी। भाषा के भी अन्य पदार्थों की भाँति बड़े दुरुपयोग होते हैं। शब्द बिना विचार किए हुए व्यवहार में आने लगते हैं और बड़ा अनर्थ कर देते हैं। लोग शब्दों को ही वस्तु समझने लग जाते हैं। शब्दों की प्रभावोत्पादिनी शक्ति से व्याख्यान-दाता लोग बड़ा लाभ उठाया करते हैं। एक संस्कृत का वाक्य, चाहे वह किसी ग्रन्थ का हो, बहुत सी युक्तियों का काम करता है। कभी कभी लोग इस कारण से मनगढ़न्त श्लोक भी रच डालते हैं। सुननेवाले यह कभी नहीं सोचते कि ग्रन्थों

भाषा सम्बन्धी भूलें

में विपरीत से भी विपरीत प्रमाण मिल जाते हैं। कभी कभी लोग धोखा देने के लिये अथवा अज्ञानवश पूर्व पक्ष का भी प्रमाण देने लग जाते हैं। हमारे कहने का यह तात्पर्य्य नहीं है कि प्रामाणिक ग्रन्थों को आदर की दृष्टि से न देखें; किन्तु इसके साथ ही हम को अपनी बुद्धि के नैसर्गिक अधिकारों को भी न खो बैठना चाहिए। प्रायः लोग अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिये शब्दों का अर्थ और का और कर देते हैं; और शब्दों की अनन्त शक्ति से अनुचित लाभ उठाते हैं। हमको इन सब बातों से पूर्णतः सचेत रहना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दूसरा आदमी जो प्रमाण दे रहा है, उसका सदुपयोग करता है या नहीं। बहुत से लोग कुछ चुने हुए शब्दों (जैसे विधर्मी, नास्तिक. म्लेच्छ इत्यादि) का प्रयोग कर दो जातियों वा संप्रदायों में विरोध डाल देते हैं। यद्यपि देखा जाय तो ऐसे शब्द सार-शून्य होते हैं, तथापि वे शब्द बड़ा काम कर जाते हैं। कभी कभी लोग स्वार्थ-साधन के लिये स्वदेश, जाति-प्रेम आदि शब्दों का प्रयोग करके लोगों का चित्त आकर्षित करके उन्हें धोखे में डाल देते हैं। बहुत से विज्ञापन-दाता स्वदेशी के नाम से लोगों के हाथ नाम मात्र स्वदेशी पदार्थ बेचा करते हैं। बेकन ने शब्द-जन्य भूलों को Idols of the market place अर्थात् बाजार के अन्ध विश्वास कहा है। लोग प्रायः भाषा का ज्ञान बाजार में प्राप्त करते है। जो बातें बाज़ार में कही जाती हैं, वही साधारण मनुष्यों का ज्ञान बनती है। भाषा

के सम्बन्ध की जो भूलें ऊपर बतलाई गई है, उनके अतिरिक्त उपमादि अलंकार सम्बन्धी भूलें भी इसी में आती हैं। बहुत से शब्द प्रचार पा जाते है, किन्तु उनका ठीक वैज्ञानिक अर्थ न मालूम होने के कारण उनके बारे में ऐसी बातें कह दी जाती हैं जो सत्य नहीं होती। जैसे साधारणतया लोग व्हेल (Whale) को मछली कहते है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से व्हेल मछली नहीं है। मछली अंडे देती है, किन्तु व्हेल के पेट से बच्चा पैदा होता है। यह बाजारू भाषा के व्यवहार का फल है। दूसरा उदाहरण सूर्योदय का है। भाषा के ऐसे व्यवहार के कारण लोग विश्वास करते है कि सूर्य्य चलता है, पृथ्वी स्थिर है। किसी जगह की कोई चीज मशहूर हो जाती है, फिर वहाँ की सड़ी से सड़ी चीज लोग खरीदनें को तैयार हो जाते है। बहुत से लोग ऐसे है जो लंका को वास्तविक सोने की मानते हैं। परमाणुओं में जो मिलने की शक्ति है, उसको प्रेम (Affinity) कहते है। यदि इसके आधार पर कोई परमाणुओं को चेतन मान ले, तो यह भी भाषा सम्बन्धी भूल का उदाहरण होगा। न्याय शास्त्र में ये भूलें छल के अन्तर्गत हैं। इन भूलों का विशेष विवरण निगमनात्मक न्याय की भूलों के सम्बन्ध में दिया है। भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" नामक प्रहसन में ऐसे लोगों की बड़ी धूल उड़ाई है जो धार्मिक ग्रन्थों के प्रमाण देकर मद्य मांस का खाना श्रेय मानते हैं।

निरीक्षण के प्रकरण में बतलाया गया था कि साधारण देखने में भी कितनी सावधानी की आवश्यकता है। निरीक्षण सम्बन्धी भूलें प्रायः दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जो न देखने से सम्बन्ध रखती हैं और दूसरी वे जो ठीक न देखने से सम्बन्ध रखती है। न देखने की भूलों को Falacies of non-observation कहा है। ठीक न देखने की भूलों को अंग्रेज़ी में Falacies of mal-observation कहा है।

निरीक्षण सम्बन्धी भूलें

ईश्वरकृष्ण कृत सांख्य कारिका मे न देखे जाने के निम्न-लिखित कारण दिए गए हैं—

अति दूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात् समानभिहाराच्च॥

बहुत दूर होने से, बहुत पास होने से, इन्द्रिय दोष से, ध्यान बँट जाने से, बहुत ही सूक्ष्म या छोटा होने से, वस्तु के छिप जाने से, (अन्य पदार्थों के प्राबल्य से)—जैसे सूर्य्य के प्रकाश से दिन में तारागणों का न देखना—और समान पदार्थों में मिल जाने के कारण वस्तु का प्रत्यक्ष नही होता। साधारण-तया यह सब कारण ठीक ही है। अब लोगों ने दूरवीक्षण (Telescope) और अणुवीक्षण (Microscope) यन्त्रों द्वारा दूरी और सूक्ष्मता की बाधकता को बहुत कुछ कम कर दिया है; और बहुत से यन्त्रों द्वारा इन्द्रियों के दोष को भी घटा दिया है। इसलिये हम इन पर विचार न करके

मन के अनवस्थान दोष पर विशेष रीति से विचार करेंगे। अभिभव और समानाभिहार दोषों के भी हमको बहुत से उदाहरण मिलते हैं। अभिभव दोष के कारण सूर्य के इर्द गिर्द की स्थिति अभी तक लोग अच्छी तरह से नहीं जान सके हैं। इसके लिये लोग खग्रास ग्रहण की बाट देखा करते हैं, जिससे कि इस दोष की निवृत्ति हो जाय। और व्यवधान दोष के परिहार के लिये आज कल लोग एक्सरेज़ (X-rays) से काम लेते हैं। मन का अनवस्थान ही गुरुतम दोष है। इसके कारण होनेवाली कुछ भूलों का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है।

निरीक्षण के लिये साधारणतया चित्त की एकाग्रता परमावश्यक है। विना इसके मोटी से मोटी बात भी नहीं दिखलाई पड़ती। यह सत्य ही है कि लोग आँखें होते हुए भी नहीं देखते और कान रखते हुए भी नहीं सुनते। निरीक्षण की भूलें केवल विक्षिप्त चित्तवाले ही नहीं करते, वरन् बड़े बड़े सावधान चित्तवाले भी कुछ नैसर्गिक प्रवृत्तियों के वश कभी कभी इस प्रकार की भूलें कर बैठते हैं। विपक्षी उदाहरणों का न देखना भी इसी प्रकार की भूल है। बहुत से अन्ध विश्वास जो समाज में प्रचलित हो जाते हैं, वह विपक्षी उदाहरणों के न देखने का ही फल होते हैं। लोगों का विश्वास है कि यदि बिल्ली रास्ता काट जाय, तो अवश्य कुछ हानि होगी। यदि

(क) उदाहरणों का न देखना

आकस्मिक योग से हानि हो गई तो कल्पना की पुष्टि हो जाती है और वे लोग बड़ी दृढ़ता के साथ कहने लगते हैं कि अमुक अवसर पर बिल्ली रास्ता काट गई थी और अमुक हानि हुई। किन्तु वे लोग ऐसे उदाहरणों को नहीं देखते कि जब बिल्ली के रास्ता काट जाने पर भी कोई हानि नही होती। इसमें लोगों को विशेष दोष भी न देना चाहिए, क्योंकि अभाव की अपेक्षा भाव जल्दी दिखाई पड़ जाता है। अभावात्मक उदाहरणों के न देखने को बेकन ने Idols of the tribe* अर्थात् "जाति के अन्ध विश्वास" कहा है। विज्ञान के लिये भाव और अभाव दोनों ही आवश्यक हैं। इन अन्ध विश्वासों को भेड़िया धसान कहते हैं। महात्मा तुलसीदास जी ने एक दोहे में भेड़िया धसान का उदाहरण दिया है—

लही आँख कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय।
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाय॥

---

* बेकन ने अभावात्मक उदाहरणों का न देखना मनुष्य जाति का स्वाभाविक मानसिक झुकाव माना है। उन्होंने सात प्रकार के मानसिक झुकाव माने हैं। उनमें तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पहले प्रकार का झुकाव इस प्रकार बतलाया गया है। मनुष्य ससार मे आवश्यकता से अधिक व्यवस्था और नियम देखना चाहता है। बात चाहे ठीक हो या गलत, किन्तु केवल व्यवस्था के लिये वैसा ही मान लेना इसका उदाहरण है। कान्ट को बारह सज्ञाएँ (Categories) इसी झुकाव का फल हैं। वृत्त (Circle) दीर्घ वृत्त (Ellipse) की अपेक्षा बहुत पूर्ण है। किन्तु यदि केवल इस कारण कोई यह विश्वास करे कि पृथ्वी की चाल वृत्त मे है, तो यह इस प्रकार की भूल का उदाहरण होगा। दूसरी रीति का झुकाव इस प्रकार बतलाया गया है। जो बात सहज में और बहुत जल्द समझ में आ जाती है, मनुष्य उसे सत्य मानने को शीघ्र तैयार हो जाता है। तीसरी रीति का झुकाव भी इसी प्रकार का है। जो बात प्रिय होती है, उसी को मनुष्य सत्य मानना चाहता है।

लोग समझा करते हैं कि जैसा हम कहते हैं, वैसा ही होगा किन्तु इस बात का कष्ट नही उठाते कि जैसा वह कहते हैं, वास्तव में वैसा होता है या नहीं। कुछ लोग कोपरनिकस के सिद्धान्त के विरुद्ध यह कहते थे कि यदि पृथ्वी घूमती होती, तो ऊँची मीनार पर से गिराया हुआ पत्थर कुछ हट कर गिरता, जैसा कि मस्तूल के सिरे पर से गिराई हुई गेंद ठीक मस्तूल के नीचे न गिरेगी। जो उदाहरण लोग देते थे, यदि उसकी सत्यता की परीक्षा कर ली जाती तो वे ऐसा न कहते। मस्तूल पर से गिराया हुआ गेंद मस्तूल के नीचे ही गिरता है, हट कर नहीं; क्योंकि वह गेंद जहाज की गति का अनुकरण करता है। वैज्ञानिक को कोई बात ऐसी नहीं कहनी चाहिए जिसकी परीक्षा न हुई हो। उसको छोटी से छोटी चीज़ पर ध्यान रखना पड़ता है। परिशिष्ट रीति को बतलाते हुए यह बात दिखाई गई थी कि छोटी छोटी बातों को छोड़ देने के कारण कितनी हानि हो जाती है। छोटी छोटी बची हुई बातों को ध्यान में ले आने ही के कारण Argon नामक गैस का आविष्कार हुआ था। बहुत से लोगों का ऐसा विश्वास था कि पूर्ण चन्द्रोदय में बादलों के भगाने की शक्ति है। यह विश्वास हरशेल (Herschel) ऐसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक को भी था। परन्तु देखने से मालूम पड़ा कि यह विश्वास भ्रममूलक था। यह विपरीत उदाहरणों के न देखने का ही फल था। पूरे तौर से न देखने का विज्ञान के इतिहास में एक और अच्छा उदाहरण पाया जाता है। पहले जमाने में लोग

यह समझा करते थे कि जलने की क्रिया में कुछ पदार्थ नष्ट हो जाता है। लेकिन जलने से जो कार्बन इत्यादि हवा में मिल जाता था, उसको वह नहीं देखते थे। जब उन सब चीज़ों का भी हिसाब लगाया गया, तब ज्ञात हुआ कि जलने की क्रिया में जली हुई चीज का बोझ कुछ बढ़ जाता है। तब लोगों ने समझा कि जलने में कुछ निकल नहीं जाता, वरन् कुछ आकर मिल जाता है। इसी खोज में ओषजन (Oxigen) का आविष्कार हुआ था।

गुप्त रूप से काम करनवाली शक्तियों को न देखना

पुराने जमाने में सहृदय चूर्ण (Sympathetic Powder) के नाम से एक औषध बड़ी प्रसिद्धि पा गई थी। उसने वैज्ञानिकों में भी अपना सिक्का जमा लिया था। वह इस प्रकार का था कि यदि किसी को किसी हथियार की चोट लग जाय, तो चोट पर वह चूर्ण न लगाया जाकर हथियार पर लगा दिया जाता था और चोट अच्छी हो जाती थी। किन्तु उसके साथ यह उपदेश दिया जाता था कि जख़्म को साफ और ठंढा रक्खा जाय और खाने पीने का समुचित प्रबन्ध रक्खा जाय। ऐसा करने पर चोट प्रायः अच्छी हो जाती थी। किन्तु चोट के अच्छे होने का कारण सहृदय चूर्ण न था, वरन् जख़्म का साफ रखना और अन्य प्राकृतिक क्रियाएँ थीं जिन बातों को सहृदय चूर्ण में विश्वास रखनेवाले लोग नहीं देखते थे।

मिल साहब ने एक दूसरा बहुत ही अच्छा उदाहरण

दिया है कि बहुत से लोगों का विश्वास है कि फ़ज़ूल ख़र्च लोग उन कंजूस लोगों की अपेक्षा, जो अपना धन सूद पर चलाया करते हैं, देश का कला-कौशल बढ़ाने में अधिक सहायता देते हैं। देखने में यह बात ठीक भी मालूम पड़ती है, क्योंकि अगर फ़ज़ूल ख़र्च लोग दिखावटी चीज़ों को न ख़रीदें, तो समाज से कला-कौशल की उन्नति उठ जाय। लेकिन लोग इसके साथ यह नहीं देखते कि जिन कंजूस लोगों का वह अनादर करते हैं, उनका धन बैंकों में पड़ा पड़ा सोया नहीं करता। वह धन भी मिलों, कारख़ानों और कला कौशल की उन्नति में ही खर्च होता है। जो बड़े बड़े मुख्य कारण गुप्त रीति से काम करते रहते हैं, उनके ऊपर पूर्णतः विचार न करने के कारण लोग बहुत से ग़लत नतीजे निकाल बैठते हैं।

निरीक्षण के अधिकरण में बतलाया गया है कि मानसिक क्रियाओं पर निरीक्षण का प्रभाव पड़ता है। कभी कभी हम

ठीक न देखने की भूलें

किसी एक विषय के ध्यान में ऐसे मग्न हो जाते हैं कि इन्द्रिय-सन्निकर्ष से जो कुछ संवेदन होता है, उस पर से गलत अनुमान करके कुछ का कुछ देखने लगते हैं। इसको भ्रम कहते हैं। प्रत्यक्ष की परिभाषा * करते हुए न्याय शास्त्र में

---

* "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नज्ञान म व्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकम्' न्यायसूत्र १–१–४

अव्यभिचारी शब्द से संशयात्मक ज्ञान का निषेध कर दिया है। व्यवसायात्मक शब्द द्वारा भ्रमात्मक ज्ञान का निषेध कर दिया है। संशयात्मक ज्ञान इस प्रकार का होता है कि उसमें दो बातों के बीच में यह निश्चित नहीं हो सकता कि कौन सी बात ठीक है। भ्रम में कुछ का कुछ ज्ञान होता है। संशयात्मक ज्ञान, न देखने और भ्रमात्मक ज्ञान के बीच में आता है। न देखने में तो कुछ दिखाई ही नही देता; और भ्रम में कुछ का कुछ दिखाई पड़ता है। संशय में दो बातों की सम्भावना रहती है और उन में यह नही मालूम पड़ता कि कौन ठीक है। मृग तृष्णा का जल, रज्जु का सर्प भ्रम के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। शाम के वक्त किसी ठूँठ को देख कर यह न निश्चय कर सकना कि यह मनुष्य है या ठूँठ सन्देह कहलावेगा। चन्द्रमा उदय और अस्त के काल में बड़ा दिखाई पड़ता है। विज्ञान के इतिहास में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। बहुत दिनों तक लोगों का यह विश्वास था कि दस गुनी भारी चीजें दस गुनी तेजी से गिरती हैं *। कभी कभी ऐसी भूलें मनुष्य जाति के मानसिक विकास में सहायक हुई हैं। इन भूलों के सम्बन्ध में स्मृति की भूलों पर विचार करना आवश्यक है। कुछ

* परन्तु हवा निकाले हुए वर्तन मे पर और सोने का सिक्का दोनो बराबर तेजी से गिरते हैं।

तो लाग देखने में ही भूलें कर देते हैं; और कुछ जा देखते हैं, उसके बताने में भूलें कर देते हैं। साधारण लोग ही नहीं, बड़े आदमी भी जब अपने सम्बन्ध में किसी घटना का वर्णन करते हैं, तो बिना प्रयोजन के भी थोड़ा बहुत नमक मिर्च मिला देते हैं। इसका कारण यह है कि वह लोग स्मृति के साथ अपने विचारों का भी मिश्रण कर देते हैं। हर एक आदमी अपने सम्बन्ध की घटनाओं पर विचार करता रहता है। जब वह उस घटना का वर्णन किसी से करता है, तब उसके साथ अपने विचार भी मिला देता है। इतिहास लिखनेवाले भी इसी प्रकार की भूलें करते है। लोग जब अपना दुःख वर्णन करते हैं, तब उसे बहुत बढ़ा हुआ दिखलाते है। विज्ञान में लोग भाषा के लालित्य की ओर इसी कारण विशेष ध्यान नही देते; क्योंकि अच्छे वर्णन के हेतु बहुत से लोग सत्य का ध्यान नही रखते । विज्ञान के लिये सत्य से ऊँचा और कोई आदर्श नही। विज्ञान के लिये केवल सत्यं ब्रूयात् ही आवश्यक है, प्रियं ब्रूयात् की आवश्यकता नही।

विचार-सम्बन्धी वर्णन बहुत सी भूलों का निगमनात्मक तर्क सम्बन्धी भूलों के साथ हो चुका है।

विचार सम्बन्धी भूलें आगमन सम्बन्धिनी भूलों का यहाँ पर वर्णन किया जाता है।

केवल आनुपूर्वी को देख कर ही बिना खोज किए कार्य्य कारण सम्बन्ध स्थापित कर देना भारी भूल है। इस भूल के

उदाहरण मनुष्य जीवन में बहुत मिलते है। कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु के पूर्व आने मात्र से उसका कारण नहीं कही जा सकती। बहुत सी बातें ऐसी हैं जो पूर्ववर्त्तिनी होती है; पर उनका कुछ भी सम्बन्ध नही होता। इसी दोष से बचने के लिये कारण की परिभाषा मे अन्यथा सिद्ध शून्यता का प्रयोग किया गया है। कोई मनुष्य अपने घर से निकला। घर से निकलते ही कोई काना मिल गया। अब यदि दैवयोग से वह कार्य्य सिद्ध नही हुआ, तो काने को ही उस कार्य की विफलता का कारण समझ लेना इस भूल का उदाहरण है। यदि कोई मनुष्य सूर्योदय के समय रोज खेत पर जाया करे, तो सूर्य उसके घर से बाहर आने का कारण नहीं समझा जा सकता। यदि शरद ऋतु के आने के पूर्व काँस फूलते हैं, तो कॉस शरद का कारण नही। जिस गाँव में मुरगा नही होता, वहाँ क्या सवेरा नहीं होता? इसमें बहुत वैज्ञानिक सत्य है।

कारण सम्बन्धी भूलें

निरीक्षण के सम्बन्ध में इसका उल्लेख हो चुका है। लोग अपने सिद्धान्त को सिद्ध करने में इतने मग्न हो जाते हैं कि विपरीत उदाहरणों को देखते ही नही। विपरीत उदाहरणों को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। विपरीत उदाहरणों की व्याख्या मिल जाय तो अच्छा है; किन्तु विपरीत उदाहरणों के होते हुए सिद्धान्त व्यापक नहीं कहे जा सकते।

विपरीत उदाहरणों पर न विचार करना

जहाँ पर कार्य में कई बातें हों, वहाँ पर उनमें से एक बात को लेकर अन्य सब बातों का कारण मान लेना भूल है।

कार्य्य कारण संबंधी भूल-कार्य की एक बात को कारण मान लेना

वास्तव में वह और दूसरी बात किसी और बात का कार्य होगी। जैसे, किसी को सर्दी भी हो और बुखार भी हो और कोई कहे कि बुखार का कारण शीत है। वास्तव में सर्दी और बुखार दोनों ही किसी और कारण के कार्य है। गर्मी और रोशनी प्रायः एक साथ देखी जाती है। गर्मी को रोशनी का कारण और रोशनी को गर्मी का कारण मानना इसी प्रकार की भूल है।

जिस प्रकार कार्य में बहुत सी बातें होती हैं, उसी प्रकार कारण में भी बहुत ही बातें होती हैं। उनमें से आवश्यक बातों को

एक ही बात को पूरा कारण मान लेना

छोड़ कर अनावश्यक बातों को कारण मान लेना अथवा कारण की बहुत सी 'बातों में से एक को पूरा कारण मान लेना इस प्रकार की भूल है। दिया सलाई का भीगा न होना दिया सलाई जलने के लिये आवश्यक है, किन्तु उसको कारण नहीं मान सकते। फुरसत होना अच्छे लेखक होने के लिये आवश्यक है; लेकिन फुरसत होना लेखक बनने का कारण नहीं है।

सहचार और आनुपूर्वी कार्य कारण सम्बन्ध निश्चित

केवल सहचार या आनुपूर्वी क कयाकारणमम्बन्ध समझना

करने में सहायक होते हैं; किन्तु सब सहचार और आनुपूर्वी आवश्यक नहीं होते। इनकी आवश्यकता देख कर

कार्य कारण सम्बन्ध बतलाने का निश्चय कर सकते हैं; अन्यथा नहीं। नहीं तो गधे को घट का कारण मानने में कोई बाधा नहीं है।

उचित कारण के स्थान में अन्तिम कारण या लक्ष्य का कारण बतला देना जैसे कोई आदमी किसी कमजोर छत पर

अन्तिम कारण को कारण बतलाना

खड़ा हो और वह छत टूट जाय और आदमी गिर पड़े, तो यह कहना कि वह गुरुत्वाकर्षण के कारण गिर पड़ा, ठीक न होगा।

बहुत काल पेश्तर की किसी पूर्व-भाविनी घटना को कारण मान लेना—जैसे नदी में स्नान करने के दो मास पश्चात् बुखार

आनुपूर्वी में काल का ध्यान न रखना

आने पर स्नान को कारण मानना इस प्रकार की भूल है। काल के साथ स्थान का भी ध्यान रखना चाहिए। रूस में अगर पानी बरसे तो उसके कारण भारतवर्ष में ठंढ नहीं हो सकती।

बहुत से लोग नियम बनाने के लिये इतने उतावले रहते हैं कि जहाँ उन्होंने दो चार समानता के उदाहरण देखे, वहीं

सामान्यीकरण की भूल

उन्होंने नियम बना लिया। यदि गणनात्मक अनुमान हो तो यह नहीं देखते कि गणना पूरी तौर से हो गई या नहीं। और वैसे अनुमान में भी यह नहीं देखते कि इतने काफी उदाहरण ले लिए गए हैं कि आकस्मिकता के लिये स्थान न रह जाय और न घटनाओं में कोई सम्बन्ध देखने का प्रयत्न करते हैं। यह पहली रीति

के दुष्प्रयोग का फल है। जो बात जाति के एक भाग के लिये ठीक हो, उसे पूरी जाति के लिये ठीक मान लेना ठीक नहीं है। लोग विशेष जातियों और संस्थाओं की दो एक बातों पर से उनको बिलकुल बुरा कहने में नहीं चूकते। यह भी सम्भव है कि जो बात उनको बुरी लगी हो, वह उनके विशेष मानसिक झुकाव के कारण हो। कभी जल्दी में लोग व्याप्य को व्यापक बना देते हैं और व्यापक को व्याप्य। इसको कुछ नैयायिकों ने विपरीत व्याप्ति नाम का दृष्टान्ताभास कहा है। यदि कोई कहीं पर अग्नि और धूआँ देखे और उससे यह अनुमान कर ले कि जहाँ जहाँ अग्नि है, वहाँ वहाँ धूआँ है तो इसी प्रकार की भूल होगी।

जो ऐसी भूल करता है, उसके लिये यही अनुमान किया जा सकता है कि उसने अपने निरीक्षण को पूरा विस्तार नहीं दिया। यदि अग्नि में रक्खे हुए लोहे के पिण्ड को अथवा कोयलों को देखा जाता या उनको अपने विचार में रक्खा जा कर अनुमान किया जाता तो ऐसी भूल न होती।

उपमान की भूलें ऊपर की भूलों से ही सम्बन्ध रखती हैं।

उपमान की भूलें

केवल समानता के आधार पर ही अनुमान कर लेना इसी प्रकार की भूल है। गौण बातों में समानता देखना और मुख्य बातों की असमानता की ओर ध्यान न देना इस प्रकार की भूलों का मुख्य कारण है। जो लोग इस आधार पर यह कहते हैं कि

यूरोपीय देशों में खेती का काम मशीन से होता है, इसलिये भारतवर्ष में भी मशीन का प्रयोग होना चाहिए, वे इन देशों के मुख्य भेदों पर ध्यान नहीं देते। हिन्दुस्तान में अभी मजदूरी इतनी तेज़ नहीं है और न आदमियों की कमी है। दूसरी बात यह है कि यहाँ पर खेत प्रायः छोटे छोटे होते हैं। यहाँ के कृषक गरीब हैं और यहाँ जमींदार खुद अपनी खेती बहुत कम करते हैं। यंत्रों के आने में और सुधारने में इतनी सुविधा नहीं जितनी कि यूरोपीय देशों में है। प्लेटो ने अपनी एक पुस्तक में न्याय के विषय में एक वादी से कहलाया है कि न्यायी पुरुष को दूसरों के धन को हिफाजत से रखने के लिये यह जानना चाहिए कि उसकी चोरी किस किस प्रकार से हो सकती है, इसलिये न्यायी पुरुष एक प्रकार का चोर हुआ। चोर बनने के लिये चोरी के ज्ञान की आवश्यकता नहीं; उसके लिये तो चोरी के संकल्प और क्रिया की आवश्यकता है। जिस प्रकार चोर धर्म के ज्ञान से धर्मी नहीं बन जाता, उसी प्रकार न्यायी पुरुष चोरी के ज्ञान से चोर नहीं बन जाता। भाषा में बहुत सी उपमाओं और रूपकों के व्यवहार के कारण भी इस प्रकार की अनेकानेक भूलें हुआ करती हैं। उपनिवेशों की बच्चे से उपमा दी जाती है; किन्तु इस से यह अनुमान करना कि उपनिवेशों के लोग अनुभवशून्य होते हैं, भूल है। कारलाइल ने प्रजातंत्र राज्य के विरुद्ध लिखते हुए राज्य की जहाज से उपमा दी है। वह कहते हैं कि यदि जहाज का चलानेवाला

हर समय जहाज की सवारियों की सलाह लेता फिरे तो जहाज थोड़ी दूर भी न जा सकेगा। यदि इसी प्रकार राजा हर समय प्रजा की सलाह लेता फिरे तो राज्य का कार्य्य न चल सके। जहाज में बैठनेवालों और प्रजा में पूर्ण समानता नहीं है। जहाज के बैठनेवालों का जहाज से थोड़ी देर का सम्बन्ध होता है, प्रजा का राज्य से हमेशा का। प्रजा को समुद्रयात्रियों की अपेक्षा अपने हित, अनहित का ज्ञान अच्छा होता है। रूपक और उपमा का व्यवहार भाषा में इस कारण होता है कि सूक्ष्म बात स्थूल करके दिखा दी जाय। उपमाएँ हमारे यहाँ सर्वांगी नहीं मानी गई हैं। पुरुषसिंह से यह अर्थ नहीं कि उस पुरुष में सिंह की सी पूँछ भी हो। इस कारण तर्क सम्बन्धी पुस्तकों में भाषा पर इतना विचार कर लिया जाता है।

मानसिक झुकाव की भूलें

हर एक मनुष्य का किसी न किसी ओर झुकाव रहता है। वह झुकाव जब उचित मात्रा से बढ़ जाता है, तब उसे पक्षपात कहते हैं। लोग अपने ही परिमाण से सब बातों का विचार करते हैं। कुएँ का मेढ़क सागर का अनुमान नहीं कर सकता। ऐसी भूल को बेकन साहब ने कूप मंडूक न्याय (Idols of the cave) * कहा है। यह झुकाव व्यक्तिगत भी होता है

* केव "Cave" गुफा को कहते हैं। गुफा के भीतर बैठा हुआ मनुष्य बाहरी संसार के बारे में कुछ नहीं जान सकता। वह बाहरी संसार के विषय में

और जातीय भी। जो भूलें जातीय या सामाजिक झुकाव के कारण होती हैं, उनको बेकन साहब ने Idols of the Theatres या नाट्य शाला* के अन्ध विश्वासों की संज्ञा दी है; क्योंकि नाट्य शाला में जातीय भाव का व्यंजन होता है। जिसके नेत्र में कमलवायु का रोग है, उसको सारा संसार पीला ही पीला दिखाई देता है। प्रायः हर एक मनुष्य को थोड़ा बहुत मानसिक कमलवायु रहता है। जो गणितज्ञ है, उनके लिये सारे संसार में गणित से बढ़कर और कोई रुचिकर पदार्थ नहीं और वह कवि की रसपूर्ण रचनाओं को उदासीनता के भाव

जो कुछ अनुमान करेगा, गुफा के भीतर के पदार्थों के ही आधार पर करेगा। अफलातून ने भी एक गुफा के मनुष्य की कल्पना की है। वह मनुष्य अपना मुँह पीछे की ओर किए बैठा रहता है और बाहर की छायाओं को देखता रहता है। इसमें भेद इतना ही है कि प्लेटो का मनुष्य कम से कम छाया तो देख सकता है। बेपढ़े लोग ही कूप मंडूक नहीं होते, वरन् पढ़े लिखे लोगों में भी थोड़ी बहुत कूप-मंडूकता होती है। वैज्ञानिक लोग सब बातों को अपने ही संकुचित दृष्टिकोण से देखते हैं। तार्किक लोग सारे संसार को तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार संघटित पाते हैं। हेगिल इसका अच्छा उदाहरण है।

* नाट्यशाला के अन्धविश्वास का अभिप्राय यह है कि बहुत सी बातों का ज्ञान लोग निरीक्षण द्वारा नहीं प्राप्त करते हैं वरन् जो विश्वास नाट्यशालाओं और काव्य-ग्रन्थों में प्राप्त करते हैं, उन्हीं को ठीक मानते हैं। कौए के एक ही आँख होने का विश्वास जयन्त की कथा से प्रचलित हो गया है, इसका कोई और आधार नहीं है। झींगुर और भृंगी का आख्यान वेदान्त-ग्रन्थों द्वारा प्रचार पा गया है वास्तव में झींगुर का भृंगी में परिवर्तन नहीं होता। सर्प की मणि भी ऐसी ही है।

से पढ़ते हैं। उनके लिये कवियों का परिश्रम वृथा गया। उधर कवि लोग वैज्ञानिकों को शुष्क बतलाते हैं और उनका सहवास भी पसन्द नहीं करते। एक धर्मवाले दूसरे धर्मवाले को म्लेच्छ ही समझते हैं। बहुत से लोग जो आचार विचार से रहते हैं और लोगों को, जो अन्य प्रकार से सदाचारी हैं, दुराचारी कहते हैं। पक्षपातपूर्ण लोगों की बातों पर किसी को भला या बुरा समझना भूल है। बहुत से जातीय पक्षपात होते हैं। कुछ दिन हुए ईसाई लोगों का विश्वास था कि संसार को बने कुल ६००० वर्ष हुए। इसका फल यह हुआ कि जब यूरोपीय विद्वान अन्य देशों की सभ्यता का काल-निरूपण करते थे, तब उसे प्रायः संकुचित कर देते थे और किसी को ६००० से पूर्व का बता ही न सकते थे। एक पादरी साहब हिन्दुओं में आवागमन का मानना इसी प्रकार की भूल समझते हैं; किन्तु ईसाइयों में इसका न मानना भी इसी प्रकार की भूल है। हिन्दू लोगों की भूल यह है कि वे अपनी जाति पाँति छूत छात के ही आदर्श से (लेखक भी इन भूलों से खाली नहीं) ईसाई मतवालों की धर्म-परायणता में दोष लगाते हैं। दर्शन शास्त्र में भी मज़हबी झुकाव काम करता है। प्रोफेसर राधाकृष्ण ने अपनी Reign of Religion in Contemporary Philosophy) नामक पुस्तक में यह दिखलाया है कि यूरोप में जो ऐक्यवाद का विरोध हो रहा है, वह ईसाई धर्म का फल है। समय के झुकाव के कारण भी अनेक भूलें होती हैं। यूरोप के लोगों ने १९ वीं शताब्दी में

वैज्ञानिक यन्त्र सम्बन्धी विद्या में बहुत उन्नति की। उसका फल यह हुआ कि वह सारे संसार को यंत्रवत् समझने लगे और उन्होंने अपने ज्ञान में आत्मा को स्थान ही न दिया। आजकल विकासवाद में विश्वास रखना फैशन सा हो गया है। इससे यह न समझा जाय कि विकास का सिद्धान्त गलत है, किन्तु इसमें अपवादों को न मानना भूल है। जो लोग भारत की प्राचीन सभ्यता में विश्वास नही रखते, वह प्रायः विकास वाद के चक्कर में ही आकर ऐसी भूल कर जाते हैं। यह भी फैशन हो गया है कि सभी नई चीज़ें अच्छी समझी जायँ और पुरानी बुरी। पुराने लोगों का यह फैशन है कि सब पुरानी चीज़ों को अच्छा समझें और नई को बुरा। सब बातों की परीक्षा करके ही किसी को भला या बुरा कहना चाहिए। विचार की स्वतंत्रता के मानी यह नहीं है कि चाहे जो कुछ विचार कर लिया जाय, वरन् पक्षपात को छोड़कर विचार करना चाहिए। जो लोग अपने पक्ष के अतिरिक्त दूसरे पक्ष की ओर भी ध्यान देते हैं और उसके सत्य होने की सम्भावना में विश्वास रखते हैं, वह लोग भूल करने की गुंजाइश को कम कर देते हैं और वही सच्चे स्वतंत्र विचारवाले होने का गौरव प्राप्त करते हैं। पक्षपात सब को होता है; किन्तु जो दूसरे के पक्ष का भी उचित मूल्य निर्धारित कर सके, वही पक्षपात-शून्य समझा जाता है। धर्म और विश्वास दोनों ही में पक्ष-पात छोड़कर उदारता दिखलाने की आवश्यकता है। निष्पक्ष

होकर परीक्षा बुद्धि से काम लेना ही तर्कशास्त्र के मन्तव्यों को पूरा करना है और अपने विचारवान् होने का लाभ उठाना है।

दसवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

आगमन संबंधी भूलें

(१) आगमन संबंधिनी भूलों के प्रकार बतलाइए।

(२) मनुष्यों में विपरीत उदाहरणों को भूल जाने की जो प्रकृति है, उसके उदाहरण दीजिए।

(३) नीचे की युक्तियों की परीक्षा कीजिए—

(क) शराब पीना बुरा नहीं है, क्योंकि अँगरेज लोग शराब पीते हैं और वह लोग उन्नतिशील हैं।

(ख) यह अवश्य धनवान् होगा क्योंकि गंजा है 'क्वचित् खल्वाट निर्धनी.'।

(ग) भारतवासी बड़े मलीन हैं क्योंकि वह साबुन का व्यवहार नहीं करते।

(घ) श्मशान भूमि से लोग खाली लोटा लाते हैं; अतः कूए से कभी खाली लोटा नहीं लाना चाहिए।

(ङ) यूरोप की स्त्रियाँ अवश्य कुलटा होंगी; क्योंकि वहाँ पर स्त्रियाँ पर्दा नहीं करतीं और बहुत स्वतन्त्र हैं।

(च) पृथ्वी नहीं घूमती है, क्योंकि हमारे शास्त्रों में उसे अचला कहा है।

(छ) वह आदमी बड़ा बेईमान है, क्योंकि वह सरकारी रुपया अदा करने से बचने के लिये हमारे विश्वस्त अफसरों की बुराई करता है।

(ज) प्राय तीन वर्ष हुए वह शिमला गया था। कमजोर दिलवालों को पहाड़ की आब-हवा माफिक नहीं आती। देखो इसी लिये गत नवंबर की तीसरी तारीख को उसकी मृत्यु हो गई।

(झ) जब से मैंने नीलम की अँगूठी पहनी है, तब से मुझे रूई के रोजगार में घाटा नहीं हुआ। अब मैं इस अँगूठी को कभी नहीं अलग करूँगा।

(ञ) वह आदमी बड़ा बातूनी है, इसी से उसे किसी कार्य्य में सफलता नहीं होती।

वाह ! बातूनी होने से क्या ? सब बड़े बड़े आदमी बातूनी हुए हैं।

(ट) जिस दिन से अमुक स्त्री अपने बीमार लड़के को मेरे घर लेकर आई, उस दिन से मेरा लड़का बीमार हो गया। उस औरत का आना ही मेरे लड़के की बीमारी का कारण है।

(ठ) हम तुम दोनों बड़े आदमी हैं, क्योंकि जो बात तुमने सोची थी, वही बात मैंने भी सोची। और अँगरेजी भाषा में कहावत है कि बड़े आदमी एक सा विचार करते हैं।

(ड) एक वैद्य ने मन्दाग्नि के एक रोगी से कहा कि तुम अपना सारा धन लुटा दो और गरीब हो जाओ, तो तुम्हारी मंदाग्नि दूर हो जायगी, क्योंकि कहा है "धनक्षये दीप्यति जाठराग्नि"।

(ढ) प्रभु ईसा मसीह सूली पर चढ़ाए जाने से पूर्व अपने बारहों शिष्यों के साथ भोजन करने बैठे। उसके थोड़े दिन पश्चात् ही वह सूली पर चढ़ाए गए; इसलिये तेरह आदमी एक साथ एक मेज पर कभी खाने न बैठें। यदि ऐसा होगा तो साल भर के अन्दर उनमें से एक की अवश्य मृत्यु हो जायगी।

(ण) एक लड़के के नदी में स्नान करने के आठ रोज बाद उसे खाँसी हो गई और बुखार भी आ गया। उसकी माँ ने कहा—"देखो हमने मना किया था कि नदी नहाने मत जाओ। बुखार आ गया। अब मालूम हुआ कि हमने ठीक कहा था या गलत ?"

(४) कूप मण्डूक न्याय, बाजार के अन्ध-विश्वास और नाटक शाला के अन्धविश्वास की व्याख्या करते हुए इनके उदाहरण दीजिए।

(५) नीचे लिखे हुए विश्वासों की परीक्षा कीजिए और यह बतलाइए कि अन्ध-विश्वासों की किन सज्ञाओं में आवेंगे ?

(क) धूम्र केतु अर्थात् पुच्छल तारा अनिष्टकारक होता है ।

(ख) टूटता हुआ तारा किसी महान् पुरुष की मृत्यु का सूचक होता है ।

(ग) रोहू के दाँत बच्चों के गले में डालना आँखों के रोहुओं को आराम कर देता है ।

(घ) हंस मोती ही चुगता है और चातक स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ ही जल पीता है ।

(ङ) संसार पाँच तत्त्वों का बना हुआ है, इसलिये राज्य के भी पाँच विभाग होने चाहिएँ ।

ग्यारहवाँ अध्याय

विज्ञान की सीमा और ज्ञान का समन्वय

कारणवाद के अध्याय में बतलाया गया था कि साधारण मनुष्य अपने फुटकर ज्ञान से सन्तुष्ट हो जाता है, और वह व्याख्या का बहुत तारतम्य नहीं बाँधता। इसके विपरीत वैज्ञानिक फुटकर बातों से सन्तुष्ट न रह कर उनको एक व्यापक नियम के भीतर लाना चाहता है और उसकी व्याख्या दूर तक पहुँचती है। दार्शनिक लोग संसार की व्याख्या में और भी गहरी डुबकी लगाते है। वह एक चीज़ की व्याख्या में सारे संसार के तारतम्य को मिला लेते हैं। साधारण आदमी अपनी नाक के आगे नहीं देखता। वैज्ञानिक प्रत्येक घटना को उसके उचित क्षेत्र के सम्बन्ध में देखता है और उसका संसार के तारतम्य में उचित स्थान निर्दिष्ट करने की चेष्टा करता है। दार्शनिक विज्ञान की भी संकुचित सीमा को तोड़ कर व्यापक अनुभव की दृष्टि से देखता है। क्या दार्शनिक की सर्वव्यापक दृष्टि सम्भव है? नहीं, यह एक आदर्श है। जैसे जैसे हमारे ज्ञान की वृद्धि होती जाती है, वैसे ही वैसे हमारा ज्ञान संबद्ध और सुव्यवस्थित होता रहता है। वैसे तो सभी ज्ञान ज्ञान हैं, किन्तु वास्तविक ज्ञान वही है जो हमारे सारे अनुभव के साथ सम्बन्ध और संगति रखता हो। इस संगति और संबद्धता

के दर्जे हैं। ज्ञान के विस्तार के साथ उसका आन्तरिक संघटन भी बढ़ता जाता है। सारे क्षेत्रों के ज्ञान का समन्वय और संगति-स्थापन ही सच्चे ज्ञान का, जो दार्शनिक का विषय है, उद्देश्य है। किन्तु दार्शनिक लोग सर्वज्ञ नहीं होते, उनको दूसरों के परिश्रम से लाभ उठाना पड़ता है। मनुष्य परिमित होने के कारण अपनी गवेषणा के क्षेत्र को संकुचित कर लेता है। इस संकोच के कारण वह अपने विषय की अच्छी तरह खोज कर सकता है। यदि प्रत्येक बात में दार्शनिक दृष्टि से काम लिया जाय तो मनुष्य काम ही न कर सके। यदि हमको यह खोज करना है कि अमुक पौधे में कौन सी खाद उपयोगी होगी और इसकी खोज में हम दार्शनिक दृष्टि से चलें, तो तत्व और उनका मिलन, संसार का विकास और लय सभी आकाश पाताल के कुलावे मिलाने पड़ेंगे और शेखचिल्ली की भाँति सुख स्वप्न ही देखते रहेंगे। वैज्ञानिक लोग सुभीते के लिये अपना क्षेत्र चुन लेते हैं और उसी में खोज करते रहते हैं। इसी प्रकार सारे ज्ञान का क्षेत्र बँटा हुआ है। अब प्रश्न यह होता है कि दर्शन शास्त्र का क्या विषय रह जाता है। इसकी उपमा इस प्रकार दी जाती है कि यदि एक बड़ी दीवार बन रही हो और उसमें कार्यविभाग के सिद्धान्त पर सब लोग अपना अपना कार्य कर रहे हों, तो उन सब के कार्य समाप्त होने पर दीवार आप से आप बन जायगी। विज्ञानों और दर्शन शास्त्र का ऐसा सम्बन्ध नहीं है। दर्शन शास्त्र सब विज्ञानों

के ज्ञान का समूह नहीं है, वरन् उनका समन्वय अर्थात् परस्पर संगति है। विज्ञान न तो दर्शन शास्त्र की प्रारम्भिक शिक्षा ही है और न उसका दर्शन शास्त्र से तादात्म्य है। यदि ऐसा होता तो या तो दर्शन शास्त्र का उदय होने पर विज्ञानों का नाश हो जाता (जैसे यदि लड़का कागज़ और स्याही का व्यवहार करने लग जाता है, तो उसको पट्टी की आवश्यकता नहीं रहती और पट्टी का लोप हो जाता है) या दर्शन का उदय ही न होता। दार्शनिक को वैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान आवश्यक है; किन्तु वह उस ज्ञान को अपने तौर पर काम में लाता है। वह वैज्ञानिक की दृष्टि संकोच को उसके लिये आवश्यक समझता हुआ उसी विषय को व्यापक दृष्टि से देखता है।

विज्ञान फुटकर घटना की अनेकता में एकता स्थापित करता है। यद्यपि यह एकता बहुत अंशो में उनका मानसिक संक्षेपीकरण है, तथापि यह ज्ञान में व्यवस्था उत्पन्न करती है। यह व्यवस्था और एकीकरण अपने चुने हुए क्षेत्र से बाहर नहीं जाता। दार्शनिक इन भिन्न मनोनीत क्षेत्रों की सीमाओं को पार करके यह देखना चाहता है कि ऐसा कौन सा पदार्थ है जो उन भिन्न विज्ञानों को अपने में समन्वित कर ज्ञान में पूर्ण रीति से व्यवस्था उत्पन्न कर सकता है। विज्ञानों में कार्य्य-कारण श्रृंखला स्थापित की जाती है, परन्तु वह एक खास दूरी पर रुक जाती है। वैज्ञानिक लोग अपनी खोज की सफल-

लता के लिये अपने विषय को एक प्रकार से दिया हुआ मान लेते हैं और उसकी तात्त्विक अवस्था पर विचार नहीं करते। वह लोग कुछ चीज़ों को मान लेते है ('मानी हुई' से यह अर्थ नहीं कि वह मनोकल्पित है, वरन् उनका विषय दिया हुआ है)। वह उसके नियमों की खोज करते हैं, लेकिन उसकी असलियत पर विचार नहीं करते। यदि असलियत पर विचार करने लग जायँ तो फिर उन नियमों की खोज के लिये समय ही न मिले। रसायन शास्त्र परमाणुओं को मान कर चलता है। उसकी कारण श्रृंखला साधारण रीति से परमाणुओं तक जाती है। अब थोड़े दिनों से कुछ और पीछे जाने लगी है और परमाणु विद्युत् वा शक्ति के केन्द्र माने जाते है। गणितज्ञ देश (Space) को दिया हुआ मान लेते है; परन्तु यह नही विचार करते कि देश का ज्ञान बाह्य है अथवा आन्तरिक। भौतिक विज्ञान भूत पदार्थ वा जड़ द्रव्य और शक्ति को दिया हुआ मान लेता है। उसके लिये परमाणु एक प्रकार से गौण है। भौतिक विज्ञान के लिये जड़ और जीव समान हैं। चाहे पत्थर छत पर से फेंका जाय और चाहे आदमी कूदे, दोनों ही गिरेंगे। मनोविज्ञान हमारी मानसिक स्थितियों को दिया हुआ मानता है। वह वैज्ञानिक दृष्टि से उनको कार्य्य कारण श्रृंखला में बँधा हुआ देखता है। वह कर्त्तव्य संबंधी स्वतंत्रता के अनुभव की परवाह नहीं करता। ज्योतिष शास्त्री ग्रहों पर ही विचार करता है। उसके लिये पृथ्वी के ऊपर की बातें कोई विशेषता

नहीं रखतीं· न उसे इस बात की परवाह है कि पृथ्वी के ऊपर कितने लड़ाई झगड़े, प्रेमालाप, विरह वेदना, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलन आदि होते रहते हैं। भूगर्भ विद्यावाले पृथ्वी के भीतर के इतिहास अर्थात् पृथ्वी की श्रेणीबद्ध आन्तरिक दशाओं से काम रखते है। उन्हें पृथ्वी के ऊपर के इतिहास से कुछ मतलब नहीं। इतिहासज्ञ को पृथ्वी के भीतर के इतिहास अथवा तारागणों के संचलन वा परमाणुओं के नृत्य से कोई काम नहीं। इसी प्रकार सब विज्ञान अपनी अपनी डफली का राग बजाते हैं। इन बातों के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसी मानी हुई बातें है जिन पर सब विज्ञान चल रहे है, और उनकी केवल इतनी ही सिद्धि है कि उनके मानने से काम चला जा रहा है। दर्शन इन सब मानी हुई बातों पर विवेचना कर सब को एक पदार्थ के शासन में लाने और उन मे पूर्ण व्यवस्था उत्पन्न करने की चेष्टा करता है।

कुछ विज्ञान भी अपने उचित क्षेत्र से बाहर जाकर अपने क्षेत्र का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं। प्रायः सभी विज्ञान अपने को सर्वोच्च पद के अधिकारी समझते हैं। गणित शास्त्र का कहना है कि वह नियम सभी ही विज्ञानों में लगते हैं: वह सब से अधिक व्यापक है। तारागणों के घूमने, परिमाणुओं के मिश्रण, रेल और स्टीमरों की दौड़ रुधिर के संचालन, बाह्य पदार्थों के अक्ष पट (Retina) पर चित्रण, शब्द और तेज की तरङ्गों के प्रसरण, स्नायुओं

के स्फुरण किम्बहुना सब ही स्थलों में गणित के नियम लगते हैं। गणित के नियम इतने व्यापक हैं कि उनका वास्तविक संसार से सम्बन्ध ही नहीं रहता। दो और दो चार होते हैं, चाहे वह ईंट हो चाहे पत्थर और चाहे आदमी। यद्यपि सभी विज्ञानों के नियमों में काल्पनिकता (अगर ऐसा हो, तो ऐसा हो) की मात्रा रहती है, पर गणित में यह पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। गणित का कोई विशेष विषय ही नहीं, और जो विषय माना जाता है, उसकी वास्तविकता मे लोग सन्देह करते है। रेखा वह है जिस में लम्बाई हो, चौडाई न हो। क्या ऐसी रेखा या ऐसा विन्दु, जो स्थल मात्र को वतलावे, सम्भव है? यह सब मनोकल्पित ही है। इसी प्रकार यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो १, २, ३ की भी गणना सब जगह नहीं लग सकती। एक दो तीन का नियम उन्हीं चीजों में लग सकता है जो वास्तव में पृथक् है; किन्तु बहुत से पदार्थों में पार्थक्य नहीं दिखाई पड़ता। उन में यह नहीं कहा जा सकता कि कहाँ पर एक का अन्त होता है और कहाँ पर दूसरे का प्रारम्भ। फिर गणना का सिद्धान्त परिमाण में ही लग सकता है, गुण में नहीं *। यूरोप के सुख-वादियों ने यही भूल की थी। गणित की व्यापकता पर ही पीथागोरस (Pythagoras) ने सारे संसार का मूल

* १६ वर्ष की स्त्री के अभाव में आठ आठ वर्ष की दो कन्याओं से विवाह करानेवाला नौकर गणित की दुरुपयोगिता का उदाहरण है।

अंकों में ही माना था और अंकों के ही आधार पर पदार्थों का नाम रक्खा था। गणित के स्वाधिकार से बाहर जाने में उसने सब से पहले सहायता दी है। क्रोचे (Croce) ने गणित की अनधिकार चेष्टावाली भूल को Mathematicism अर्थात् गणितता कहा है।

इसी प्रकार अन्य विज्ञानों ने भी अपने अधिकार से बाहर जाने की कोशिश की है। तर्कशास्त्र के भी नियम गणित शास्त्र की भाँति सर्वव्यापक हैं; किन्तु संसार को तर्कशास्त्र के नियमों का प्रत्यक्षीकरण मान लेना भी ऐसी ही भूल है जैसी कि अंकों को सब संसार का मूलाधार मान लेना। इस भूल के सब से बड़े आचार्य्य हेगल (Hegel) हैं, जिन्होंने सारे संसार को पक्ष (Thesis), प्रतिपक्ष (Antithesis) और संयोजन (Synthesis) के नियम के अनुसार चलाने का यत्न किया है। जब मनोविज्ञान अपनी सीमा से बाहर जाता है, तब हम विषयीप्रधान प्रत्ययवाद (Subjective Idealisn) या बौद्धों के विज्ञानवाद में पहुँच जाते हैं। यह मत फिर भी कुछ अच्छा है; क्योंकि हमको सीधा ज्ञान अपनी मानसिक स्थितियों का ही होता है। इसके विपरीत रासायनिक, भौतिक, विज्ञानवादी और जीवन शास्त्री (Biologist) अपने अपने विषय को प्रधानता देकर उसे संसार का मूल मानने लग जाते हैं। कुछ लोग परमाणुओं को ही प्रधान मानते है। कुछ लोग भौतिक द्रव्य और गति के ही शब्दों में सारे संसार की

व्याख्या करते हैं। जीवन शास्त्रवाले शरीर (Organism) को ही प्रधान देते हैं। कोई कोई इन व्याख्याओं की अपर्य्याप्तता देख भौतिक कारण श्रृंखला और मानसिक कारण श्रृंखला को अलग अलग मानते हैं। फिर इनके सम्बन्ध की समस्या उपस्थित होने लग जाती है।

दर्शनशास्त्र में सब से ज्यादा भूल का कारण विज्ञानों का स्वाधिकारोल्लंघन है। लोग समझते हैं कि जो कुछ हमने जान लिया, वही सत्ता का सार है; और फिर सारी सत्ता को अपने संकुचित दृष्टिकोण द्वारा उपार्जित ज्ञान के शासन में लाना चाहते हैं। ऐसे वैज्ञानिक या दार्शनिक उन लोगों की भाँति हैं जो यदि किसी मनुष्य को एक बार पैदल चलते देख लें, तो यह निश्चय कर लेते हैं कि यह मनुष्य हमेशा पैदल ही चलता है, अथवा किसी को खेत में काम करते देख लें तो उसको किसान ही समझेंगे। किन्तु वे यह नहीं समझते कि वह किसान के अतिरिक्त मनुष्य भी है (उसमें मानापमान, भय, क्रोध, लोभ, मोह आदि मनुष्य के सभी गुण दोष हैं)। इसी प्रकार वैज्ञानिक लोग सत्ता को अपने विशेष क्षेत्र में संकुचित कर सारी सत्ता को वैसा ही मानने लग जाते हैं। मनुष्य अवश्य जड पदार्थों को भाँति भौतिक नियमों के आश्रित है, किन्तु मनुष्य में कुछ ऐसा भी भाग है जो इन नियमों से बाहर है। मनुष्य की चेतना कार्य्य कारण श्रृंखला से बाहर है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है (मनुष्य की चेतना में शक्ति स्थिति

(Conservation of Energy) का नियम नहीं लगता)।
मनुष्य सदा अपने को अतीत करता रहता है। मनुष्य की
चेतना में भौतिक पदार्थों के नियम नहीं लगते। भौतिक नियमों
के आधार पर उसकी व्याख्या करना औचित्य से बाहर है।
१६ वीं शताब्दी में युरोपीय विज्ञान की बहुत उन्नति हुई।
उसी उन्नति से उन्मत्त हो भौतिक विज्ञान का साम्राज्य
चेतन संसार पर जमाने की चेष्टा की गई और सब जगह
भूतवाद और प्रकृतिवाद की तूती बोलने लगी। निश्चयता के
बहाने वैज्ञानिक पद्धति दर्शन शास्त्र में भी लगाई जाने लगी,
और बहुत कुछ जो दर्शन शास्त्र में उपयोगी था, फजूल समझ
कर निकाल दिया गया। दर्शन शास्त्र का विज्ञान से विरोध नहीं;
किन्तु उस विज्ञान से दर्शन शास्त्र सहमत नहीं जो अपने को
ही दर्शन का स्थान देने की चेष्टा करे। ऐसे वैज्ञानिक दार्शनिकों
के विषय में क्रोची (Croce) साहब लिखते हैं—

"If the chemist Prof. Ostwald had possessed a better Philosophy he would not have abandoned his good chemistry for that doubtful mixture of things—his Philosophy of Nature. And had Ernest Haeckel made an elementary study of Philosophy, he would never have given up his researches upon micro organisms, in order to solve the riddles of the Universe and to falisify the Natural Sciences."

अर्थात् यदि रसायन शास्त्रज्ञ प्रोफेसर ओस्टवाल्ड कुछ

अच्छा दार्शनिक ज्ञान रखते होते तो वह अपने अच्छे रसायन शास्त्र को, जिसमें उनका पूरा अधिकार था, छोड़कर उस संदिग्ध मिश्रण को, जिसको उन्होंने प्रकृति का दर्शन कहा है, हाथ में न लेते। और यदि अर्नेस्ट हैकेल ने थोड़ा सा दर्शन शास्त्र पढ़ा होता तो विश्व की पहेलियों को हल करने के लिये अपनी सूक्ष्म जीव सम्बधिनी गवेषणाओं को न छोड़ते और भौतिक विज्ञान को भी झूठा न करते। श्रीमद्भगवद्गीता में ऐसे ज्ञान को तामस कहा है।

यत्तुकृत्स्नवदेकस्मिन कार्येसक्तमहै तुकम्।
अतत्वार्थ वदल्पंचं तत्तामसमुदाहतम्।

अर्थात्—जो निष्कारण और तत्वार्थ को बिना जाने बूझे एक ही बात में यह समझ कर आसक्त रहता है कि यही सब कुछ है, वह अल्प ज्ञान तामस ज्ञान कहा गया है।

दृष्टिकोणों के अलग रखने के सम्बन्ध में जैन लोगों का अच्छा सिद्धान्त है। उन्होंने सात नय माने हैं।

नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहारर्जुसूत्रकौ ।
शब्दः समविरुढेवं भूतौ चेति नयाः स्मृताः।

(१) नैगम नय उसको कहते हैं जिसमें किसी वस्तु के सामान्य गुण और विशेष गुण अलग न किए जायँ। इस दृष्टि को ठीक तौर से ध्यान में न रख कर यदि कोई इन गुणों को अलग करने लग जाय, तो नैगमाभास हो जाता है। जैसे कोई आत्मा की चेतना से आत्मा की सत्ता को अलग करे।

कहने का तात्पर्य यह है कि पदार्थों में सामान्य और विशेष गुण मिले ही होते हैं, वास्तव में अलग नहीं हो सकते। वे केवल दृष्टि-भेद से अलग हैं।

(२) संग्रह नय उसे कहते हैं जहाँ केवल सामान्य गुणों पर ही जोर दिया जाय। यह एक दृष्टि-भेद है। किन्तु जहाँ पर सामान्य गुणों को ही वस्तु मान लिया जाय, वहाँ संग्रहाभास हो जाता है। किसी दृष्टि से हमको सामान्य गुणों पर जोर देना पड़ता है; किन्तु उस दृष्टि को व्यापक दृष्टि नहीं मान सकते। जो दार्शनिक लोग विशेष गुणों को छोड़ कर सामान्य गुणों के ही आधार पर सत्ता की व्याख्या करते हैं, वह संग्रहाभास करते हैं।

(३) व्यवहार नय वह है जिसमें विशेष गुणों पर जोर दिया जाता है। किन्तु इसी के आधार पर वस्तु की व्याख्या कर देना व्यवहाराभास हो जाता है।

(४) ऋजुसूत्र नय वह है जिसमें वर्तमान अवस्था पर जोर दिया जाता है। ऋजुसूत्र में वस्तु के नाम रूप आगे पीछे से कुछ मतलब नहीं। यदि कोई राजा भिखारी के रूप में खड़ा हो तो उस समय जो उसकी अवस्था है, उसी पर ध्यान दिया जायगा। इसी अवस्था को उसकी स्थायी अवस्था मान लेना ऋजुसूत्राभास है। यदि परिवर्तन दिखाई पड़ता है तो इस आधार पर परिवर्तन ही परिवर्तन मानना और स्थायित्व न मानना इस आभास का उदाहरण होगा।

(५, ६) शब्द और सम्भिरुद्ध नय पर्य्याय शब्दों का भिन्नार्थ न होने वा होने से सम्बन्ध रखते हैं। पहले के अनुसार पर्य्याय शब्दों में भेद नहीं होता, दूसरे के अनुसार होता है।

(७) एवंभूत—इस नय के अनुसार वस्तु के उस गुण पर ओर दिया जाता है जिसके कारण उस वस्तु ने वह नाम पाया हो। चित्रकार चित्र बनाने के कारण चित्रकार कहा जाता है। वास्तव में चित्रकार तभी चित्रकार है जब कि वह तसवीर बनावे। किन्तु उसके आधार पर यदि हम चित्रकार से यह आशा करें कि वह हर समय चित्र ही बनाता रहे अथवा चित्रकार जब चित्र न बनावे, तब उसकी सत्ता को ही न मानें तो यह एवंभूताभास होगा।

नय केवल इतने ही नहीं, सात सौ नय माने गए हैं। वेदान्तियों ने भी व्यावहारिक और पारमार्थिक दृष्टिभेद माना है।

ऊपर की विवेचना से यह अभिप्राय है कि अगर हम सुभीते के लिये अपने ज्ञान के क्षेत्र को संकुचित कर लें और हमको उसमें सफलता प्राप्त हो, तो हम उस संकुचित दृष्टिकोण से ही सारे संसार को न देखने लगें। विज्ञान का अध्ययन परम उत्तम और परम आवश्यक है; किन्तु उसी को सर्वस्व न मान लेना चाहिए। इसी के साथ हमको अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को इतना विस्तृत भी न बना लेना चाहिए कि संसार के पदार्थ उससे बाहर हो जायँ।

एक स्थल में बैठकर हम सारे संसार का अनुमान न करें,

और न सारे संसार को देखने के लिये इतने ऊँचे वायुयान में चढ़ जायँ कि संसार के पदार्थ स्पष्ट दिखाई ही न पड़ें। हमारे विशेष अपनी विशेषता न छोड़ें और सामान्य विशेष से ऊँचे जायँ, किन्तु सम्बन्ध रहित न हो जायँ। जैसे जैसे ज्ञान बढ़ता जाय, वैसे वैसे उसका संघटन भी बढ़ता जाय। सब पदार्थ अपनी अपनी विशेषता रखते हुए ज्ञान के एक सूत्र में बँध जायँ, और अनेकता में एकता स्थापित हो जाय, यही सात्विक ज्ञान है। यही तर्कशास्त्र के अध्ययन का फल और यही परम पुरुषार्थ है। "अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्"।

श्रीमद्भगवद्गीता

ग्यारहवें अध्याय पर अभ्यासार्थ प्रश्न

विज्ञानों की सीमा और ज्ञान का समन्वय

(१) क्या विज्ञानों की वृद्धि से दर्शन शास्त्र का क्षेत्र संकुचित हो जायगा?

(२) विज्ञान और दर्शनशास्त्र का सम्बन्ध बतलाइए।

(३) विज्ञानों के अपनी उचित सीमा उल्लंघन करने से दर्शनशास्त्र-सम्बन्धी क्या भूलें हुई हैं?

(४) दृष्टिभेद पृथक् रखने के सम्बन्ध में जैन तर्क से क्या सहायता मिलती है?